नारी शृंगार

प्रभात

हर्षनन्दिनी भाटिया
नारी
शृंगार

पूज्य पिताश्री
की
स्मृति मे
सादर
जिनकी सत्प्रेरणा से अध्ययन
का बीज रोपा गया।

कुछ अपनी

आदिकाल से मानव का प्रकृति से तादात्म्य रहा है। सृष्टि के उषाकाल म मानव ने नेत्र खोलते ही चारों ओर प्रकृति की अनूठी व अलौकिक छटा के दशन किये। प्रकृति म परिवतन द्वारा अनुपम सौ दय बोध दिखाई देता है। प्रकृतिवधू नाना प्रकार से षटऋतुओं की सतरगी चुनरी ओढकर अपनी शोभाश्री छिटकाती रहती है। मानव ने प्रकृति से स्वय शृगार करना सीखा है। शृगार का अथ है स्वय को सजाना और सुसज्जित करना। नारी के एक एक अग की सु दरता का वणन करने क लिए कवियो ने प्रकृति से अनेकानक उपमान खोजकर निकाले हैं।

शृगार द्वारा नारी स्वय को सजासवार कर रखती है। सौ दय का माप देखनेवाले की आँखो की ओट म छिपे मद के भाव व सवदनशीलता की स्थिति अपेक्षित है। यो नारी वल्लरी लतिकाओ से अधिक चचल नवनीत से भी कोमल और अमत से अधिक मधुर और प्रिय है कि तु शृगार से वह स्वय को अधिक लावण्यमयी, ममतामयी स्नेहमयी और आकषक बना लेती है फिर भी शृगार करना अति आवश्यक और अपेक्षित प्रतीत होता है।

श्रीराम न सीताजी का शृगार वन के कुसुमो स किया था। राधा का शृगार भी अनेक लेप उबटन पुष्पो आदि स किया गया था। शकु तला न भी मन शिला से शृगार किया था। आधुनिक साधन व उपकरण तब उपल ध नही थे प्रकृति से प्राप्त उपादानो स नारियां अपनी शृगार सामग्री स्वय बना लती थी जबकि आज नारियाँ अधिक व्यय करक नाना प्रकार क सौ दय प्रसाधन एकत्र कर लेती हैं। इस प्रकार शृगार प्रसाधनों म अधिकाधिक विकास हुआ है। वतमान युग म नारियो को अधिक से अधिक घरेलू वस्तुओ स अपना शृगार करना चाहिए। घर म प्राय सभी साधन उपल ध हो जाते हैं। चदन व हल्दी स उबटन व लेप आदि घर पर ही तयार किये जा सकते हैं। घर की बनाई हुई वस्तुएँ अधिक लाभकारी प्रभावशाली और उपयोगी सिद्ध होती हैं।

नारी शृगार का सज्जा के अतिरिक्त मागल्य की दृष्टि से भी महत्त्व है। नारी अपना शृगार करके पति की मगलकामना करती है। भारतीय नारी यदि शृगार किये हुए है तो उसम सहज ही उसके पति की कुशलता का समाचार मिल

जाता है। सवप्रथम इस दष्टि स 'नारी के सौभाग्य चिह्न बि दी शीपक स विस्तृत लेख लिखा गया जिसको साप्ताहिक हि दुस्तान के ७ दिसम्बर १९५८ के अक म स्थान मिला। इस लेख के प्रकाशन पर मुझे अनेक पाठकों क प्रोत्साहन-पूण पत्र प्राप्त हुए जिनम यह आग्रह था कि नारी के शृगार प्रसाधनो पर आगे भी लिखूं। श्रद्धेय डा० सत्ये द्र से इसी विषय पर विचार विवचन हुआ। अपने व्यस्त जीवन म से समय-समय पर वे अमूल्य समय देते रहे और भटनागर अभिन दन ग्रथ के लिए 'नवसत मे मेहदी विषय पर लिखन को प्ररित किया। नवसत के अ यतम प्रसाधन मेह्न्दी पर यह शोधात्मक लेख अनक रेखाचित्रो स युक्त था। इस दिशा म ही 'सि दूरभरी माँग' तथा महावर लगे पाँव' लेख भी लिखे गय जिनको धमयुग म स्थान मिला। इस प्रकार डा० हरवशलाल शर्माजी के निर्देशन म 'नारी शृगार की रूपरेखा का श्रीगणेश हुआ और अ य विद्वज्जनो की सत्प्रेरणा के फलस्वरूप मे 'नारी शृगार पुस्तक आपके सम्मुख सहष प्रस्तुत करने में सफल हो सकी हू। प्रस्तुत अध्ययन म प्रेरणा के स्रोत मेरे पिताश्री भी रहे और कला की उपासिका मेरी माँ ने मुझे कला की ओर प्रेरित किया। मेरे पति का सहयोग मरा सम्बल बना और मैं इस पुस्तक से अपने विचार प्रकट करने की क्षमता प्राप्त कर सकी।

भारती नगर मरिस रोड
अलीगढ़

रूप नन्दिनी भाटिया

सूची

अध्याय १

भूमिका

मानव म श्रृगार की सहज प्रवत्ति अनादि काल से चली आ रही है। प्रसाधन की यह प्रकृति स्वयभू है। सहज सौंदय भी यत्किचित प्रसाधन के अभाव म अपूण रहता है और समग्र सौंदय के लिए तो श्रृगार आवश्यक है। मानव न यह स्वभाव प्रकृति से ही लिया है। प्रकृति विभिन ऋतुओ म अपना भिन भिन प्रकार के पुष्पो से श्रृगार करती है। समय आने पर पुरान पत्ते झड जाते हैं और नवल हरीतिमा का प्रसार हो जाता है। केवल हरियाली से ही प्रकृति सतुष्ट नही होती, ऋतुओ के अनुसार फल फूल भी आते रहते हैं। सभवत प्रकृति से ही मानव न श्रृगार या अलकरण की प्रवत्ति को अपनाया, और धीरे धीरे यह प्रवत्ति नसगिक बन गई। मानव भी समय समय पर ऋतुओ के अनुरूप अपना अलकरण करता गया। भारतवष म सब प्रकार की ऋतुएँ होती हैं, अतएव यहा श्रृगार के भी आवश्यकतानुसार अनेक रूप बदलत रहते हैं—जिसके अनुसार वस्त्राभूपण धारण किए जात हैं।

सष्टि के आदि म मानव ने श्रृगार प्रसाधन के सभी उपादान प्रकृति से ही प्राप्त किए थ। पहल-पहल फूल पत्तिया स ही आवश्यकतानुसार वस्त्र तथा आभूपण बनाय गए। चित्रकूट म राम न सीता का श्रृगार मन शिला तथा वन मे प्राप्त पत्र-पुष्पो से ही किया था। शकुतला का सहज सौंदय भी, वल्कल-वस्त्र तथा विभिन प्रकार क पुष्पो के श्रृगार स खिल उठा था। कालिदास न अपन साहित्य मे कई स्थला पर यह सकेत दिया है कि मडन (श्रृगार) की सारी सामग्री प्रकृति से ही प्राप्त हुई है। विभिन प्रकार के पुष्पा से तो आज भी श्रृगार किया जाता है।

प्रारभिक स्थिति म, नर-नारी दोनों म श्रृंगार की प्रवृत्ति समान थी, और समान रूप से ही व अलकरण करते थे। कालातर म सभ्यता के विकास के साथ इन प्रसाधनो म भेद होता गया। जीविका हतु पुरुष अपने काय म अधिक व्यस्त रहन लगा व्यापार हेतु भ्रमण करन लगा— जिसके कारण श्रृगार के क्षेत्र म भिनता आने लगी। आदिवासियों के अलकरण आज भी नर-नारी म समान रूप

से चल रहे हैं। इस प्रकार काल भेद, अवस्था भेद स्थान भेद तथा पात्र भेद से शृंगार के रूप आवश्यकतानुसार बदलते रहे हैं। गुहावासी आदि मानव भी अलंकृत होते थे, और आज भी जहाँ उनके अवशेष प्राप्त होते हैं—अलंकरण की प्रवृत्ति देखी जाती है।

प्रकृति का सामीप्य हमें प्रसाधन की ओर अधिक ले जाता है। श्रीकृष्णचन्द्र ग्वाल-बालों के साथ गौ चराते थे। वे स्वयं और अपनी बालमंडली के साथ ही गौओं का भी शृंगार करते थे। रंगीन मृत्तिकाओं से विभिन्न प्रकार के छाप तिलक अंगराग तथा वन में प्राप्त फूलों से ही वे शृंगार किया करते थे संभवतः इसी कारण सर्वाधिक शृंगार सामग्री कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों की रचना में मिलती है।

इस प्रकार शृंगार प्रसाधन प्रकृति की देन है, और उसने ही मानव को यह अधिकार दिया है कि वह प्रकृति से विभिन्न उपादान ग्रहण कर अपने रूप को अलंकृत करे—यही उसका सहज सौंदर्य है (आगे सहज सौंदर्य का तात्त्विक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है)। नारी नवनीत सी कोमल, लताओं सी चंचल होती हुई भी शृंगार की ओर प्रवृत्त हुई। प्रारम्भ में पत्तों की घाघरिया गेरू से लेप, तथा हड्डियों से आभूषण नारी ने बनाए।

अलंकृति के प्रारम्भ में चार भाग—वस्त्र भूषा माल्य और अनुलेपन—किये गए। सामान्यतः इसे ही वेश भूषा कहा गया। कुछ लोगों का विचार है कि इन सबका प्रारम्भ अवयवों के उपारहन के लिए हुआ पर दूसरे विचारक इनका प्रारम्भ शरीर रक्षा तथा अंगों को छिपाने के लिए न मानकर यौन दृष्टि से खुद को आकर्षक बनाने के लिए मानते हैं। वेश भूषा माल्य तथा अनुलेपन सभी का प्रयोग अपने को अधिक आकर्षक बनाने के लिए नारी ने किया और बाद में इन सहज अलंकरणों को ही 'शृंगार प्रसाधन' में परिगणित किया जाने लगा। शृंगार के क्षेत्र में धीरे धीरे वेश भूषा आभूषण तथा प्रसाधन सामग्री का सभ्यता के विकास के साथ विस्तार होता गया। सामान्यतः वस्त्र-व्यवहार के तीन मूल कारण माने जाते हैं—अलंकरण शालीनता, तथा शरीर रक्षा।[1] शुंज महोदय ने वस्त्रों की उत्पत्ति को शालीनतामूलक माना है, पर अन्य अनेक मनोवैज्ञानिकों ने इसके मूल में भी शरीर को यौन दृष्टि से आकर्षक बनाने का हेतु स्वीकार किया है। वस्त्र अनेक प्रकार से रहस्यात्मक ढंग से दूसरों को आकर्षित करते हैं और प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से यौन अंगों को उभार देते हैं—यह बात आधुनिक युग के सन्दर्भ में शत प्रतिशत सत्य सिद्ध हुई है। इस प्रकार मानव-जीवन में शृंगार प्रारम्भ से ही ओतप्रोत रहा है।

मानव जलवायु के प्रकोप से अपनी रक्षा करने के लिए भी तत्पर हुआ है। जहाँ एक ओर भारत में ग्रीष्म प्रधान देश होने के कारण एक से एक महीन तथा

झीन वस्त्र बने हैं—शीतलता के लिए चन्दन का व्यापक प्रयोग हुआ है, वही दूसरी ओर, अत्यधिक सर्दी पडने के कारण ऊनी, मोटे तथा अलङ्कृत वस्त्र, तथा उष्णता के लिए केसर कस्तूरी का प्रयोग बढा। फलत भारत म प्रकृति का योग दान विशेप रूप से स्वीकार करना होगा, जिसके कारण शृगार की ओर मानव प्रवृत्त हुआ और नारी विशेप रूप से इस दिशा म आग बढी। प्रारम्भ म शृगार किसी-न किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए किया गया, पर बाद म वह रूढि बनता गया।

जसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, मनुष्य का जस-जसे विकास होता गया उसम विभिन साधनो द्वारा अपने शरीर को अलक्त और विभूपित करन की रुचि उत्पन्न होती गई। नारी शृगार प्रसाधन से अपन रूप रग को सँवारन की ओर प्रवत्त हुई। पापाण-काल से लेकर आज तक शरीर को सजान के लाखो उपक्रम चलते रहे हैं। सौंदय-वद्धि के लिए जो साधन और उपक्रम काम मे लाए जात हैं उनम आभूपणो का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रागैतिहासिक काल म भी इसका प्रचलन था—हडप्पा तथा मोहन जो दडो के अवशेपा से यह बात सिद्ध होती है। डा० राय गोविन्दचन्द्र ने इन ध्वसावशेपा से प्राप्त सामग्री के आधार पर तत्कालीन प्रचलित आभूपणो पर ग्रथ का प्रणयन किया है। दूसरी ओर आज नारी के शृगार प्रसाधनो म भी अत्यधिक वृद्धि हो गयी है। एक ओर परम्परा स प्राप्त अनक शृगार रूढि बन चुके हैं, जिनको प्रगतिशील म प्रगतिशील नारी भी नहीं छोड पा रही है। दूसरी ओर अनेक नय प्रसाधनो का उपयोग भी बढ गया है।

अध्याय २

नारी-शृगार पृष्ठभूमि और परम्परा

' सौन्दय यदि वास्तविक सौन्दय होता है, तो हे आनन्द, इसम एक ऐसी आकषण शक्ति होती है जो मानव के मन को चुम्बक की तरह अपनी ओर खीच लेती है ।'

—भगवान तथागत

सौन्दय वह सौम्यप्रकाश है जिसे हम आँखो से देख नही सकते—वह असीम सगीत है जिसे हम कानो से सुन नही सकते ।'

—राधिका रमण सिंह

सौंदर्य और प्रसाधन

सौन्दर्य का अनुभव किया जा सकता है और प्रत्येक व्यक्ति इस जगत में प्राकृतिक तथा मानवीय सौन्दर्य का समय समय पर अनुभव करता है—चाहे वह क्षणिक ही क्यों न हो। पर सौंदर्य क्या है? उसके तत्त्व क्या हैं? इन प्रश्नों का उत्तर देना कठिन है। इस तत्त्व के अनुभव में जितना आनन्द है इसे परिभाषा में बाधना उतना ही कष्टकर है। यह ठीक है कि सौंदर्य के लिए प्रसाधना का प्रयोग पुरातन काल से चला आ रहा है पर प्राकृतिक सौंदर्य ही सर्वोपरि है, अलंकार तो उसमें वृद्धि ही कर सकते हैं।

महाकवि भास के अनुसार प्रकृत्या सुन्दर वस्तु को अलंकारों से और अधिक सुन्दर बनाया जा सकता है

"स्वभावरमणीयानि मण्डितानि अतिरमणीयानि भवन्ति।"

सौंदर्य वही है जो क्षण क्षण में नवीन रूप धारण करता रहता है

"क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।"

रूप के सम्बन्ध में डा० हरद्वारी लाल शर्मा ने स्पष्ट किया है कि संकुचित दृष्टि से तो केवल चक्षु के द्वारा ही रूप का निरूपण किया जाता है किन्तु व्यापक अर्थ में रूप का अर्थ—विन्यास, संयोजन, संगठन संघटना अथवा व्यवस्था किया जा सकता है—जिससे अनेक में एकता का बोध होता है। इससे ध्वनि में भी 'रूप' होता है जिससे संगीत का जन्म होता है। 'गति' में भी रूप होता है जिससे 'नृत्य' की अनुभूति उत्पन्न होती है। अनेक क्रियाओं की समष्टि का नाम जीवन, और विभिन्न अनुभवों की व्यवस्था का नाम विज्ञान है—इस दृष्टि से तो जीवन और विज्ञान भी 'रूप' बिना नहीं होते और इसी से ज्ञान और जीवन दोनों में ही रूप सौन्दर्य और आनन्द की पर्याप्त मात्रा रहती है।'[१]

एलिस ने सौंदर्य के तीन आवश्यक पक्षों पर बल दिया है—वस्त्रों से सुसज्जित, सुन्दर केश रचना तथा आत्मविश्वास, लेकिन इन प्रसाधनों से भी महत्त्वपूर्ण तत्त्व स्वास्थ्य[२] है जिसे भुलाया नहीं जा सकता।

---

१ डॉ० हरद्वारी लाल शर्मा—सौन्दर्यशास्त्र—१९५३ ई० पृ० ६८।

२ Physical attraction is one of the most vital forces in human beings and it is not merely commendable but plain common-sense for women to make the best of what Nature has bestowed on them In any event a face has to last for life and even though the tell tale signs of increasing years cannot be eliminated these can be least be modified and turned down

Ellis Aytoun The Essence of B[illegible]

अध्याय २

नारी-शृंगार पृष्ठभूमि और परम्परा

सौन्दय यदि वास्तविक सौन्दय होता है, तो है आनन्द इसमे एक ऐसी आकर्षण शक्ति होती है जो मानव के मन को चुम्बक की तरह अपनी ओर खीच लेती है।'

—भगवान तथागत

सौन्दय वह सौम्यप्रकाश है जिसे हम आँखो से देख नही सकते—वह असीम सगीत है जिसे हम कानो स सुन नहीं सकते।'

—राधिका रमण सिंह

पथक अपन गुणो क कारण आस्वादन के योग्य हो—तो वह रूप ही मधुर' कहलाता है। यदि सगीत म प्रत्येक स्वर, नत्य म प्रत्येक अगहार, चित्र म प्रत्यक वण और रेखा, रूपवती के शरीर म प्रत्येक गुण स्वय अपन गुणा से आह्लाद उत्पन्न करन हैं तो इन अवयवों के सम्मिलन से उत्प न 'रूप मे माधुय गुण जाग उठता है। रूप क आस्वादन म अगर 'समग्र रूपवान पदाथ का आस्वादन किया जाता है तो भी हमारी सौंदय भावना प्रत्येक अवयव और खण्ड का अवगाहन करती है।

इम स्पष्ट करते हुए डॉ० हरद्वारी लाल शर्मा लिखत हैं 'वह प्रत्यक खण्ड के अवगाहन स कभी अखण्ड रूप की ओर कभी अखण्ड रूप का आस्वादन करके खण्डा की ओर लौटती है। हमारे अवधान की यह पुन पुन होने वाली आकषण-विकषण निया स्वय चित्त म चमत्कार उत्पन्न करती है। निश्चय ही चमत्कार मधुर होता है। किसी समग्र' म अवयवो का यह चमत्कारी गुण 'माधुय' कहलाता है।[1]

इस ही डा० शर्मा और स्पष्ट करते हुए लिखते हैं अवयवा से गुम्फित समग्र म प्रत्यक खण्ड विभिन्न होने हुए भी विरोधी नही होता, अर्थात कोई अवयव समग्र के विपरीत भावना को उत्पन्न नहीं करता। अवयवो के इस उचित और अविरोधी वियास का गोस्वामी ने सुदर' कहा है। रूपगोस्वामी अवयवो के उचित सस्थान से उत्पन्न अविरोधी समन्वित प्रभाव को 'रूप' का प्राण मानते हैं।

सजीव रूप म यदि अवयव इस प्रकार गुम्फित हैं कि उनम तरलता जीवन का ओज और तरग की प्रतीति होती है तो हम रूप म लावण्य का अनुभव होता है। बहुधा हम सुदरी के शरीर म अवयवा की तरगायमान योजना को लावण्य कहत हैं, यदि यही गति और ओज—तरग और तरलता की अनुभूति म ज्यामितिक रूप म होती है तो इसे रूप का 'उदारता गुण माना जाता है। लावण्य और उदारता, ये रूप म जीवन का अनुभव कराने वाल गुण हैं। कवि श्रीहष दमयन्ती के रूप का वणन करते हुए कहत हैं कि वह अपन उदार गुणा के कारण धय है, जिनसे नल भी स्वय आकृष्ट हो गया है क्योंकि चद्रिका की इससे बढ़कर महिमा क्या होगी कि इसस समुद्र भी स्वय तरल हो उठता है।

रूप म आकषण का मुख्य कारण यही लावण्य और उदारता नामक गुण होते हैं जिनसे हमे जीवन का साक्षात् अनुभव होता है।

---

१ डॉ० हरद्वारी लाल शर्मा—सौंदर्य शास्त्र पृ० ७१।

उपयुक्त सिद्धात का भारतवप म अत्यधिक महत्त्व था। सौन्य के कवि कालिदास[1] ने जो सौन्य की प्रतिष्ठा की है वह उल्लेखनीय है। कवि क अनुसार सौंदय वही है जिससे नित्य प्रति आनन्द मिले। सच्चे सौन्य के लिए किसी भी उपकरण की आवश्यकता नही। कुमारसभव (५।६) और शाकुन्तलम (१।१६) के अनुसार कमल सवार स घिरा होने पर भी सुदर लगता है चद्रमा का कलक भी उसकी शाभा बढाता है। रूप म पवित्रता का महत्त्व है कालिदास इसकी तुलना बिना सूघे हुए फूल नखो स अछूते पल्लव, बिना बिंधे हुए रत्न बिना चखा हुआ नवीन मधु और बिना भोग हुए पुण्य के फल स करते हैं।

डा० गायत्री वर्मा के अनुमार कवि को सुकुमारता प्रिय है क्योकि उनकी चित्तवत्ति जितनी नारी सौंदय वणन म रमी, उतनी पुरुप-सौंदय म नही। पुरुप-सौन्य म कठोरता और वीरता ही सवत्र मिलती है परन्तु लावण्य कमनीयता, सलोनापन स्त्री सौंदय के प्रतीक हैं। स्त्री के एक एक अग म उन्होंने लावण्य और सुकुमारता के दशन किए।"[2]

कवि कृत्रिमावरण अवगुण्ठित सौंदय की अपेक्षा नसगिक सौंदर्य को ही श्रेष्ठ एव उत्तम समझता है। शकुन्तला का प्राकृतिक लावण्य ही दुष्यन्त को प्रभावित कर सका क्योकि उसके अधर किसलय क समान थे उसकी बाहु कोमल विटप का अनुकरण करने वाली थी और अगो का यौवन कुसुम के समान शोभनीय था। कइ स्थानो पर शकुन्तला किसी लता के समान प्रतीत होती है। सौन्य हमेशा सुदर ही लगता है चाहे किसी के साथ हो अथवा नही (सवशोभानीयम सुरूपम नाम)। इस प्रकार माधुय तथा 'रूप' को विशेष पक्ष स्वीकार किय गए हैं। वस्तुत सौन्य का प्राकृतिक रूप ही सर्वोपरि है और प्रतीत ऐसा होता है कि प्रसाधन किया गया है।

उज्ज्वलनीलमणि म इसकी स्थापना इस प्रकार की गई है कि बिना भूपित किय भी अगो का भूपितवत प्रतीत होना ही रूप है।

रूपगोस्वामी ने भक्तिरसामतसिंधु तथा उज्ज्वलनीलमणि मे रूप तथा माधुय की विस्तत व्याख्या की है

जिन अवयवो के सगठन म रूप का आविर्भाव होता है व स्वय भी पथक

---

१ मेघदूत के उत्तरमेघ २२ म प्रस्तुत एक सौन्दर्य चित्र उल्लेखनीय है दुबली-पतली यवावस्था को प्राप्त नकीले दातन की नोक की तरह पके हुए बिम्बाफल के समान निचले होंठ पतली कमर भयभीत हरिणी के समान नयन गहरी नाभि एव नितम्ब भार से मन्द मन्द गतिवाली स्तनो से झकी हुई सी तथा यवतियो म ब्रह्मा की प्रथम रचना-सी जो स्त्री वहाँ हो ।

२ कालिदास क ग्रथो पर आधारित तत्कालीन भारतीय सस्कृति पृ १६६ ६७।

हुए भी, आध्यात्मिक पक्ष भी है। सौंदर्य तभी सार्थक है, जब वह हमें प्रसन्नता का अनुभव कराए साथ ही हृदय में सजीवता तथा चेतनता और परमात्मा की अनुभूति हो। इसके विपरीत यदि उससे मोह, ऐंद्रिय लिप्सा, काम और बर्बरता उत्पन्न हो तो वह निरर्थक है। कालिदास ने 'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता' स्वीकार किया है। अपने सौन्दर्य से उमा द्वारा शिव का जीत पाना ही प्रमाणित करता है कि सौंदर्य की शक्ति अपार तथा अपरिमित है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उचित ही कहा है, 'मनुष्यता की सामान्य भूमि पर पहुँची हुई संसार की सब सभ्य जातियों में सौंदर्य के सामान्य आदर्श प्रतिष्ठित हैं।'[1] सामान्य भूमि ही नारी की सुन्दरता, मृदुता, सुकुमारता, कृशता, लावण्य, प्रभा, उज्ज्वलता, यौवन, सुगठता, गठन शीलता, उभार और विकास है। लेकिन कौन सा अंग कैसा होना चाहिए—जिसमें अधिक सुन्दर प्रतीत हो, इसका विवरण जायसी ने पद्मावत[2] में इस प्रकार दिया है :

चार दीर्घ केश, अंगुली, नयन, ग्रीवा।
चार लघु—दशन, कुच, ललाट, नाभि।
चार भरे हुए—कपोल, नितंब, जांघ, कलाई।
चार क्षीण—नाक, कटि, पेट, अधर।

इन सामान्य आदर्शों की प्रतिष्ठा का श्रेय ही कला को है। नारी अपने आप में एक सौंदर्य और कला है दूसरे शब्दों में—नारी कला एवं सौंदर्य का समन्वित सजीव रूप है। ऐसी स्थिति में कला, सौंदर्य एवं नारी एक दूसरे के पूरक ही हैं, फलतः सौंदर्य ही नारी की शोभा है।

कामशास्त्रीय दृष्टि से कमलनयनी, क्षुद्ररंध्र नासिका वाली, अविरल कुच-युग्मा, दीर्घकेशी, कृशांगी, सुवर्ण की-सी कांतिवाली, पद्मगंधा, सुवेशी, मृगनयनी, सुकुमारी, लज्जाशीला, राजहंस की-सी गतिवाली, मृदुल मुस्कान संयुक्त होना नारी के सौन्दर्य का लक्षण है।

सुन्दरता का ही दूसरा नाम है आकर्षण। आकर्षक व्यक्तित्व ही असली सुन्दरता है और व्यक्तित्व में आकर्षण लाना ही मूल रहस्य है जिसने प्रसाधन तथा सज्जा की ओर नारी को उन्मुख किया। सुन्दरता प्रकृति की देन भी है, पर जब प्रकृत्या नारी सुन्दर न हो तो प्रयत्न से उसे सुन्दर बनाये रखना ही 'शृंगार'[3] कहलाया। सभ्यता के प्रारम्भ से ही, मानव में सौंदर्यवर्धन हेतु अपने को सजाने

१ रामचन्द्र शुक्ल—रस मीमांसा सं० २००६ पृ० ३०।
२ जायसी पद्मावत—दोहा २९६।
पुनि सोलह सिंगार जस, चारिहु जोग कुलीन।
दीरघ चारि चारि लघु, चारि सुभर चहुँ खीन॥
३ शृंगं प्राधान्यम् इयर्ति इति शृंगार॥—अमरकोष।

इस प्रकार सौंदय विज्ञान के अनुसार, रूप के प्रधान गुण हैं—सापेक्षता (Proportion) समता (Symmetry), सगति (Harmony) तथा सतुलन (Balance)। सौन्दर्य के प्रधान तत्त्व म मतभेद है—अरस्तू[1] यदि किसी उच्चता को प्रधानता देते हैं तो एडमण्ड बक 'लघुता' को। जेम्स सली (James Sully) न सापक्षता (Proportion) सगति (Harmony) और विभिन्न अगो के मध्य एकता पर बल दिया। चीनी तथा जापानी विचारकों न समता की अपेक्षा सतुलन पर विशप बल दिया। साथ ही सूक्ष्मता और रहस्य इसके प्रधान गुण स्वीकार किये गए हैं। प्लोटिनस (Plotinus) ने सरलता पर बल दिया है। सेंट थामस एक्वीनस (Thomas Aquinas) न स्पष्टता, रग की चमक समता तथा रूप म सतुलन पर बल दिया। पथागोरस (Pythagoreaus) ने सौन्दय का आधार तत्त्व विभिन्न अगो म ज्यामितिक सम्बन्धो पर स्थापित किया। लियानार्डो[2] न एक फामूले का आविष्कार किया कि सुन्दर मानव शरीर की लम्बाई चेहरे की लम्बाई से दस गुनी होनी चाहिए।

व्यक्तिगत रुचि का भी प्रभाव सौंदय के आस्वादन पर पडता है। रसकिन[3] ने सौंदय को आध्यात्मिक माना है और इसके अन्तगत अनन्तता (Infinity) एकता (Unity) सुस्थिरता (Repose) समता (Symmetry) पवित्रता (Purity) तथा परिमितता (Moderation) के गुणों को स्वीकार किया है।[4]

रूपगोस्वामी ने भी सौन्दय का सश्लिष्ट रूप प्रस्तुत किया है

अगप्रत्यगकाना य सनिवेशो यथोचितम।
सुश्लिष्टसधिबन्ध स्यात्तत्सौन्दयमितीयते ॥[5]

यह सब होते हुए भी, सभ्यता के आरम्भ म ही अलकारो का युग प्रारम्भ होता है।

इस प्रकार सौन्दय एक सापेक्षिक शब्द है जिसके मूल्याकन म व्यक्तिगत रुचि का भी पर्याप्त प्रभाव पडता है। सौंदय का शारीरिक तथा लौकिक पक्ष होते

१ Aristotle in his Poetics tells us that a certain magnitude is one of the essentials of beauty but the modern thinker Edmund Burke tells us that Smallness is one of these essentials Aristotle gives us order symmetry definiteness or determinateness and the certain magnitude Marshall H R The Beautiful 1924 London pp 15 16

२ The really beautiful human body has a total height equal to ten times *the length of the face*

३ Ibid pp 37

४ Ibid pp 231

५ रूपगोस्वामी उज्ज्वलनीलमणि उद्दीपन प्रकरणम २६।

हुए भी आध्यात्मिक पक्ष भी है। सौंदर्य तभी सार्थक है, जब वह हमें प्रसन्नता का अनुभव कराए साथ ही हृदय में सजीवता तथा चेतनता और परमानन्द की अनुभूति हो इसके विपरीत यदि उससे मोह, ऐंद्रिय लिप्सा काम और दम्भ उत्पन्न हो तो वह निरर्थक है। कालिदास ने 'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता' स्वीकार किया है। अपने सौन्दर्य से उमा द्वारा शिव को जीत पाना ही प्रमाणित करता है कि सौन्दर्य की शक्ति अपार तथा अपरिमित है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उचित ही कहा है 'मनुष्यता की सामान्य भूमि पर पहुँची हुई संसार की सब सभ्य जातियों में सौंदर्य के सामान्य आदर्श प्रतिष्ठित हैं।'[1] सामान्य भूमि ही नारी की सुन्दरता मृदुता, सुकुमारता कृशता [illegible] प्रभा उज्ज्वलता यौवन मुग्धता गठन शीलता उभार और विकास है। [illegible] कौन सा अंग कैसा होना चाहिए—जिसमें अधिक सुन्दर प्रतीत हो [illegible] विवरण जायसी ने पद्मावत[2] में इस प्रकार दिया है

चार दीर्घ केश अंगुली नयन ग्रीवा।
चार लघु—दशन, कुच ललाट नाभि।
चार भरे हुए—कपाल नितंब, जांघ कलाई।
चार क्षीण—नाक कटि पट अधर।

इन सामान्य आदर्शों की प्रतिष्ठा का श्रेय ही कला को है। नारी [illegible] में एक सौन्दर्य और कला है दूसरे शब्दों में—नारी कला एवं सौन्दर्य का [illegible] सजीव रूप है। ऐसी स्थिति में कला सौंदर्य एवं नारी एक-दूसरे के पूरक [illegible] फलतः सौन्दर्य ही नारी की शोभा है।

कामशास्त्रीय दृष्टि से कमलनयनी छुद्ररंध्र नासिका वाली [illegible] युग्मा दीपकशी कृशांगी सुवर्ण की-सी कांतिवाली पद्मगंधा मृगाक्षी [illegible], सुकुमारी लज्जाशीला राजहंस की-सी गतिवाली, मधुर मुस्कान [illegible] नारी के सौंदर्य का लक्षण है।

सुन्दरता का ही दूसरा नाम है आकर्षण। आकर्षक [illegible] सुन्दरता है और व्यक्तित्व में आकर्षण लाना ही मूल रहस्य है [illegible] तथा सज्जा की ओर नारी को उन्मुख किया। सुन्दरता प्रकृति [illegible] जब प्रकृत्या नारी सुन्दर न हो तो प्रयत्न से उसे सुन्दर बनाने [illegible] कहलाया। सभ्यता के प्रारम्भ से ही मानव में सौन्दर्य [illegible],

१ रामचन्द्र शुक्ल—रस मीमांसा सं० २ ०६ पृ० ३०।

२ जायसी पद्मावत—दोहा २९६।

पुनि सोलह सिंगार जस चारिहु जोग कुलीन।
दीरघ चारि चारि लघु चारि सुभर —हु खीन॥

३ शृंग प्राधान्यम् इयति इति शृंगार ॥—अमरकोष।

इस प्रकार सौंदय विज्ञान के अनुसार, रूप के प्रधान गुण हैं—सापेक्षता (Proportion), समता (Symmetry), सगति (Harmony) तथा सतुलन (Balance)। सौंदर्य के प्रधान तत्त्व म मतभेद है—अरस्तू[1] यदि किसी उच्चता को प्रधानता दते हैं, तो एडमण्ड बक 'लघुता' को। जेम्स सली (James Sully) न सापेक्षता (Proportion) सगति (Harmony) और विभिन्न अगा क मध्य एकता पर बल दिया। चीनी तथा जापानी विचारको न समता की अपेक्षा सतुलन पर विशष बल दिया। साथ ही सूक्ष्मता और रहस्य इसके प्रधान गुण स्वीकार किये गए है। प्लोटिनस (Plotinus) ने सरलता पर बल दिया है। सेंट थामस एक्वीनस (Thomas Aquinas) न स्पष्टता रग की चमक समता तथा रूप म सतुलन पर बल दिया। पथागोरस (Pythagoreaus) ने सौन्दय का आधार तत्त्व विभिन्न अगो म ज्यामितिक सम्बन्धो पर स्थापित किया। लियोनार्डो[2] न एक फामूले का आविष्कार किया कि सुन्दर मानव शरीर की लम्बाई चेहरे की लम्बाई से दस गुनी हानी चाहिए।

व्यक्तिगत रुचि का भी प्रभाव सौंदय के आस्वादन पर पडता है। रसकिन[3] न सौंदय को आध्यात्मिक माना है और इसके अ तगत अनन्तता (Infinity), एकता (Unity) सुस्थिरता (Repose) समता (Symmetry) पवित्रता (Purity) तथा परिमितता (Moderation) क गुणो को स्वीकार किया है।[4]

रूपगोस्वामी ने भी सौंदय का सश्लिष्ट रूप प्रस्तुत किया है

अगप्रत्यगकाना य सनिवेशो यथोचितम।
सुश्लिष्टसधिबन्ध स्यात्तत्सौन्दर्यमितीयते ॥[5]

यह सब होते हुए भी सभ्यता के आरम्भ म ही अलकारो का युग प्रारम्भ होता है।

इस प्रकार सौन्दय एक सापेक्षिक शब्द है, जिसके मूल्याकन म व्यक्तिगत रुचि का भी पर्याप्त प्रभाव पडता है। सौदय का शारीरिक तथा लौकिक पक्ष होते

---

१ Aristotle in his Poetics tells us that a certain magnitude is one of the essentials of beauty but the modern thinker Edmund Burke tells us that Smallness is one of these essentials Aristotle gives us order symmetry definiteness or determinateness and the certain magnitude Marshall H R The Beautiful 1924 London pp 15 16

२ *The really beautiful human body has a total height equal to ten times* the length of the face

३ Ibid pp 37

४ Ibid pp 231

५ रूपगोस्वामी उज्ज्वलनीलमणि उद्दीपन प्रकरणम २६।

आलकारिक (काव्यशास्त्रीय) दृष्टि से, नारी सौंदय के अनकरण म अट्ठाइस अलकार स्वीकार किये गय है

अगज ३—भाव हाव, हेला

अयत्नज-७—शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुय, प्रगल्भता औदाय, धय

स्वभावज[1] १८—लीला, विलास, विच्छिति, विब्बोक किलकिंचित मोट्टायित कुट्टमित, विभ्रम, ललित, मद विहृत, तपन, मौग्ध्य विक्षप, कुतूहल, हसित चकित तथा केलि।

अलकरण तथा वेशभूषा का विभिन्न रूपाकतियो पर भिन्न प्रभाव पडता है।[2]

प्रसाधन आरम्भ मे प्रकति प्रदत्त पदार्थों स ही शुरू हुआ—मन शिला सिन्दूर हरिताल और अजन आदि। बाद म शरीर की चिकनाहट को दूर करन के लिए लाध्रचूण का उपयाग हुआ। कालान्तर म अनेक प्रकार के फूल और गजरे, इत्र फुलेल, सुगन्धित द्रव्य और चूण धूप, विभिन्न लेप, अजन मुख पर पत्र लेखन कर पद म महदी महावर कस्तूरी कुकुम आदि प्रसाधन-सामग्री के रूप म विकसित हुए। इस सामग्री को रखन के लिए प्रसाधन-पेटिका होती थी। मथुरा तथा भरहुत म प्राप्त अनक प्रस्तर खण्डो पर प्रसाधिकाएँ इन पेटिकाओ के साथ मूत रूप म हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के 'भारत कला भवन' म ऐसी ही एक प्रसाधिका प्रदर्शित की गई है।

अनेक प्रकार की विधियो स प्रसाधन सम्पन्न होता था। प्रसाधन हतु रग और रेखा का उपयोग किया जाता था। 'वेणी प्रसाधन बहुत प्राचीन काल से चलता आया है 'मुख प्रसाधन का बडा विस्तत वर्णन अश्वघोष न किया है। डॉ० भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार 'मुख' प्रसाधन बडे कुशल श्रम का काय

नितम्ब तक मानी जाती थी। इसे लाइन और च्यूटी का नाम इसलिए दिया गया था कि यह माना गया था कि इसी रेखा का बकिम्न निर्धारित करता है कि पूरा स्त्री शरीर—क्योंकि सौन्दय नारी प्रतिमा का ही होता था—कितना सुन्दर होगा।

अज्ञेय—अद्यतन पृष्ठ स० ६४।

१ भरत न केवल दस सख्या निर्धारित की थी फिर भोज तथा विश्वनाथ न इसम वृद्धि की और बोधक को जोडकर इसको १६ भी माना गया है।

२ घुर महादय न नैषधचरित १३।४७ के आधार पर स्पष्ट किया है

The attire created new beauty for some who did not naturally possess any it simply manifested the natural charms of some who possessed them in moderate amount it enhanced the charms of some others in the case of some ladies who had inherent perfect beauty howe er it concealed their charms

G S Ghurye—Indian Costume 1951

३ The face is essentially the focal point of feminine beauty Quite obviously it is the feature which gives the clearest and most vivid reflection

सँवारन तथा विविध प्रसाधनो के उपयोग की प्रवत्ति रही है। सभ्यता के प्रारम्भ से ही प्रकृति के उपादान—पत्थर मिट्टी अय धातुओ के अनगढ टुकडे उसक रूप और सौन्य का परिवधन करते रहे हैं। सभ्यता के विकास के साथ इन प्रसाधनो म भी परिवतन होता गया फलस्वरूप साधना और वस्त्राभूषणो की सख्या बढती बदलती चली गयी। प्रारम्भ से ही नारी अपनी सुन्दरता बढाने के लिए जागरूक रही अत उसके प्रसाधनो म वृद्धि होती गयी। बहुमूल्य वस्त्र सुन्दर भूषण एवम शृगार-सज्जा के अय साधनो की सख्या सभ्यता की कसौटी बन गयी। रूप सौन्य का प्रभाव मोहक मादक मारक तथा लोक यापी हो सकता है। रूप को अधिक सुषमापूण तथा प्रभावशाली बनाने के लिए शृगार चष्टा और अलकरण प्रसाधनो की ओर नारी उमुख हुई फलस्वरूप उसने प्रकृति म यत्र-तत्र अपने लिए उपादेयता की दृष्टि से सौंदय खोजना प्रारम्भ कर दिया।

प्राचीन वाङ मय म अपने विषयगत सौन्य के लिए लावण्य मानव शरीर की अतर्बाह्य अवस्था के लिए तथा पेशस अलकरण के लिए प्रयुक्त होता था। वसे तो जो स्वय प्रकाशमान है—अलकार उसे बिगाड भी सकते हैं और रूपा कषण के अनुकूल सिद्ध होने पर बढा भी सकते हैं। प्रकृति से ही जो सुन्दर है उसे बाह्य अलकरण की आवश्यकता नही। मधुर आकृतियों का मण्डन [1] भला अलकार क्या करेंगे? यही भावना वदिक काल म भी थी कि अलकार विषय को सुन्दरता प्रदान नही करते अपितु विषय ही अलकार को सुन्दर बनाता है। अलकार सुन्दर वस्तु को भी कभी-कभी असुन्दर रूप म प्रस्तुत कर सकते हैं। कभी कभी शरीर के अनुकूल वस्त्र भी उसे असुन्दर रूप म प्रकट करते हैं। पाश्चात्य सौन्य म 'लाइन आफ ब्यूटी'[3] का जिक्र भी मिलता है।

शृगार शचिरुज्ज्वल ॥ वर्गो नाटयवग १८।
शृग कामोद्रेक ऋच्छति इति शृगार ॥ यशवत यशोभूषण।
प्रशस्त शृगम अस्यास्ति इति शृगार ॥ अभिनवभारती।

१ रूप की पूणता और एकता में कई तत्व रहते हैं। जसे
 (क) अगों की अनेकता और अनवता ही भरी विविधता।
 (ख) अगो म परस्पर और समन्वित सम्बध।
 (ग) अगी अथवा समान उद्दश्य की व्यापकता अथवा अगो की सोद्दश्यता।
 (घ) अगी अथवा एक का उन्य और ग्रहण।
 (ङ) इसी प्रकार एक म अनेक का विलीन होकर स्पष्ट उदय और ग्रहण।
 डॉ० हरद्वारी लाल शर्मा—सौन्य का मवस्व रूप-स पत्रिका ४६।२

२ कालिदास—शाकुन्तलम १।१६
 किमिव हि मधुराणा मण्डन नाकृतीनाम।

३ पुरानी कला की आलोचना मे लाइन आफ ब्यूटी (सौं य रेखा) नाम की एक रेखा का उल्लेख होता था और यह रेखा कध से पीठ और कमर को छूती हुई या आकार देती हुई

आलकारिक (काव्यशास्त्रीय) दृष्टि से, नारी सौदय क अलकरण म अट्ठाइस अलकार स्वीकार किये गय है

अगज ३—भाव हाव, हेला

अयत्नज ७—शोभा, कान्ति, दीप्ति माधुय, प्रगल्भता औदाय धय

स्वभावज[1] १८—लीला विलास, विच्छिति विब्बोक किलकिंचित मोट्टायित कुट्टमित, विभ्रम, ललित, मद विहृत तपन, मौग्ध्य विक्षेप, कुतूहल, हसित चकित तथा केलि।

अलकरण तथा वशभूषा का, विभिन्न रूपाकृतियो पर भिन्न प्रभाव पडता है।[2]

प्रसाधन आरम्भ म प्रकृति प्रदत्त पदार्थों स ही शुरु हुआ—मन शिला सिन्दूर हरिताल और अजन आदि। बाद मे शरीर की चिकनाहट को दूर करन क लिए लोध्रचूण का उपयोग हुआ। कालान्तर म अनेक प्रकार क फूल और गजर, इत्र फुलेल, सुगन्धित द्रव्य और चूण, धूप विभिन्न लेप अजन मुख पर पत्र लेखन कर पद म महदी महावर, कस्तूरी कुकुम आदि प्रसाधन सामग्री के रूप म विकसित हुए। इस सामग्री को रखन के लिए प्रसाधन पेटिका होती थी। मथुरा तथा भरहुत म प्राप्त अनक प्रस्तर खण्डो पर प्रसाधिकाएँ इन पेटिकाओ के साथ मूत रूप म हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भारत कला भवन' म एसी ही एक प्रसाधिका प्रदर्शित की गई है।

अनेक प्रकार की विधियो से प्रसाधन सम्पन्न होता था। प्रसाधन हतु रग और रेखा का उपयोग किया जाता था। वेणी प्रसाधन बहुत प्राचीन काल से चलता आया है 'मुख प्रसाधन का बडा विस्तत वणन अश्वघोष न किया है। डा० भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार मुख' प्रसाधन वडे कुशल श्रम का काय

नितम्ब तक मानी जाती थी। इसे लाइन ऑफ ब्यूटी का नाम इसीलिए दिया गया था कि यह माना गया था कि इसी रेखा का अंकन निर्धारित करता है कि पूरा स्त्री शरीर—क्योंकि सौन्दय नारी प्रतिमा का ही होना था—कितना सुन्दर होगा।

अनय—अद्यतन पृष्ठ स ६४।

१ भरत ने केवल दस सख्या निर्धारित की थी फिर भोज तथा विश्वनाथ ने इसम वृद्धि की और बोधक' को जोडकर इसको १९ भी माना गया है।

२ घुर महोदय ने श्रीहटचरित १३।४७ के आधार पर स्पष्ट किया है

The attire created new beauty for some who did not naturally possess any it simply manifested the natural charms of some who possessed them in moderate amount it enhanced the charms of some others in the case of some ladies who had inherent perfect beauty howe er it concealed their charms

G S Ghurye—Indian Costume 1951

३ The face is essentially the focal point of feminine beauty Quite obviously it is the feature which gives the clearest and most vivid reflection

था, सिद्धहस्त चितेरे का। ऊपर भाल पर श्वेत चन्दन की रेखा से, श्याम अलकों की सीमा धनुषाकार—कान से कान तक बाँध देते थे। सामने ललाट के बीच भक्ति लिखी जाती थी—रक्त चन्दन की वत्ताकार नन्ही बिन्दियों के बीच, घेरे में ठीक चन्द्र पर श्वेत चन्दन की बिन्दी लगाकर अनेक बार भक्ति-लेखन की यह विधि बदलकर उलटी भी कर ली जाती थी—बाहर की ओर श्वेत बिन्दियों का घेरा और बीच में कुंकुम या रक्त चन्दन की एक बिन्दी। कभी-कभी केसर की अकेली बड़ी बिन्दी का तिलक लगता था कभी कालागुरु या अंजन की बिन्दी लगती थी। अनेक बार हरिताल या मन शिला से बने घोल से भी नारियाँ अपने भाल के बीच में तिलक लगाती थी। नीचे सलाई से भवों को श्यामतर कर, उनके ऊपर केश सीमा की भाँति धनुषाकार श्वेत चन्दन की रेखा खींच दी जाती थी। अण्डाकार, वत्ताकार मुख मण्डल के अनुसार विशेषक लिखते या पत्र रचना करते थे।[1]

प्रसाधन से शृंगार का मुख्य उद्देश्य—रूप में सौंदर्य-वृद्धि था पर कालान्तर में स्वास्थ्य की दृष्टि भी सम्मिलित हो गयी। आँखों में अंजन लगाने से आँखों के सौंदर्य के साथ नेत्रों को ज्योति भी मिलती है। प्रसाधन में पुष्पों का महत्त्व आज तक बना हुआ है। पुष्प सौंदर्य और स्वास्थ्य के साथ रस' भी प्रदान करते हैं।

प्रसाधन किसको प्रिय नहीं है। अविन्द्र' इसका सम्बन्ध मन तथा आत्मा से मानते हैं—'इसका सम्बन्ध मन आत्मा के साथ रहने से यह शिक्षित-अशिक्षित, स्त्री-पुरुष सभी में समान रूप से है। इसलिए आज की भाँति प्राक् ऐतिहासिक काल में तथा इसके पश्चात् युग-युगान्तर में भी इसके प्रमाण मिलते हैं। इससे सिद्ध है कि प्रसाधन कार्य में मनुष्य की रुचि जन्मजात है जिस प्रकार 'काम नित्य है उसी प्रकार प्रसाधन प्रवत्ति' भी नित्य शाश्वत रही है।

प्रसाधन और शालीनता

प्रसाधन द्वारा विशिष्ट बनने की प्रवत्ति स्वाभाविक है। पर विशिष्ट बनकर

---

of the mind the personality the soul behind and the most arresting points in this dominant aspect of woman undoubtedly are the eyes their shape size colour brightness are all significant but far more so is their expression

E Macdonald—Live by Beauty—1960 pp 102

१ डॉ भगवतशरण उपाध्याय—तन और तूलिका—साप्ताहिक हिन्दुस्तान १६ जनवरी १९६६।

२ अविन्द्र विद्यालंकार—प्राचीन भारत के प्रसाधन पृ २६।

३ प्रसाधन किये हुए के लिए पाँच शब्द चलते थे

मण्डित प्रसाधितोऽलङ्कृतश्च भूषितश्च परिष्कृत ॥

अमरकोष । मनुष्य । ११ ।

भी तत्कालीन सामाजिक रीति रिवाजा के अनुकूल बन रहना ही शालीनता है। शालीनता सभ्य समाज की देन कही जा सकती है। फ्लगल न शालीनता को मूलभूत कारण न मानकर, आदत एव परम्परा को इसकी उत्पत्ति का कारण बताया है क्योकि देश और काल के अनुसार इसका स्वरूप भी बदलता दिखाई देता है। साधारणत स्त्रियाँ आकर्षक लगने के लिए वस्त्र धारण करती हैं। अलकरण हेतु शस्त्र धारण करना— शालीनता' स दूर हटना है। आज के युग में यह बात स्पष्ट दिखाई दे रही है। परिस्थिति के अनुसार, वयक्तिक सम्बन्धा क आधार पर शालीनता प्रकट करने का रूप भी बदलता रहता है। प्रसाधन तथा वशगत शालीनता सामाजिक शिष्टाचार पर आधारित है।[1]

शारीरिक दृष्टि से अपनी शक्ति क द्वारा, और मस्तिष्क स अनेक आविष्कार कर मानव निर तर अपन को विशिष्ट बनान का प्रयत्न करता रहा है। विजय-चिह्न भी अलकरण के साधन बन गए हैं। प्रारम्भ म वस्त्राभूषण समाज म शालीन बनन के हेतु अपनाये गए और कालान्तर म समाज की मान्यताएँ बदलती रही। फलस्वरूप 'प्रसाधन क साथ शालीनता सापेक्षिक बन गया। युग की मान्यताओं के अनुसार अगर कोई नारी शृगार प्रसाधन नही करती, तो वह अशालीन' समझी जाती है।

शृगार प्रसाधन तथा मनोविज्ञान

प्रसाधन का सीधा सम्बन्ध मनोविज्ञान स है। वस तो सौंदय का मनोवज्ञानिक प्रभाव पडता है साथ ही दशक की मन स्थिति के अनुसार सौंदय का कम अथवा अधिक प्रभाव पडता है। सौंदय का मनोवनानिक अध्ययन भी पर्याप्त किया गया है। नारी के सौंदय का कामोद्रेक[2] स मनोवनानिक सम्बन्ध है।

---

१ Modesty by its very nature seems to be something that is secondary it is a reaction against a more primitive tendency to sell display .. not only it vary enormously from place to place from age to age and from one section of society to another but even within a given circle of intimates The actual manifestations of modesty appear indeed to be entirely a matter of habit and convention

J C Flugel Psychology of Clothes pp 19

इस सबंध में डॉ० मालती के विचार से मैं सहमत हूँ

एक युवती अपने गुरुजनों के सम्मुख उपस्थित होगी तो उसको शालीनता का ध्यान रखना पड़ेगा लेकिन हर बनते हुए संबंध क साथ उसका रूप भी परिवर्तित हो जाएगा। अत मात्र यौन आकर्षण ही उसका उद्देश्य मानना संगत नहीं लगता।

२ The sexually beautiful object must have appeal d to fundamental physiological aptitudes of reaction the generally beautiful object must have shared in the thrill which the specifically sexual object imparted

Havelock Ellis Psychology of Sex 1954 pp 64..

हाय सँधुउरा सँदुर भरा, भीतरि मडप चाद पउ धरा।
(हाथ म सि दूर पूरित सि दूर[1] पात्र लिया तथा मडप क भीतर चन्दा न पर रखा।)

शृगार शुचिरुज्ज्वल ।—अमरकाष १।१८

सिंधु घाटी सभ्यता और शृगार प्रसाधन

मानव म प्रसाधन की प्रवृत्ति आरम्भ से ही पायी जाती है। बुद्धिवादी मानव अपन शरीर की आर स नितान्त निरपेक्ष नही रह सकता। सष्टि की प्रारम्भिक रचना के समय स ही सभी स्थानों पर मानव म प्रसाधन की ओर झुकाव पाया जाता है। सि धु घाटी की सभ्यता का अध्ययन करन स भी जान पडता है कि लोग शरीर की स्वच्छता को भी उतना ही महत्त्व देते थे जितना धम का। मोहन जो-दडा तथा हडप्पा की खुदाई स प्राप्त अवशेषा म अनेक ऐस प्रमाण प्राप्त हुए हैं—जिनसे सिद्ध होता है कि उस आदियुग म भी मानव का ध्यान प्रसाधन तथा अलकरण की ओर गया था। प्राकृतिक वातावरण मे सवप्रथम उसका ध्यान प्रकृति म प्राप्त तथा सुलभ वस्तुओ की ओर ही गया था। वातावरण म प्राप्त वस्तुए ही उनके अलकरण का माध्यम बन गयी। सोन चाँदी रगीन नगा आदि स निर्मित अनक प्रकार के गहने प्राप्त हुए हैं। प्राप्त गहनो[3] के प्रकार ये है—(अ) माथ पर गालाई म बाधन के लम्बे सुनहल पात जो पतले फीते की भाँति हैं। इनक दाना सिरो पर बाँधने के लिए महीन सुराख है। (आ) सोन के कुलफीनुमा कर्णाभरण कटिप्रदेश की मेखला, हरियाले यशब के मोटे मनका को पिरोकर बनाए हुए हार, सोने के मटर जस दाना की मटरमाला अगूठियाँ काना की बाली हाथ के कगन और कड।

सबसे महत्त्वपूण तथ्य यह है कि जूडे म प्रयुक्त होन वाल विभिन्न प्रकार क काँटे[4] तथा हाथी-दाँत की सुरमे की शलाकाएँ कधी दर्पण की मूठ डिबिया आदि

---

१ डा माता प्रसाद गप्त—चन्दायन १९६७ ई प २३६ २४।

२ सिन्दूर के विशय विवेचन के लिए माँग मे सिन्दूर' द्रष्टव्य है।
डॉ परमेश्वरी लाल गुप्त ने इसका सिधौरा —सिन्दूर रखने का पात्र कहा है। विवाहित स्त्रियाँ देवस्थान पूजा आदि अवसरों पर इस अपने साथ रखती रही हैं।
(चन्दायन स २५३ पृष्ठ स २२४)

३ डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल—भारतीय कला, पृथ्वी प्रकाशन वाराणसी १९६६ ई पृ ६।

४ डॉ अग्रवाल ने इन काँटा के सात प्रकार बताये है (१) दो कृष्ण मग पीठ फरे हुए आकृति (२) सिरे पर आमन-सामने दो धिरारे (३) हाथी-दाँत स बने एक नमून के सिरे पर एक बड सींगवाली पहाडी बकरी की आकृति (४) तीन बन्दर गलबन्यों की मद्रा म (५) कमल के फल्ले की कणिका (६) कुत्त जसे सिर की आकृति (७) अन्य विभिन्न आकृतियाँ।

भी मिलती है—जिनसे उस युग की प्रसाधन-कला का स्पष्ट रूप पता चलता है।

वदिक काल

सामाजिक जीवन म शरीर को सुसज्जित करन की प्रथा प्राचीन काल स रही है। शरीर को स्नानादि से स्वच्छ करके, लेप या चूर्ण से सुगंधित कर अलंकार धारण वदिक काल से चला आ रहा है। वदिक काल म भी शरीर को सजाने की अभिरुचि थी। ऋग्वेद[1] म भी शरीर को अति सजाने वाल मरुतो की उपमा स्त्रियो से दी गयी है। ऋग्वेद म इन्द्र के हिरण्यमय होने का उल्लेख मिलता है—जिसस सिद्ध होता है कि शृंगार प्रसाधनो के द्वारा स्वर्णिम बन जाने की प्रथा थी। नवनीत स सारे शरीर का अनुलेपन होता था। अथववद[2] क अनुसार, वर-वधू दोनों विवाह के अवसर पर आँखो मे अजन लगाते थे। वदिक अजन सभवत सुगंधित लेप होता था—जो नेत्रो के अतिरिक्त शरीर पर भी लगता था। नेत्र-ज्योति के लिए सौवीर नामक अजन लगाया जाता था। इसके प्रयोग स आँखें सुन्दर और सूक्ष्मदर्शी बन जाती थी। तगर, उशीर को एक साथ कूट कर चूर्ण (सुगंधित द्रव्य) बनाने की प्रथा थी।

स्त्रियो के सिर के आभूषणों म 'कुरीर' तथा 'ओपश'[3] मुख्य थ। उषा के समान अनुराग वाली नववधू जब अपने पति के साथ जाने को हो, तो उसको उत्तम उत्तम उपदेश दिए जाते तथा उस कुरीर[4] तथा ओपश नाम के आभूषणो से सजाया जाता था। ओपश कदाचित मस्तक के चारो ओर लपेटकर पहना जाता था। कानो म सुचक्रम (ऋक० १०।८५।२०) तथा गले म 'माला निष्क हिरण्य-उवसी और रुक्म पहनने का प्रचलन था। बाहु म 'भुज, रवादि, नय तथा कटि म योचनी (करधनी का पूर्ण रूप) तथा हिरण्यनतनी का प्रचलन था। परो म भी मड जस कोई आभूषण पहना जाता था तथा स्वर्ण मे बना पायजेब जसा हिरण्यपावा कहलाता था। आगे चलकर अन्य आभूषणों के साथ मणियो का विशेष प्रचलन बढ़ गया।

---

१ ऋग्वेद १।८५।१—डॉ रामजी उपाध्याय—प्राचीन भारतीय साहित्य की सास्कृतिक भूमिका पृ ८१४।

२ अथव १४।२।३१—डॉ० रामजी उपाध्याय—प्राचीन भारतीय साहित्य की सास्कृतिक भूमिका पृ० ८१६।

३ डॉ० राय गोविन्दचन्द्र—वैदिक युग के भारतीय आभूषण—वाराणसी १९६५।

४ सिर क बालो के गुच्छों को कसने के लिए 'कुरीर' नामक अलंकार पहना जाता था। केशो म फूल लगाने की प्रथा थी। कुम्ब नामक अलंकार भी सिर पर धारण किया जाता था।

महाभारत काल और प्रसाधन

महाभारत काल म प्रसाधन कार्य मे पटु महिला सर ध्री कहलाती थी। विराट पव (३।१८।१६) के अनुसार द्रौपदी का यही रूप मिलता है। अनेक प्रकार के अलकारो के प्रयोग मिलते हैं— स्वणमाला कुण्डल मणिरत्न निष्क (गल का हार) कम्बु केयूर। भौहो के बीच म कत्रिम चिह्न बनान की प्रथा थी। यह कत्रिम चिह्न 'पिप्लु' कहलाता था— अस्या ह्यपि भ्रवोमध्य सहज पिप्लुरुत्तम (वन पव ६६।५) सभा पव म चन्दन के लेप की, आदि पव म तुग नामक सुगधित द्रव्य म काले अगरु को मिलान की प्रथा का उल्लेख है। चन्दन बेलफूल तगर बकुल आदि पुष्पो से सज्जित होने की प्रथा का उल्लख मिलता है। केश प्रसाधन तथा अजन का स्पष्ट उल्लेख मिलता है [1]

प्रसाधनञ्च केशानामाजन दन्तधावनम।
पूर्वाह्न एव कार्याणि देवातानां च पूजनम् ॥

आरण्यक म उल्लेख मिलता है कि नारी बहुमूल्य मालाए आभूषण और अगरागो स तथा पवित्र सुगधित द्रव्यो से शोभित होकर अपने पति की आराधना करे

'महाहमाल्याभरणाङ्गरागा भर्तारमाराध्य च पुण्यगधा।'

पति की अनुपस्थिति म नारी की मनोदशा खिन्न रहती है। अनुशासन पव म इसका उल्लेख मिलता है जिसम स्पष्ट रूप से 'प्रसाधन शब्द' का प्रयोग मिलता है

पति के जाने पर अजन रोचन स्नान, मालाएँ, उबटन और प्रसाधन म नारी की रुचि नही रहती[2]

अजन रोचना चव स्नाना माल्यानुलेपनम।
प्रसाधन च निष्क्रान्त नाभिनन्दाभि भर्तरि ॥

अनु० ८८५।३०

शरीर को रमणीय बनाने की प्रक्रिया सदा से समाज म महत्त्वपूण रही है। इस प्रक्रिया से शरीर को स्वच्छ रखना तथा उसकी सौंदय वद्धि करना मुख्य उद्देश्य रहा है। कालान्तर म स्वास्थ्य की दष्टि स भी इसको हितकर समझा जाने लगा। प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं का ही उपयोग प्रारम्भ म किया जाता था, जिनमे मन शिला सिन्दूर अजन आदि मुख्य थ। अजन से नत्रो की ज्योति बढती है, और साथ ही नेत्रो का सौंदय भी बढता है। श्रीमदभागवत म भी सुन्दर वस्त्र आभूषणो के साथ अजन का स्पष्ट उल्लेख मिलता है

---

१ सुखमय भट्टाचार्य—महाभारतकालीन समाज लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद सन १९६६।
२ डॉ वनमाला भवालकर—महाभारत म नारी अभिनव साहित्य प्रकाशन सागर स० २ २१ पृ ३४४।

आत्मान भूषण चन्द्रवस्त्राकल्पाञ्जनादिभि ॥ १०।५।२६

कृष्ण की मुरली की ध्वनि सुनकर किस प्रकार शृगार करती हुई गोपिया कृष्ण क पास चली गया इसका वणन करत हुए शृगार का स्पष्ट उल्लेख मिलता है

लिम्पन्त्य प्रमजन्त्योऽन्या अजन्त्य काश्च लोचने।
व्यत्यस्तवस्त्राभरणा काश्चित्कृष्णातिक ययु ॥१०।२६।७

(कोई च दन लगा रही थी, कोई उबटन मल रही थी और कोई नेत्रो म अजन आज रही थी—व सब अपना-अपना शृगार छोडकर चल दी, कोई उनावली के कारण शरीर म उलट सीधे वस्त्राभूषण पहन कृष्णच द्र के पास चली आयी।)

बौद्धकालीन समाज

बौद्धकालीन समाज म सभी प्रकार क प्रसाधनों का उल्लेख मिलता है। नेत्रा की सुरक्षा के लिए अजन प्राय लगाते थ —कालाजन रसाजन, स्रोनाजन, गरुक तथा कप्पल कोटि के द्रव्यों का उपयोग होता था (महावग्ग ६ ११)। 'कप्पल दीप शिखा से उत्प न काजल था। गेरुक स्वण गरिक था। स्रोताजन नदियो के स्रोतों से निकलता था। अजनों को सुग धित करन के लिए उनम चदन, तगर, भद्रमुक्तक आदि द्रव्य मिलाए जाते थे। नेता अजनभक्खिता (थेर० १६।५) आँखों म अजन इस प्रकार आकषक ढग स लगाया जाता था कि नेत्रो के किनार पर अजन की बारीक रेखा अकित हो जाती थी (चुल्ल० ३८७)।[1] अजन के अतिरिक्त 'विलेपन' का विशेष उल्लेख मिलता है। नारिया तेल, घी, मक्खन आदि से शरीर की मालिश करती थीं तत्पश्चात लोध्रचूण तथा लोध्र पुष्प आदि से सुग धित द्रव्यो से शरीर को सुवासित करती थी। तदनन्तर स्नान किया जाता था। प्रसाधन की दष्टि स हरिच दन का उत्तम माना जाता था।[2] चेहरे पर मनसिल लगाकर रजित किया जाता था। ओठो पर लालिमा लाने क लिए न दी चूण का प्रयोग किया जाता था[3]

मुख चुण्णेन्ति मनोसिलिकाय मुख लछन्ति। चुल्लवग्ग ३८६।
न दीचुण्णगाइ पाहराहि। सूयगड १।४।२।१७

कपोल पर विशेष चिह्न 'विशेषक' कहलाता था (विसेसक करोन्ति)।

पालिग्र थ ब्रह्मजाल सुत्त[4] म बीस प्रकार क प्रसाधन का उल्लेख मिलता है

---

१ डॉ० रामजी उपाध्याय—प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पृ० ८२।

२ डॉ० कोमलचद जन—बौद्ध और जन आगमों म नारी-जीवन, सन् १९६७ पृ० २०५ २ ६।

३ वही पृ० २०७।

४ डॉ भवनेश्वर प्रसा गुरुमेहता—बणरत्नाकर का सांस्कृतिक अध्ययन—पजाब वि वि० का अप्रकाशित शोध प्रबंध १९६५ पृ ६६४।

१ उत्सादन (सुगधित लेप को शरीर पर मलना), २ परिमदन (शरीर को दबाना), ३ स्नान ४ सवाहन ५ आदश ६ अजन लगाना ७ माला धारण करना ८ मुख पर चूण लगाना ९ मुखालेपन १० हस्तबध ११ शिखाबधन १२ दण्ड धारण करना १३ नालिका धारण १४ खडग धारण, १५ छत्र धारण, १६ उपानह पहनना १७ उष्णीश बाँधना, १८ मणि रत्न धारण १९ पखा या चवर २० सोने चादी के तारो की कलाबत्तू।

सुश्रुत सहिता म शरीर को स्वस्थ तथा नीरोग रखने के लिए २४ प्रकार के कार्यों का उल्लेख मिलता है जिनम से कुछ प्रसाधन ही हैं, जसे—दन्तधावन आख और मुख का प्रक्षालन अजन लगाना पान खाना, सिर पर तल की मालिश, बालो म कघी उत्सादन, स्नान अनुलपन रत्न फूल और धुले हुए वस्त्र पहनना आलेपन नखो पर पालिश या रगना आदि। शुक्रनीति मे स्पष्ट उल्लख है कि मनुष्य को प्रतिदिन स्नान करना चाहिए। अग्नि पुराण म शरीर की दुग ध को दूर करन के लिए जो आठ प्रकार बताए गए है व प्रसाधन ही हैं।[1]

कामसूत्र मे प्रसाधन

वात्स्यायन के कामसूत्र म नागरिको के शृगार का विस्तार से वणन मिलता है। प्रथम अधिकरण के चौथे अध्याय म प्रसाधन (आलक्तक) का उल्लख मिलता है। पति के पास जब जाने की इच्छा हो तो अनेक प्रकार के आभूषण विविध प्रकार के सुगधित लप और अगराग धारण कर चमकते हुए धवल वस्त्र पहन कर जाना चाहिए

'बहुभूषण विविधकुसुमानुलेपन विविधागरागसमुज्ज्वल वास इत्याभिगामको वष।'— एकचारिणी वृत्त प्रकरणम ४।६।२४

कामसूत्र की ६४ कलाओ[2] म कुछ कलाएँ प्रसाधन क रूप को ही प्रकारातर से स्पष्ट करती हैं

१ विशेषकच्छेद्यम्[3]—विशेषक बनाने की कला।
२ दशनवसनागराग—शरीर कपडों और दातो पर रग चढाना।
३ मशशेखरकापीडयोजनम—शेखरक और आपीडक को सिर पर उचित स्थान पर धारण करना।
४ नपथ्यप्रयोगा—वस्त्रालकार आदि स सजाना।

---

१ अविनेन्द्र विद्यालकार—प्राचीन भारत के प्रसाधन भारतीय ज्ञानपीठ काशी सन १९५८ पृ २६।
२ सम्मेलन पत्रिका कला अक पृ ४७६ ४८१।
३ ललित विस्तर म यही पत्रच्छेद्यम् है—वही पृ० ४७६।
प्रबधकोश में भी यही है—वही पृ ४८३।

५ कर्णपत्र-भग—हाथी-दातो या पत्थरो से कर्णफूल बनाना।

६ भूषणयोजनम—गहने पहनना।

७ केशमर्दन/सवाहन—शरीर तथा सिर म मालिश।

मेघदूत की टीका म मल्लिनाथ ने प्रसाधन के विविध प्रकारो को स्पष्ट किया है

कचधाय देहधाय परिधेय विलेपनम्।
चतुर्धा भूषण प्राहु स्त्रीणामन्यच्च देशिकम॥

कचधाय—वेणी या केश रचना।

देहधाय—शरीर का श्रृगार करना।

परिधेय—वस्त्रो को धारण करना तथा उन्हे सजाना।

विलेपन—विभिन्न प्रकार के अगराग उबटन, तेल आदि लगाना—जिससे शरीर के स्वास्थ्य तथा सौंदय की वद्धि हो।

सस्कृत साहित्य

कालिदास के साहित्य म श्रृगार-सम्बन्धी अनक प्रसाधनो का उल्लख मिलता है। व्यक्तियो के प्रतिदिन के जीवन की घटनाओ से सिद्ध होता है कि उनम सौंदय के प्रति कितनी अधिक उत्साह भावना थी। स्त्रियो के वस्त्र रग बिरगे होते थे। उनके श्रृगार की वस्तुए व्यजना और भाव म बिलकुल आधुनिक थीं। जिन अगरागों का वे व्यवहार करती थी वे पेरिस की स्त्रियो की मूर्तियो को अपने चित्रमय रागानुलेपन और सुगन्धचूर्णों से नित्य नवीन रखन म समथ हैं। व पद तल को लाक्षारग से रजित करती, ललाट पर कस्तूरी का काला तिलक लगाती और उस अजन बिन्दुओ से अलकृत करती थी। अपने मुख पर रग बिरगी बिन्दकिया भरती। कपोल छोटी छोटी पत्तियों की आकतियो से सुशोभित किए जाते। आँखो म अजन डाला जाता और आलक्तक स अधर लाल होते। फिर स्तन अधरो पर लोध्र रेणुओ को मला जाता जिससे व पीताभ लोहित वण के हो जाते।'[1]

पुष्पमाला और चन्दन का प्रयोग बहुत किया जाता था। कानो म कर्णिकार और अशोक के पुष्प सुशोभित होते थे। लाल दुकूल और कुकुम के रग म रगी चोली का उपयोग उल्लेखनीय है।

उस काल के आभूषणो म कर्णपूर, कुण्डल, कनक कमल, अवतस आदि कानो के उल्लेखनीय आभूषण हैं। कण्ठ म अनेक प्रकार के हार (मुक्तावली, तारहार,

---

१ डॉ भगवतशरण उपाध्याय—कालिदास का भारत १९५५ (वि० स० १९९८) पृ० १६२०।

हार थेरवर हार यष्टि, हार लग्नहार, निधो त इ द्रनील मुक्तामयी) हाथों मे अगद, क्यूर वलय, अगूढ कटक कटि म मखला तथा रसना तथा परा म नूपुर उल्लेखनीय आभूषण हैं। शृगार-प्रसाधन मे केश रचना को विशेष महत्त्व दिया जाता था। ४६ प्रकार के फलो स कश सजाए जाते थ।

अभिज्ञान शाकु तलम' म सखियाँ अपन चातुय स शकु तला को मजाती हैं। 'कुमारसम्भव' म, पावती के विवाह के अवसर पर प्रसाधिका उनका शृगार करती है। इस प्रकार कालिदास के काव्य म शृगार-प्रसाधन-सम्बन्धी प्रचुर सामग्री मिलती है।

शिशुपालवध कादम्बरी हपचरित कपूरमजरी अमरुक शतक आदि ग्रथो म नारी शृगार तथा प्रसाधन सम्बन्धी विपुल सामग्री भरी पडी है। हपचरित म प्रसाधन का विलमय वणन मिलता है समुण्डमालिका, सकणपल्लवा सचन्न तिलका, समुच्छिताभिवलयावलीवाचालभि बाहुलतिकाभि सवितारम इव आलिङ्गयन्त्य कुसुमप्रसपिरुचिरकाया। (सिर पर पुष्पमाला काना म पल्लव माथे पर चन्दन तिलक लगाए चूडियो से भरी हुई भुजाओ को ऊपर उठाए, परो म पड हुए बाँके नूपुरा और पदहसक को बजाती हुई।) इस ग्रथ म ही सिन्दूर की डिबिया कर्णाभूषण कणपूर तथा धम्मिल का विशद वणन मिलता है।

जन साहित्य

जन साहित्य म भी अनक प्रकार के प्रसाधनो का उल्लेख मिलता है। दृष्टि-दोष से रक्षा के लिए कौतुक चिह्न काजल से अकित किया जाता था। प्रत्येक प्रसाधिता नारी माल्याभरण अवश्य धारण करती थी। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति टीका निशीथ सूत्र आदि जन सूत्र ग्र थो म १४ प्रकार के आभूषणा का उल्लख मिलता है। प्रसाधन सामग्री म सुरमेदानी लोध्रचूण लोध्रपुष्प होंठ रचन का चूण (नन्दिचूण्ण) सिर धोन के लिए आँवला (आमलक) माथे पर बिन्दी लगाने के लिए तिलक करणी आँखो का आँजन के लिए सलाई (अजनशलाका) चिलप (सडासग) कघा (फणिह) रिबन (सीहलिपासग) शीशा (आदसग) सुपारी (पूयफल) तथा ताम्बूल का विवरण मिलता है।[2]

भारतीय शिल्प तथा मूर्तियो मे नारी की शृगार सज्जा

भारतीय नारी सौन्दय की अभि यक्ति का एक प्रमुख माध्यम रही है और

१ डॉ गायत्री वर्मा—कालिदास के ग्र थो पर आधारित तत्कालीन सस्कृति—पृ २३० २३४।

२ डा जगदीश चन्द्र जन —जन आगम साहित्य म भारतीय समाज—चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी सन १९६५ पृ १५४।

सौंदय की अभिव्यक्ति ही कला है।

ईसा पूव दूसरी शताब्दी म 'भरहुत शिल्प' म परकोटे के समान चौडे भारी कुण्डल त्रिरत्न की आकृति के कर्णाभूषण, कठहार, मेखला, हाथ के कडे अगुलियो म पहनने के मूज, कई घेरवाले नूपुर, भुजबध, केयूर, क्षुद्र किकणिया की पक्ति मिलती हैं।

गले क आभूषणो म मोतिया का तिलडा हार, छह लड का हार, त्रिरत्नो का हारपदक चौडा जडाऊ कठा, कान के फुल्ले, महावर स भरे आम्रफल जैस पात्र मिलते हैं। १८५ ई० पू० की यक्षिणी मूर्ति के गले म कई प्रकार के हार ह और सिर पर बडा अलकृत शिरोभूषण सुशोभित है। दीदारगज म दूसरी शताब्दी ईसा पूव की यक्षी की मूर्ति के गले म माला, हाथ म चूडी कमर म करधनी बालो म मोतिया की माला है।

मथुरा कला' म दो वेदिका स्तम्भ कुषाण-काल के हैं—जिनमे स्नान क बाद बाल निचोडती हुई सुदरी और अशोक वक्ष क नीच 'प्रसाधिका की मूर्ति उत्कीण है।

यहाँ मिट्टी की सर्वांग सुन्दर एक स्त्रीमूर्ति है—जिसम मेखला, ककण सिर पर आभूषणो की भरमार हार, केशो म गुथ हुए मुक्ताजाल उल्लेखनीय हैं। सौन्दय क अनिंद्य साधन के रूप म नारी का चित्रण मथुरा कला मे महत्त्वपूण स्थान रखता है। इसम नारी क श्री रूप को ग्रहण कर, उस भारतीय वशभूषा और अलकारो स मडित कर लोक के समक्ष रखा गया है। मथुरा स प्राप्त वेदिका स्तम्भो पर विविध आभूषणो से अलकृत नारियो के झीने रेशमी वस्त्रो स झाँकता सुकुमार यौवन तथा अनुपम सौन्दय अकित किया गया है, जो कलात्मक शृगार के ज्वलत उदाहरणो मे अमर रहेगा। वेदिका स्तम्भो पर उत्कीण प्रतिमाएँ आकषक मुद्रा म, खडी सुन्दरियाँ हैं, जो मुक्ताग्रथित केशपाश कणकुण्डल, एकावली, गुच्छक हार केयूर, कटक, मेखला, नूपुर आदि आभरण धारण किए हुए हैं। मिट्टी की मूर्तिया म एक मूर्ति (स० १६२१) सुन्दर साडी भी पहने हुए है।

विभिन्न स्थानो से प्राप्त प्रतिमाओ म सौ दयमयी मुखाकृति और अगप्रत्यग सुन्दरता की पराकाष्ठा को प्राप्त है। लगता है कि शिल्पी ने अपनी उस प्रेरणा स्रोतस्विनी नारी के प्रति समर्पण की भावना को व्यक्त किया है।'

कौशाम्बी' स ५०० ईसा पश्चात की एक स्त्री की छोटी मूर्ति भी मिली है

१ डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल—भारतीय कला पृ १८४ १८७।
२ प्रो कृष्णदत्त वाजपेयी—ब्रज की कला १९६६ पृष्ठ ४६ तथा ६६।
३ दिनेशचन्द्र गुप्त—भारतीय शिल्प में नारी की भाव गरिमा सस्कृति वष १ अक १।
४ दिनेशचन्द्र गुप्त—कौशाम्बी की ये जीवन्त मूर्तिया सा० हिन्दुस्तान २६ ११ ६४।

जिसम स्त्री का सुदर केश वियास दशनीय है। १०० ई० पू० की मूर्ति म केश-वियास साडी का प्रयोग, अलक्त कणभार, आवपक कण्ठहार और मनको की मालाएँ निराली हैं।

दशपुर (मन्सौर) से छठी शती की एक स्वतन्त्र प्रतिमा प्राप्त हुई है जिसम स्थानक देवी अपन ऊपर के दो हाथो द्वारा ललाटिका आभूषण सिर क ऊपर रख रहा है। एक पूव मध्ययुगीन मूर्ति प्राप्त हुई है जो लदन म्यूजियम म सुरक्षित है। इसम वह माथे पर गोल बिन्दी (सौभाग्य चिह्न) अकित कर रही है और उसक दूसर हाथ म दपण (गोल) है।

काशी म राजघाट की खुदाई म जो खिलौने निकले हैं, उनम हाथी शर ऊँट कुत्ता आदि हैं। स्त्री मूर्ति (खिलौनों) म साडी (लाल और सफद रग की लहरियादार) काली कुच पट्टिका, भुजाओं म कयूर और कठ म हार को भी दर्शित किया गया है।[1]

कश वियास की दृष्टि से राजघाट के खिलौना को निम्नलिखित रूप म वर्गीकृत[2] किया जा सकता है

१ घूघरदार बाल इस श्रेणी म वे मस्तक हैं जिनम शुद्ध घूघर की रचना है। घूघर के लिए सस्कृत शब्द अलक' है। गुप्तकाल म अलक रचना का प्रचलन सबसे अधिक जान पडता है। घूघरदार बालों के कई अवातर भेद हैं

(क) शुद्ध घूघर इसम सीमत या माँग क दोनो ओर केवल वलीभत अलकों की समानातर पक्तियाँ सजी रहती हैं, जस एक सिर—जिसमे भ्रू-पक्ति की सीध स कुडल तक उसी तरह की लटो का दूसरी ओर उतार पाया जाता है।

(ख) छतरीदार घूघर घूघरो की पहली पक्ति ललाट क ऊपर अधवत्त की तरह घूमती हुई, सिर क प्रात भाग म चली जाती है।

(ग) चतुलेदार घूघर सीमत को एक आभूषण स सज्जित किया गया है।

(घ) पटियादार घूघर माग के दोनों ओर पहल कुछ दूर तक पटिया, फिर घूघर शुरू होकर दोना ओर फल जाते हैं।

२ कुटिल पटिया माग के दोना ओर कनपटी तक लहराता हुई शुद्ध पटिया मिलती है और वही छोर पर ऊपर को मुड जाती हैं।

३ शुद्ध पटिया माग के दोना ओर बाला की पटिया बनी रहती है फिर पीछे जूडा बनता है।

---

१ कला अर सम्मेलन पत्रिका पृष्ठ ५५६

२ डॉ वासुदेव के [illegible] कला अ[illegible]
१९५८ ई

४ छत्तेदार केशरचना भाग के दोनो आर बाल घट्ट के छत्ते की तरह
मझरीदार-से जान पडत हैं।

५ लटदार या लच्छेदार नाम से स्पष्ट है।

६ ओढनीदार सिर का ढक म रहते हैं।

७ मौलि इसम बालो का जूडा बनाकर माला से बाँध लिया जाता है। मौलि के भीतर भी फूलों की माला गूथी जाती है। मह धम्मिल' कहा जा सकता है।

च दल रमणियों की प्रतिमाओ स आच्छादित खजुराहो[1] की प्रस्तर शिलाओ पर दृष्टि डालत ही एसा आभास होता है कि सौंदयमयी भगिमाएँ एव शृगार मयी मुद्राए ही प्राचीन भारतीय नारी की निधि हैं।

उस समय की नारियो की रुचियाँ और शृगार प्रसाधन भी रोचक हैं। व तरह-तरह के आभूपणा पुष्पा एव पुष्पमालाओं स शृगार करती थी। उस समय की नारिया की नाक मे कोई भी आभूपण नही पाया गया है। विभिन्न प्रकार स अपन जूडा को सँवारना ललाट पर तिलक बनाना (वामन मदिर), नेत्रो म अजन लगाना (देवी जगदम्बा का मदिर), होठो पर लाली लगाना और परो म महावर महदी रचाना तत्कालीन नारियो को विशप प्रिय था—खजुराहो की मूर्तिया इसका प्रमाण हैं।

कश निचाडती हुई नारी भी खजुराहो के कारीगर कलाकारो की आँखो से ओझल नहा हो पाइ है (जवारी मदिर)। कई प्रतिमाओ म सुदर जूडे बने हुए हैं। इन सब प्रतिमाआ स यह सिद्ध होता है कि १२वी शताब्दी तक सौन्दय अलकरण, रूप विन्यास, शृगार प्रसाधन और कश विन्यास की कलाओ म स्त्रियाँ निपुण हो चुकी थी। कडरिया महादव मन्दिर की प्रतिमा के माथ पर टिकुली भी दशनीय है। यहा की कुछ विशिष्ट प्रतिमाएँ इस प्रकार हैं

१ सलाई स सुरमा लगाती हुई नारी (पाश्वनाथ मन्दिर)।
२ अधर राग लगाती हुई (इलादेव तथा जगदम्ब मदिर)।
३ परा म आलता लगाती हुई (पाश्वनाथ मन्दिर)।
४ दपण देखती हुई नारी (कडरिया महादेव मदिर)।
५ प्रसाधन-पात्र लिए हुए नारी (जगदम्बे मन्दिर)।
६ वणी बधनो तथा केश कलाआ म मग्न नारी की अनक मूर्तिया।

यहा की अनेक प्रतिमाआ म—प्रसाधनो के अतिरिक्त—सिर स पर तक आभूपण पहन हुए नारियाँ हैं।

---

१ गरीब न ढीनागर—नारी सौदय का प्रतीक खजराहो सा हिदुस्तान ७ ३ १९६५।

१ मज्जन, २ चीर (क्पड), ३ हार, ४ तिलक ५ अजन (काजल, सुरमा) ३ कुण्डल, ७ नासामौक्तिक (नाक की लौंग) ८ केशपाश रचना, ६ कचुक, १० नूपुर ११ सुगध, १२ कक्ण, १३ चरणराग १४ मखला, १५ ताम्बूल १६ कर दपण (आरसी)।

यहाँ उल्लेखनीय है कि रूप गोस्वामी न उज्ज्वलनीलमणि के राधाप्रकरण मे जिन शृगार प्रसाधनो का उल्लेख किया है[1] व वल्लभदव द्वारा उदधत शृगारो स कुछ भिन्न हैं

स्नाता नासाग्रजाग्रन्मणिरसितपटा सूत्रिणी बद्धवणि ।
सोत्तसा चर्चितागी कुसुमितचिकुरा स्रग्विणी पद्महस्ता।
ताम्बूलस्योरु बिदुस्तबकितचिबुका कज्जलाक्षी सुचित्रा।
राधालवोज्ज्वलांघ्रि स्फुरति तिलकिनी षोडशाकल्पिनीयम ।।

—उज्ज्वलनीलमणि, राधाप्रकरण श्लोक ६।

उपयुक्त श्लोक म वर्णित १६ शृगार निम्नलिखित हैं—१ स्नान, २ नासा मणि (सभवत यही नथ का उदगम हो) ३ असित पट (सफेद वस्त्र), ४ सूत्रिणी (करधनी), ५ वणी बन्धन ६ कणवितस, ७ अगा को चर्चित करना, ८ बालो म पुष्पमाला लगाना, ९ हाथो म कमल लेना, १० माला धारण करना ११ पत्रा-वली रचना १२ पान खाना, १३ चिबुक म बि दु अकित करना, १४ नेत्रों में काजल लगाना १५ आलक्तक १६ तिलक लगाना।

रूपगोस्वामी का काल १५३३ ई० है। इससे प्रकट होता है कि वल्लभदेव के बाद रूपगोस्वामी तक आत-आते कितना अन्तर हो गया। इस ग्रन्थ की टीका में जीवगोस्वामी ने सूत्र उत्तस उरुबिन्दु तथा चित्र' पर टिप्पणी लिखी है जो क्रमश इस प्रकार है— सूत्र नीवीबद्धडोरी प्रतिसरो वा। 'उत्तस कर्णावतस । उरुबिन्दु कस्तूरीरसनवक ।' चित्र मकरीपत्रमङ्गादि। अय द्वादशाभरणाश्रिता (१२ प्रकार के आभूषण पहने हुए)

दिव्यश्चूडामणीन्द्र पुरटविरचिता कुण्डलद्वन्द्वकाञ्चो
निष्काश्चक्रीशलाकायुगवलयघटान कण्ठभूषामिकाश्च

---

१ रूपगोस्वामी—उज्ज्वलनीलमणि स महा दुर्गाप्रसाद निणयसागर (बम्बई) सन १९३२ पृ ७७।

चतुभजदास ने भी सोलह शृगार का वणन किया

सज्या कीनो सोला सिणगारा।
मजन चीर रच्या उर हारा। कर ककण नेवर झणकारा।
तिलक भाल नना दिए अजन। माला मक्ताफल मनरजन।
तन चदन उर कनुकि तरक। कटि पर छद्र घटिका पलक।
मुख तबोल बीरा मुख डारो। मान किर पकज निरवारी।

मधमालती—ना प्र सभा स २ २१ पृ० ४३।

हारास्तारानुकारा भुजकटकतुलकोटयो रत्नक्लप्ता
स्तुङ्गा पादाङ्गुलीयच्छविरिति रविभिभूषणर्भाति राधा॥१०॥

यहाँ यह भी उल्लखनीय है कि इस ग्रथ म पहली बार—बारह आभरणा की सख्या भी पथक गिनायी गयी जिसक आधार पर ही सूफी कविया ने सोलह शृगार तथा बारह आभरण की परम्परा का विकास किया।[1]

'ढाला मारू रा दूहा तथा विद्यापति रचित पदो म भी सोलह शृगारो का उल्लेख मिलता है, पर उनका विवरण नही दिया गया है

लए अभरन कर षोडश सजनि गे, पहिर तिमिर रग चीर।
—विद्यापति पदावली

सुदर सोल सिंगार साजि, गई सरोवर पाल।
—ढोला मारू रा दूहा छद ३६४।

सालह शृगार तथा बारह आभरणो का विस्तार स प्रयाग तथा विवरण सूफी कवियो न दिया है। जायसी के पूव भी कई कविया न इसका वणन किया है। मुल्ला दाऊद न 'च दायन' परपरागत शृगार वणन की भाति, प्रथम शृगार 'स्नान को सवत्र महत्त्व दिया है। तत्पश्चात वस्त्र धारण करना और माँग भरना अनिवाय है

कूकू मरद चाद अहवाए। सेंदुरी चीर काढि पहराए॥
माँग चोर सिर सेंदुर (पुरी)। जानहु चाँद फेर औतरी॥[2]

मोतिया म माँग पूरन का प्रचलन मध्यकाल म था और इसी प्रथा के अनुसार युद्ध जीतकर आने पर नायक मोतियो से अपनी नायिका की माँग भरन की प्रतिज्ञा करता है

मोतिहु माँग भरावउँ॥[3]

सिन्दूर के साथ काजल का भी उल्लेख चदायन म मिलता है

काजर सेंदुर दोऊ करी।

उस काल म सुहाग चिह्न क रूप म प्रचलित रह हैं—माँग म सिन्दूर, आख म काजल तथा मुख म पान

मुख तँबोलु, चखि काजर पूरहि। अग माग सिरि चीरि सेंदूरहि॥[5]

१४वी शताब्दी के इस काव्य म नारी प्रसाधन तथा आभूषणो का विवरण

---

१ अम बारह सोरह धनि साज
जायसी ३०।१

२ डा० परमेश्वरी लाल गुप्त—चदायन छन्द ५२ पृ १६ सन् १९६४।

३ १२२ पृ० म १४८।

४ ४५०, पृ० स ३३४।

५ ४९ पृ० ३८।

प्राप्त होता है पर १६ श्रृंगार की चर्चा नहीं है जबकि इसके बाद १५०३ म रचित कुतुबन की मगावती म इसकी स्पष्ट चर्चा है। मगावती म कई स्थलों पर सोलह शृ गार के लिए नौ सत', सालह , सपूरन' आदि श दा का प्रयोग किया गया है

सेत चार कीसन चारी। खीन चार और चार जो भारो ।।[1]

सोलह शृगार के रूप म कुतुबन ने शरीर के अवयवों का वर्गीकरण चार श्वत, चार कष्ण चार पथुल और चार क्षीण के रूप में किया है

यहां श्वत अग हैं—माग चख (नेत्र) चौक (दांत) और नख। चार कष्ण (काले) अग—कुच दशन (दात) केश और चख (नेत्र) का उल्लेख हुआ है। यहां *उल्लेखनीय है कि दांत और नेत्रों को दोनों वर्गों मे गिनाया गया है।* चार क्षीण अग—नाक अधर कटि और पेट हैं। तथा पथुल अग—गाल कलाई, भौंह और कुच का उल्लख है।

मगावती म 'सोलह का अधिक मान्यता दी गयी है

कहौं सिंगार सहज क सोरह'

मगावती म सोलह शृगार का उल्लख है जिसम—स्नान, वस्त्र धारण, केश सज्जा माँग भरना आखो म काजल हाथा म मेहदी परा म महावर और मुह म पान का विशेष वणन मिलता है।

मगावती के बाद जायसी न पद्मावत म सोलह शृगार तथा बारह आभरणा का स्पष्ट उल्लेख और वणन किया है। कुछ दूर तक मगावती की परम्परा का निर्वाह कर जायसी ने भी चार चार के चार भाग कर दिए हैं

पुनि सोरह सिंगार जस चारिहुँ जोग कुलीन।
दीरघ चारि, चारि लघु, चारि सुभर चहुँ खीन ।।[2]

चार दीघ—केश अगुली नयन ग्रीवा
चार लघु—दशन कुच ललाट, नाभि
चार भरे हुए—कपोल, नितम्ब जांघ, कलाई
चार क्षीण—नाक, कटि पेट अधर।

सोलह शृगार की परम्परा के अनुसार, जायसी न भी सवप्रथम स्नान का वणन तत्पश्चात चदन चीर और माग सँवारन का वणन किया है

प्रथमहि मजन होइ सरीरू। पुनि पहिर तन चदन चीरू ॥
साजि माग पुनि सेंदुर सारा। पुनि लिलाट रचि तिलक सँवारा ॥
पुनि अजन दुहुँ नन करेई। पुनि कानह कुडल पहिरेई ॥
पुनि नासिक भल फूल अमोला। पुनि राता मुख खाइ तँबोला ॥

१ डा परमेश्वरी लाल गुप्त—मिरगावती पृ ७५।
२ जायसी—पद्मावत—दोहा २९६।

गियँ अभरन पहिर जहँ ताई। और पहिर कर कगन कलाई॥
कटि छुद्रावलि अभरन पूरा। औ पायल पायँह भल चूरा॥
बारह अभरन एइ बखाने। ते पहिर बरहौ असथाने॥[1]

जायसी की इन चौपाइयो म कुण्डल, नकफूल, गिय अभरन (हार), कगन, छुद्रावलि या करधनी पायल, चूडा या कडा—सात ही आभूषण हैं, इसम ही शृगार प्रसाधनो—चदन चीर, सिन्दूर तिलक अजन और ताम्बूल की गणना करके बारह पूरा कर दिया है। इसम से नासिका म फूल या बेसर पहनने की प्रथा मध्यकाल म मुसलमानो के आगमन के साथ प्रारभ हुई है। जायसी न सोलह शृगार तथा बारह आभरण म गड्ड मड्ड कर दिया है क्योकि इन्होंने शरीर की षोडश कलाओ के साथ शृगारों का एकीकरण कर दिया है।

कुतुबन तथा जायसी की परम्परा का निर्वाह आग के सूफी कवि उसमान न चित्रावली म तथा शेख नबी ने 'ज्ञानदीप' म किया है।

सन्तो न भी यत्र-तत्र सोलह शृगार की चर्चा की है जसे कबीर ने कई स्थलो पर नव सत' का स्पष्ट प्रयोग किया है यद्यपि कही भी इन शृगारों का विवरण नही दिया है जस

नवसत साजे कामनी, तन मन रही सजोई।
—कबीर ग्रथावली, प० स० १३९

कबीर ग्रथावली के अनुसार पायल और बिछुआ के प्रचलन क साथ आख म काजल, मजन और माँग म सिन्दूर का प्रयोग किया जाता था

का काजल स्यूदूर क दीय
सोलह सिगार कहा भयौ कीय
अजन मजन कर ठगौरी
का पचि मर निगोडी बौरी
जो प पतिव्रता ह्व नारी
कसे ही रहौ सो पियहि पियारी॥ पदावली स० १३९

यहा कबीर ने स्पष्ट घोषित किया है कि पतिव्रता स्त्री के लिए सोलह शृगार करना अनिवाय नही है—वह चाहे जसी रहे प्रिय की प्यारी होती है फिर भी नारी की शृगार-भावना और प्रसाधन प्रियता को रोकना या समाप्त करना आज तक सभव नही हो सका है—शायद आगे भी यह सभव नहीं।

गुरु नानक की रचनाओ मे स्त्रियो के कंठ म हार हाथो म कगन, अगुली मे अगूठी ललाट पर 'माग टीका' का वणन किया गया है। दातो म मिस्सी और आखों म सुरम का वणन किया गया है।

---

१ जायसी—पद्मावत दोहा २९६।

सूफी स तो की इस परम्परा का और अधिक विस्तार स निर्वाह सगुण भक्त न किया है। सूर तथा तुलसी न सोलह श्रृगार की परपरा का निर्वाह अनक स्थानो पर किया है

पट दस सहित सिंगार करति ह, अग अग निरखि सवारति।

—सूरसागर (पद स० २११५)

चली लाई सीतहि सखो, सादर तजि सुमगल भामिनी।
नवसत साजे सु दरी, सब मत्त कुवर भागिनी॥

—रामचरितमानस

भक्त कवि सूर ने सोलह श्रृगार तथा आभूषणों का बडे विस्तार म वणन किया है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि मुगल काल तक आते आते, नारी क श्रृगार म सोलह श्रृगार की परम्परा स्थिर हो चुकी थी। मुगलो के प्रभाव स अनेक नए आभूषण नारी श्रृगार म स्थान पा चुके थे। यह अपने म खोज का पृथक विषय है कि उस काल म कितने प्राचीन परम्परागत श्रृगार तथा आभूषण चलत रहे और कितने बाह्य प्रभाव स आ जुडे। सोलह श्रृगार म— हाथ म मेहन्दी रचाना स्पष्ट बाहरी प्रभाव है, यह बात दूसरी है कि मेहदी का प्रचार किसी दूसरे प्रकार से भारत म चला आ रहा था। मुगल काल मे नाक म नथ पहनना सौभाग्य का प्रतीक समझा जाने लगा जबकि इसका प्राचीन भारतीय साहित्य म न तो कही उल्लख मिलता है और न किसी मूर्ति म इसका स्थान है।

सोलह श्रृगार की परम्परा इतनी दढ हो चुकी थी कि अबुल फजल न आइन-अकबरी[1] म नारी के सोलह श्रृगारो की सूची दी है। यह सूची इस प्रकार है

१ स्नान २ तल लगाना ३ केश-बधन ४ ललाट पर आभूषण धारण करना ५ च दन का लेप करना ६ वस्त्र धारण करना ७ ललाट पर जाति चिह्न (सौभाग्य-सूचक) ८ आँखो म अजन ९ कानो म कुण्डल पहनना, १० नाक मे नथ या मोती पहनना ११ कठ म आभूषण १२ गले म पुष्पो या मोतियो की

---

१ आईने अकबरी—भाग २ पृ १८३ से १८६ तक। एच एस जरट के अग्रजी अनुवा सन १९४८ प ३४१ से ३४३ तक।

Bathing 2 Anointing with oil 3 Braiding the hair 4 De king the crown of her head with Jewels 5 Anointing with sandal wood 6 The wearing of dresses 7 Sectional mark of Caste 8 Tinting with lamp black like collyrium 9 Wearing ear rings 10 Adorning with nose rings of pearls and gold 11 Wearing ornaments round the neck 1.. Decking with garlands of flowers or pearls 13 Staing the hands 14 Wearing a belt hung with small bells 15 Decorating the feet with fold ornaments 16 Eating Pan (finally blandishments and artfulness).

माला १३ कमर म क्षुद्र घटिका (घुघरू) धारण करना १४ हाथो का अलकृत करना (मेहदी-महावर) १५ पैरो मे आभूपण धारण करना, १६ पान खाना (सु दर स्वभाव)।

'सु दर स्वभाव'[1] को सोलह शृगार म परिगणित किया जाए अथवा नही, यह विचारणीय है। डा० अशरफ न गले मे पुष्पो की माला को कठ के आभूपण के साथ गिना है और १६वा सुन्दर स्वभाव (grace of manners) माना है। जरट ने भी १६ शृगारो के अ त म ब्रकेट म सुघडता (artfulness) का स्थान दिया है। वस्तुत देखा जाए तो नारी की सुघडता का उसके सौदय पर व्यापक प्रभाव पडता है। समस्त सौ दय प्रसाधनों से सज्जित, मडित और अलकृत नारी भी सुघडता के अभाव म आकर्पित नही कर पाती। यही कारण है आग चलकर केशव न 'रसिकप्रिया' म 'बोलन, हसन मदु चातुरी, चितौनि चारु'[2] कहकर प्रकारा तर से प्रसाधनो को नवीन दिशा की ओर मोडा है, यद्यपि टीकाकारो ने इनको प्रसाधनो म परिगणित नही किया। रीतिकाल म जहाँ वाह्य प्रसाधनो का इतना अधिक महत्त्व बढा, वृ दकवि[3] न शृगार शिक्षा मे मधुर बोलन' कहकर इसकी ओर सकेत किया है और 'कला विलास'[4] के अ तगत षोडश शृगार कला म सोलहवा शृगार 'चतुराई से बतने की कला' स्वीकार किया है।

आइन-अकबरी म (मूल प० १७६ १८१) सोलह शृगारों के बाद, तत्कालीन प्रचलित ३६ प्रमुख आभूपणो की सूची भी दी है जिसकी चर्चा आगे आभूपणो क अ तगत की जाएगी।

षोडश शृगार की परम्परा का विवेचन करते हुए डा० बच्चन सिंह[5] न निम्नलिखित निष्कप निकाले हैं

१ षोडश शृगार की धारणा मध्य युग की उपज है।

२ इसम किन सोलह शृगारो का परिगणित किया जाए यह कभी निश्चित नही हो सका।

३ समय समय पर षोडश शृगार के अ तगत नये शृगारिक तत्त्वो का भी समावेश होता रहा मेहदी इसी प्रकार का एक नया तत्त्व है।

---

१ External way of Beauty P anning working in your own rhythm Strickability Pitch of your voice conversation Good manners Enthusiasm Eleanor Macdonald—Live by Beauty (1960 London page 199 200

२ केशव—रसिकप्रिया (प ४३ केशव ग्रथावली भाग १ पृ १४)

३ वृ द—शृगार शिक्षा (पृ० ११)

४ कलाविलास—अम्बालाल (पृ० ११८)

५ डा० बच्चन सिंह—रीतिकालीन कवियो की प्रेम व्यजना (स० २ १५ प० ११)

डा० बच्चन सिंह के निष्कर्ष वस्तुत उचित हैं, पर शृगार की परम्परा मध्य युग से काफी पहले चली आ रही थी—और षोडश शृगार भी निश्चित रूप से ११-१२वी शताब्दी तक लोक म रूढि बन चुके थ। यह बात सत्य है कि सख्या म समानता होते हुए भी १६ शृगारो के विवरण भिन्न भिन्न रह। मध्यकाल तक आते आते ही इसम स्थिरता आ सकी। भक्तिकाल और रीतिकाल की सधि रेखा पर स्थित कवि केशव न सोलह शृगार का बडा स्पष्ट वणन प्रस्तुत किया है

प्रथम सकल सुचि मजन अमल बास,
जावक, सुदेस केस-पास कौ सुधारिबो।
अगराज, भूषन विविध, मुख बास राग,
कज्जल-ललित लोल लोचन निहारिबो।
बोलनि, हसनि मदु चातुरी चितौनि चारु
पल-पल प्रति पतिव्रत प्रतिपारिबो।
'केसौदास सबिलास करहुँ कुँवरि राधे,
इहि विधि सोरह सिंगारनि सिंगारिबो।'[1]

इसकी टीका करते हुए सरदार कवि न केशव के सोलह शृगार म उबटन स्नान अमल पट जावक वणी गूथना माँग म सिंदूर भरना ललाट म खौर लगाना, कपोलो म तिल बनाना अगो म केसर मलना मेहदी पुष्पाभूषण स्वर्णा भूषण मुखवास (लवगादि भक्षण), दत मजन, ताम्बूल और कज्जल की गणना की है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि लगभग यही कवित्त कविप्रिया म भी है। केशव के इस कवित्त की टीका करते हुए लक्ष्मीनिधि[2] चतुर्वेदी ने १६ शृगारो का परिगणन इस प्रकार किया है

पहला—सब प्रकार की शुचि क्रियाए (दतौन उबटनादि)
दूसरा—मज्जन (स्नान)
तीसरा—अमल बास (निमल वस्त्रो का धारण करना)
चौथा—केशपाश सुधारना (चोटी गूथना)
पाँचवें से १०वें तक—अगराग[3]
ग्यारहवाँ—फूलो के गहने पहनना

---

१ केशव—रसिकप्रिया (छन्द ४३ ग्रथावली भाग १ पृ १४)
२ कविप्रिया—लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी (१९५२ पृ ४)
३ अगराग म—माँग में सिन्दूर भरना मस्तक पर खौर देना (टीका लगाना) गालो पर तिलक बनाना अग में केशर लगाना हाथों में मेहदी लगाना—केवल पाँच का ही उल्लेख किया गया है स्पष्टत जावक (महावर) छूट गया है।

तरहवा—मुखबास (पान, इलायची आदि)
चौदहवा—मुखराग (मिस्सी लगाना)
पन्द्रहवाँ—ओठों को रगना
सोलहवाँ—सुन्दर काजल लगाकर चचल नत्रों से देखना।

इन सोलह शृगारो के अलावा अपने बोल हँसी और सुन्दर चाल से प्रतिक्षण पतिव्रत का पालन करना चाहिए।

सुप्रसिद्ध साहित्यकार लाला भगवान दीन ने टीका करते हुए इसका ही भाष्य इस प्रकार किया है १ सकल शुचि (शौच, दत धावन, उबटनादि), २ मज्जन ३ अमलवास, ४ जावक (परम महावर), ५ केशपाश (बाल सँवारना) ६ से १० अगराग[1], ११ तथा १२ पुष्प तथा सुवर्ण के आभूषण, १३ मुखबास (मुखराग) १४ दातों को मिस्सी से तथा १५ होठों को ताबूल से रगना और १६ नेत्रों में कज्जल (अजन लगाना) स्वीकार किया है।

रीतिकाल के अन्य कवियों ने भी इसका विस्तार से वर्णन किया है। यहाँ सर्वथा नवीन दृष्टिकोण से किया गया वृन्द का विवरण दिया जा रहा है

छप्पय

प्रथम सकल शुचि (१) समझि,
बहुरि करिय तन मजन (२)॥
बसन (४) महाउर (४) चरन,
चिकुर रचना (५) मन रजन
अगराग (६) भूषन (७) अनेक,
मुखवास (८) राग (६) पुनि॥
अजन नैन (१०) चितौनि (११)
मधुर बोलन (१२) सुहसन धुनि (१३)
चातुरि (१४) चलन (१५) पतिव्रतपन (१६)
वृन्द नियम कवि यह धरत
जद्यपि अपार सिंगार तऊ
तिय सिंगार सोरह करत॥[2]

---

१ लाला भगवान दीन ने इसके अन्तर्गत सिन्दूर और मेहदी के अतिरिक्त चिबुक पर तिल उर स्थल पर केशर मलना माना है। अन्त में नोट दिया है—चितवनि चलनि हसनि हेरनि इत्यादि सिंगार नहीं हैं ये हाव भाव हैं जो सिंगार को चोखा कर देते हैं।
(टीका प्रिय प्रकाश स० २०२१ पृ० ५६।

२ वृन्द शृगार शिक्षा (पृ० ११)।

डा० वच्चन सिंह के निष्कष वस्तुत उचित हैं पर शृगार की परम्परा मध्य युग स काफी पहले चली आ रही थी—और षोडश शृगार भी निश्चित रूप से ११-१२वीं शताब्दी तक लोक म रूढि वन चुके थे। यह बात सत्य है कि सख्या म समानता होत हुए भी १६ शृगारो के विवरण भिन्न भिन्न रह। मध्यकाल तक आत आत ही इसम स्थिरता आ सकी। भक्तिकाल और रीतिकाल की सधि रेखा पर स्थित कवि केशव न सोलह शृगार का बडा स्पष्ट वणन प्रस्तुत किया है

प्रथम सकल सुचि मजन अमल बास,
जावक, सुदेस केस-पास कौ सुधारिबो।
अगराज, भूषन विविध, मुख बास-राग,
कज्जल ललित लोल लोचन निहारिबो।
बोलनि, हसनि मदु चातुरो चितौनि चारु
पल-पल प्रति पतिव्रत प्रतिपारिबो।
'केसौदास' सबिलास करहुँ क्वरि राधे,
इहि विधि सोरह सिंगारनि सिंगारिबो।[1]

इसकी टीका करते हुए सरदार कवि ने केशव के सोलह शृगार म उबटन स्नान *अमल पट जावक वणी गूथना माँग म सिंदूर भरना ललाट म खौर* लगाना, कपोला म तिल बनाना अगा म केसर मलना मेहन्दी पुष्पाभूषण स्वर्णाभूषण मुखवास (लवगादि भक्षण) दत मजन ताम्बूल और कज्जल की गणना की है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि लगभग यही कवित्त कविप्रिया म भी है। केशव के इस कवित्त की टीका करते हुए लक्ष्मीनिधि[2] चतुर्वेदी ने १६ शृगारों का परिगणन इस प्रकार किया है

पहला—सब प्रकार की शुचि क्रियाए (दतौन उबटनादि)
दूसरा—मज्जन (स्नान)
तीसरा—अमल बास (निमल वस्त्रो का धारण करना)
चौथा—केशपाश सुधारना (चोटी गूथना)
पाँचवें से १०वें तक—अगराग[3]
ग्यारहवाँ—फूलो के गहन पहनना

---

१ केशव—रसिकप्रिया (छद ४३ ग्रथावली भाग १ पृ० १४)
२ कविप्रिया—लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी (१६५२ पृ० ४)
३ अगराग म—माँग म सिदूर भरना मस्तक पर खौर देना (टीका लगाना) गालो पर तिलक बनाना अग में केशर लगाना हाथो म मेहदी लगाना—केवल पाँच का ही उल्लेख किया गया है स्पष्टत जावक (महावर) छूट गया है।

तेरहवाँ—मुखबास (पान, इलायची आदि)
चौन्हवा—मुखराग (मिस्सी लगाना)
पन्द्रहवाँ—ओठों को रगना
सोलहवाँ—सुन्दर काजल लगाकर चचल नेत्रा से देखना।

इन सोलह शृगारो के अलावा अपने बोल हँसी और सुन्दर चाल से प्रतिक्षण पतिव्रत का पालन करना चाहिए।

सुप्रसिद्ध साहित्यकार लाला भगवान दीन ने टीका करते हुए इसका ही भाष्य इस प्रकार किया है १ सकल शुचि (शौच, दत धावन उबटनादि) २ मज्जन ३ अमलबास, ४ जावक (पर म महावर) ५ कशपाश (बाल सँवारना) ६ स १० अगराग[1] ११ तथा १२ पुष्प तथा सुवण के आभूषण, १३ मुखबास (मुखराग) १४ दातों का मिस्सी से तथा १५ होठो को ताबूल से रगना और १६ नया म कज्जल (अजन लगाना) स्वीकार किया है।

रीतिकाल के अन्य कवियो ने भी इसका विस्तार से वणन किया है। यहा सवथा नवीन दष्टिकोण से किया गया वृन्द का विवरण दिया जा रहा है

छप्पय

प्रथम सकल शुचि (१) समझि
बहुरि करिय तन मजन (२)॥
बसन (४) महाउर (४) चरन,
चिकुर रचना (५) मन रजन
अगराग (६) भूषन (७) अनेक,
मुखबास (८) राग (६) पुनि॥
अजन नन (१०) चितौनि (११)
मधुर बोलन (१२) सुहसन पुनि (१३)
चातुरि (१४) चलन (१५) पतिव्रतपन (१६),
वृन्द नियम कवि यह धरत
जद्यपि अपार सिगार तऊ
तिय सिगार सोरह करत॥[2]

---

१ लाला भगवान दीन ने इसके अन्तर्गत सिन्दूर और मेहन्दी के अतिरिक्त चिबुक पर तिल उर स्थल पर कशर मलना माना है। अन्त में नोट दिया है—बोलनि चलनि, हसनि हरनि इत्यादि सिगार नहीं हैं ये हाव भाव हैं जो सिगार को चोखा कर देते हैं।
(टीका प्रिय प्रकाश स २०२१ पृ० ५६।

२ वृन्द शृगार शिक्षा (पृ० ११)।

संत और सूफी काव्य के मर्मज्ञ विद्वान् श्री परशुराम चतुर्वेदी[1] ने 'मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियों' में सोलह शृंगार की गणना इस प्रकार की है

१ शौच, २ उबटन, ३ स्नान, ४ केशबन्धन, ५ अंगराग ६ अंजन, ७ जावक (महावर) ८ दन्तरंजन, ९ ताम्बूल, १० वसन, ११ भूषण, १२ सुगंध, १३ पुष्पहार, १४ कुंकुम १५ तिलक १६ चिबुक बिन्दु।

१ परशुराम चतुर्वेदी—मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियाँ (सन १९६१)

तृतीय अध्याय

नारी-शृगार की प्रारभिक परपरा

प्राकृत-अपभ्र श साहित्य

गाया सप्तशती

हाल क सुप्रसिद्ध ग्रथ 'गाहा सत्तसई' म अनेक स्थाना पर प्रकारा तर से नारी-सौदय के साथ-साथ नारी के विभिन्न शृगार प्रसाधना का विवरण भी प्राप्त होता है।

उस युग म प्रकति ने जो फूल पत्ता की अमय निधि उ हें प्रदान की थी उसे वे प्रसाधन क लिए प्रयाग म लात थे और इन पदार्थों से ही प्रसाधन काय भली भाँति सप न हा जाता था। नायिकाएँ अपने काना म प्राय कमल के कणपूर[1] धारण कर लेती थी। काना म बदरमघाटी (जुडवा बेर)[2] भी धारण करती थी। केशो का प्रसाधन कलात्मक ढग से किया जाता था और उ हें मोर के पिच्छ-सदश आकार दकर बाध दिया जाता था।[3] केशो म सुग ध एव पुष्प लगाने की भी प्रथा थी।[4] *शरीर की काति को बढाने के लिए हल्दी के उबटन*[5] *स स्नान किया* जाता था। साबुन का काम जामुन के पत्ता के कपाय स लिया जाता था।[6]

---

१ गाया सप्तशती—डॉ परमान द (सन १९६८ प्रकाशन प्रतिष्ठान मेरठ)
   कण्णरच्य कुवनअं कणरचित—कुवलय (४।२३)।

२ कण्ण काऊण बौरसघाडि—कर्ण कृत्वा बदरसघाटीम (५।१६)।

३ सिहि पिच्छुलुलिअक्से—शिखिपु छलुकशे (१।५२)

४ ओल गलन्तकुसुम ण्हाणसुअ ध चिउरभार—आ गलत्कुसुम स्नानसुगध चिकुरभारम्।
   (गिरते हुए पुष्पोंवाला—स्नान क पश्चात लगाई सुग ध से युक्त तथा आर्द्र केशकलाप)
   (३।६६)।

५ हलिद्दापि जराइ गोलाणइतडाइ (१।५८)।
   (गोदावरी क तट हल्दी के उबटन से पीले पड गए)।
   ह्णणहलिद्दाभरिअन्तराई—स्नानहरिद्राभृतान्तराणि (१।८०)।
   ण्हाणहलिद्दाकुडअ—स्नानहरिद्राकटक (२।४६)।

६ जम्बूकसाएण—जम्बूकषायेण (२।८६)।
   (ढीढे और जामुन के मिश्रण के कारण कसैले उच्छिष्ट उबटन से स्नान किया)।

हाथों में कंकण[1] तथा जालीदार वलय[2], गले में कण्ठी[3] और परों में नूपुर[4] पहने जाते थे। कमर में सोने का डोरा (शृंखला) पहनने की भी प्रथा थी।[5]

चरणों में लाक्षारस लगाया जाता था।[6]

कुसुम्भी वस्त्र[7] विशेष प्रिय था। चोली (कञ्चुलिका) का प्रचलन था जिसके बंध आगे लगते थे और दोनों पार्श्वों के सिरों पर दो अंगुल चौड़ी गांठ लगायी जाती थी जिसे कपाटक कहते थे।

अपभ्रंश साहित्य

अपभ्रंश साहित्य में केश रचना घुंघराले केश (अलक), कबरी बंध वेणी तथा जूड़े बनाने की प्रथा का उल्लेख मिलता है। स्वयंभू ने पीठ पर फैली हुई वेणी की उपमा, चंदन पर लिपटी हुई नागिनी से दी है।[8] हेमचन्द्र ने कबरी केश' तथा अलक' का वर्णन करते हुए उदाहरण दिया है कि मुख और कबरी बंध ऐसे शोभा धारण कर रहे हैं मानो शशि और राहु मल्लयुद्ध कर रहे हों, मानो अंधकार के बच्चे मिलकर खेल रहे हैं।[9] भ्रमरकुल के समान काले काले उसके अलक ऐसे लग रहे हैं मानो अंधकार के बच्चे हैं।

---

१ वासुइक्कडकणम्मि—वासुक्किङ्कणे (१।६६)।
२ जालवलअस्स—जालवलयस्य (१।८)।
३ कण्ठिआ—कण्ठिका (१।७५)।
४ णउर—नूपुर (२।८८)।
५ कणअडोरो—कनकडोरो (३।११)।
मेखलिका—मेहलिआ (५।६३) का प्रयोग भी मिलता है।
६ पाअराएण—पादरागण (२।२७)।
७ णवरङ्गअं—नवरंगकया (४।२८)।
नौरंगी अथवा नया रंगा हुआ वस्त्र।
णवरङ्गअ—नवरङ्गक (५।६१)।
नौरंगी दुपट्टा।
इस प्रकार नवरंगी वस्त्र का विशेष प्रचलन सिद्ध होता है।
८ घोलइ पुट्ठिहिं वेणि महाइणि। चन्दण लयहिं लग्गइ ण णायणि।
(डोल पीठिहिं वेणि महाइनि। चन्न लतहिं नल जनु नागिनि।)
हिंदी काव्यधारा (राहुल) पृ० ४६।
९ मख कबरि-बंध तहे धरहिं।
न मल जुज्झु ससि राहु करहिं।
तहे सहहिं कुरल भमरउल तुलिअ।
न तिमिर डिम्भ खल्लन्ति मिलिअ।
अपभ्रंश व्याकरण (हेमचन्द्र) सूत्र ३८२।१।

उपल ध प्रमाणो के अनुसार, उस काल म जूडा बनाया जाता था और माग निकालकर उसम सिन्दूर भरा जाता था साथ ही मोतियो से भी माग सजाने की प्रथा थी।[1] जूडे फूलो के भार से बोझिल रहते थे।[2]

उस काल म अनेक प्रकार के पुष्पो से अलकरण की प्रथा थी, मस्तक पर तिलक लगाया जाता था।[3] स्वयम्भू[4] ने रावण के सनिको की पत्नी से विदाई के सदभ म भी विभिन्न प्रसाधनो का उल्लेख किया है

मस्तक पर तिलक—नवरग कुकुम तिलक किय, रतन तिलक तसु भाले।[5]

नत्रो मे कज्जल—नर तिय कज्जल रेख नयने।

मुख म तावूल—मुखकमल तबूलो।

मुख पर अलका तिलका—के वि अलय तिलय दविहि करइ।[6]

चरण म कुकुम—के वि लिप्पइ कुकुमेण चरणु।[7]

आभूषणों म—काना म कुडल कनल, करवीर का फूल उल्लेखनीय हैं।[8]

अन्य आभूषणो मे—हाथो मे ककण मणि वलय तथा चूड पहने जाते थे।[9]

---

१ खपु भराविउ जाइ कुसुमि कसनूरो सारी। मीमतइ सिंदूर रेह मोतीसरि सारी।
(खोप भरावेउ जाति कुसुम कस्तूरी मारी। सीमत सिंदूर रेख मातीसर सारी।)
राजशेखर सूरि—हिंदी काव्यधारा (राहुल) पृ० ४८० ४८१।
जोयवि गगाहि मत्तालि माल। जोयइ कवहि धम्मेल्ल णील।
पुष्पदन्त (आदिपुराण) पृ ४६।

२ सिरु धम्मिल्ल कुसुम पभारि।
धनपाल वही पृष्ठ २७६।

३ स्वयभू—रामायण (७१।६)।

४ वही (५६।३ ५)।

५ राजशेखर सूरि प्राचीन काव्य हिन्दी काव्यधारा (राहुल) पृष्ठ ४८३।

६ पुष्पदत—आदिपुराण वही पृष्ठ २ १।

७ पृष्ठ २ २०१।

८ किवण कडल-हरण एय। ण ण रवि-ससि-विष्फुरिय-तेय।
(की कण कडलाभरण एह। जनु-जन रवि शशि विस्फुरित तेज)
स्वयभ वही पृष्ठ ५४ ५५।
कणहि कडलाइ आवद्धे—धनपाल वही पृष्ठ २७६।
कण कडल युग गण्डस्थने। नयनेहि दीर्घ कृष्ण चल धवने—वही पष्ठ २७७।
जगमग-जगमग जगमग कार्नहि वर कुडल। झलमल झलमल झलमले आभरण मडल।
कण युगल जमु लहलहत जनु मन्न हिंडोला। चचल चपल तरग चग जमु नयन कचोला॥
जिनपद्म सूरि, वही पृ ४२५।
सवणाइ विभूषणे नयन-कमल द्वे मित्र एवय।
हरिभद्र सूरि वही पृष्ठ ३८६।

९ करही ककड मणि वलय चुड खडकाव बाला—राजशेखर सूरि वही पष्ठ ४८३।
चूडउ चुन्नीहोइसइ। (मुग्धा के कपोलो पर श्वासों की आग स सतप्त चून्निया चूण

हाथ की अगुलियो म मुदरी[1] तथा आरसी[2] पहनी जाती थी। हाथ म ही रत्नजटित कटक और केयूर पहनने की प्रथा थी।[3]

कठ म मोतियो के हार और परों म नूपुर, साथ ही कमर म काची सुशोभित रहती थी।[4]

जिनपद्म सूरि ने तो शृगार सजाव का चित्रात्मक वणन प्रस्तुत किया है

अइ सिंगारु करेइ वेस मोटइ मन ऊलटि।
रइपरंगि बहुरंगि चगि चदणरस ऊगटि।
चपय केतकि जाइ कुसुम सिरि गुप भरेइ।
अति आछउ सुकुमाल चीरु पहिरणिपहिरेइ।
लहलह लहलह लहलहए उरि मोतियहारो।
रणरण रणरण रणरणए पगि नेउर सारो।
गमग-गमग गमगए कानिहि वर कुडल।
झलमल-झलमल झलमलए आभरणह मडल।[5]

राउलवेल

११वीं शताब्दी के इस शिलाकित का य म छह प्रदेशो की नायिकाओ का नखशिख वणन है अतएव अनक प्रकार के शृगार प्रसाधन तथा आभूषणो का उल्लेख होना स्वाभाविक है।

प्रसाधन म—आँखा म काजल[6] ललाट पर तिलक और अधरा पर ताबूल[7] की लालिमा उल्लेखनीय है। कश प्रसाधन का विस्तत विवरण मिलता है, जिससे प्रमाणित होता है कि उस काल म जूडा बनाने[8] का प्रचलन था। वलिअ (केश-

त्रिचूण हो जाएगी।) सोमप्रभ सूरि।
डा० नामवरसिंह—हिंदी पर अपभ्रश का प्रभाव सकलित दोहा स ५५।
चूडल्लउ—हेमचन्द्र—व्याकरण सूत्र ३९५।२।
मणि चडन्तो। धनपाल वही प २७६।

१ पइ अगुलि मद्दरि हीरहि सदरि।
हरिब्रह्म वही पष्ठ ४६५।
२ पुष्पदन्त आदिपुराण (२६)।
३ धनपाल वही पष्ठ २७७।
४ स्वयभू—हिन्दी काव्यधारा (राहुल) पष्ठ ५२ ५३।
तथा सोमप्रभ।
५ जिनपद्म सूरि वही पष्ठ ४२४ ४२५।
६ अखिहि कज्जल। डाहरा दिसा। ४६। डरहउ आखिहि काजरु दीनउ। ३१।
७ निडालि टीके तु रूरे किए। ६४।
८ अहरु तबालें मण मण रातउ। ३।
९ दुभगी खोम्प करिउ। ८७। खोंप वलीए एहु रे सम्व। ५६। खापहि ऊपरि। ८६।

बन्धन) की मनोहरता का वर्णन बहुना[1] माँग म सिन्दूर भरने का उल्लेख भी मिलता है।[2]

वस्त्रों म रक्त वर्ण का कंचुक[3] (चोली), दोरंगी चोली,[4] घाघरा[5], चादर ओढनी[6] तथा पाटन की साड़ी[7] उल्लेखनीय हैं।

आभूषणो म—सिर पर अम्बअल (२०।१३) वनवार (२२।१४) वतुल टीका (२३) ताडरपात (२२।१६) कनवास (३८।६), कान म घडिवन (८।६, ३४।२७) करडिय (११।२०) काचहो (११।२२) गलेम जालकठी (३।४), काठी (७।१५ १२।६) जलारी (१६।२?) मोत्तासर (२३।?१), गठिआ तागउ (२३।२५) हारु (२५) एकावली (३७।२), परो तथा हाथो म सोने के चूडे (२६। २५) परो म पादहमिका (६।३) तथा नउर (१३) उल्लेखनीय हैं।

सदेशरासक

अब्दुल रहमान कत 'सदेश रासक'[8] म स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि सौभाग्यवती स्त्रिया विविध प्रकार के शृगार करती थी और चित्र विचित्र वस्त्र धारण करती थी।[9]

शरीर पर अभ्यग (अभगियइ २।१०१) हरिचन्दन का लेप (हरियदणु ३। १३५) कुकुम चदन से चर्चित करना (कुकुमि चन्दणि तणु चच्चनिक्व ३।१६८) तथा कपूर क लप (घुसिणु विलित्तउ ३।१७८ १८६) आदि का उल्लेख मिलता है।

केशो म फूलो का शृगार किया जाता था। जूडा बाँधने की प्रथा थी, पर उसमे से निकलती बिखरी हुई अलकें मुख पर छाई रहती थी।[1] भाल पर तिलक[11]

---

१ वनिअहि बाधलि अहि जे घागिम्व। १४।
२ जिमउ मिदूरिलउ रजायमु। ६०।
३ रानऊ कचुआ अनि सठ चागउ। ८। काचू रातउ। ३४।
४ गोरइ अगि वेरगा कप्यू। ५१।
५ पहिरणु घाघरेहि जो केरा। ८२।
६ विउडण मेंदूर सोलन्हो कीजइ। ८।
७ पाटणी हरइ करउ। १३१।
८ सदेश रासक (अब्दुल रहमान)—स० हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर बबई।
९ करिवि सिंगारु विविह आहरणिहि
   वित्तविचित्तहिं तण पगरणिहिं। (३।१६७)
१० घम्मिल पमक्कमह (२।२५) धम्मिलहु सवरणु न घणु कुसुमिहि रयउ (२।१०६)।
   सज्जिउ कुसुमभारु सीसोवरि (३।१७८)।
११ अनह भाल तुरक्कि तिलक आलक्खियउ (२।४८)।
   निल भालयलि तुरक्कि तिलक्किव (३।१८)।

मुख मे पान,[१] नेत्रो म कज्जल,[२] अगरु से धूप देने[३] की प्रथा प्रमुख प्रसाधनो म शामिल थी।

आभूषणो मे—कानो मे रत्न ताटक (रयण ताडकिहि) कठ म मुक्ताओ की माला (णवसरहाररलय हार कसवि तथा हाररलय कुसुम माल) कमर म करधनी (रसणावलि किंकिणरव) पर म नूपुर (णेवर) विशेष उल्लेखनीय हैं।

हाथो म प्रधान रूप से चूडियाँ (वलियहय) पहनने का प्रचलन था।

वसत विलास

वसत विलास[४] म अभिनव प्रकार से शृगार की हुई नारियों[५] का विवरण है अतएव तत्कालीन प्रसाधन सबधी पर्याप्त सामग्री मिल जाती है।

सरोवर म स्नान करने का वणन है[६]—स्नान के बाद चोलियो के मडन के लिए रमणिया घिसा हुआ चदन कटोरियो म भरती है सिर पर जूडा बनाती हैं और केतकी के पुष्पो स उस भरकर श्वेत वण का शृगार करती हैं।[७] यह जूडा रहट की तरह घरावदार होता है।[८] माग को अधिकतर सिदूर से भरा जाता है।[९] सिदूर के साथ मोतियो स भी माग भरने की प्रथा थी। पान खाने की प्रथा भी प्रचलित थी।

माँग म राखडी[१०] का उल्लेख मिलता है। कानो म कुडल[११] कठ म मोतिया की माला[१२] विभिन्न प्रकार के हार[१३] तथा हाथा म ककण बाँहो म केयूर

१ झसुरारुणिहि (२।५)। झसुर=नागवली।
२ कज्जलि नयणिहि धरउ (२।१ ६)।
मिहिनिय दिति सलाग्य अक्खिहि (३।१७६)।
३ धूइज्ज तह अगरु (३।१८६)।
४ वसत विलास—स डॉ मानाप्रसाद गुप्त १९६६ क० मु हिन्दी विद्यापीठ आगरा।
५ अभिनव परि शिणगारीअनारीअ (११)।
६ नाहीय सरोवर नीर (१२)।
७ चदन भरइ कचोलीअ चोलीअ मडन रेसि (११)।
८ पूप भरी सिरि केतुकि सेत कीआ सिणगार (५१)।
९ वेणिया के लिए भुजग विशेषण तो प्राचीन परम्परा से प्रसिद्ध है पर जूडे के लिए रेट (५७) नवीन उपमान है।
१० सीथइ सींदूरिहिं पूरिअ-पूरिअ मोतीअ चग (५६)।
११ राख (रक्षा)+डी=सौभाग्य चिह्न के रूप म बालो म लगाकर मस्तक पर लटकाया जाने वाला स्त्रियों का एक आभरण जो कई प्रकार का बनता है।
१२ वही (५३।५५ तथा ६)।
१३ वहा ५५।
१४ वही ६५ ६३ ६७।

(केउर), पैरों में नूपुर (नेउर) की प्रथा तो पहले से ही चलती आ रही थी।
वस्त्रों में कंचुक (चोली), चीवर तथा ओढणी का प्रचलन था।

बीसलदेव रासो

नरपतिनाल्ह कृत बीसलदेव रासो[1] में वस्त्राभूपण-संबंधी सूचना मिलती है। बीसलदेव रासो के आधार पर ऐसा ज्ञात होता है कि वस्त्र आभूषण आदि पहनने की रस्म का नाम ही 'पहिरावनी' था। वस्त्रों में मुख्य रूप से 'चीर'[2] का प्रचलन था।

इस वीरकाव्य की नायिका राजमती के रूप सौंदर्य वर्णन में शृंगार प्रसाधनों का उल्लेख मिलता है—राजमती पीढे पर बैठी हुई है। उसकी कटि में रेशम की अच्छी चूनडी है। कानों में 'कुंडल' जगमगा रहे हैं। सिर पर 'राखडी' है और ललाट पर तिलक (टीका)।[3]

चूनडी के विवरण और भी कई स्थानों पर मिलते हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि यह उस समय महिलाओं का प्रधान वस्त्र था। शरीर का कुंकुम चंदनादि से चर्चित किया जाता था।[4]

यही स्थिति उस समय वर्णित है जब वह (राजमती) सोलह शृंगार करके अपने पति को विदा करती है—उसकी कटि में रेशम की चूनडी, कानों में कुंडल, पैरों में रुनझुन करते हुए स्वर्ण-पायल और मस्तक पर हीरा जटित शीशफूल (राखडी) सुशोभित है। पूर्वोल्लिखित वर्णन से इसमें 'नूपुर' का उल्लेख बढ़ गया है।[5] एक स्थान पर कनक-कंचोली और उस पर झूलते हुए हार का उल्लेख भी मिलता है।

---

१ बीसलदेव रासो सं तारकनाथ अग्रवाल सन १९६२ हिं प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी।

२ पहिरणइ चीर (३०)।

३ पाटि बइठीछइ राजकुमारि।
कडिहि पटोली सिरि चूनडी सार।
कानिहि कुंडल झिगमिगइ।
सोवन राखडी तिलक निलाड। (३२)।

४ कूकम (चोवा) चन्दन चरचिनू गात (८५)।

५ कडिहि पटोली चूनडी सार।
काने हो कुंडल झिगमिगइ।
पागा पायल पयोय सुचंग।
हीरा जडवा मायइ राखडी। (८४)।

आभूषणो म सु दरी शेखर (सिर पर) निका, कुण्डल, खुटी, बीर (कान म), एकावली, सूता, सिक्ली हार, दवनीयारी, पताका (कण्ठ म), टाड, कराओ, चुलि, वलया, पचसूत्र, मकण (भुजा और हाथ म), मखला, रशना (कमर म), नूपुर, किकिणी सिगलीशाख (प र म) उल्लेखनीय हैं।

प्रसाधन-कला को ज्योतिरीश्वर न ६४ कलाआ म गिनाया है। ज्योतिरीश्वर ने ताम्बूल की पिटारी को मानरायिका और दासियो को 'परिचारिका' कहा है। 'केश समाजन का तो बडा विस्तत वणन किया है। केश के समाजन हेतु सुगधित वस्तुआ के धूम का उल्लख भी मिलता है।

पत्र रचना को वणरत्नाकर म पत्रभगि कहा गया है। वक्षा के रगीन पत्तो को ही काटकर कपोलो स्तना और मस्तकादि पर चिपका दते थ। ये तिलकपत्र भी तिलक के समान मुखमण्डल की शोभा बढाते है। 'चतु मम' (चदन, अगरु, कस्तूरी, केसर का मिश्रण) का टीका लगाया जाता था। यह पदाथ तिलक क अतिरिक्त विलपन हेतु हाथा का मडित करने क लिए तथा शयनकक्ष को सुगधित करन क लिए भी प्रयोग म लाया जाता था।

नेत्रो म 'अजन के अनक वणन मिलते हैं। होठा पर ओष्ठराग लगाया जाता था (प्रबाल, पल्लव और पके बिबाफल से दी गयी उपमाआ मे होठो के रगा का बोध होता है)। दाँता के लिए मिस्सी, शरीर म अगराग तथा मालिश उद्वतन, सम्हाहून (सवाहन) का उल्लेख मिलता है।

कुतुब शतक

१४ १५वी शती के प्रसिद्ध ग्र थ कुतुब शतक' मे केशो के शृगार का चित्रात्मक वणन किया गया है। बँध हुए और खुले हुए दोना प्रकार के केशो का चित्रमय वणन किया गया है

केसा के कसि बधियाँ, के छुट्टियाँ 'रुलति ।
जाण सपनि अप्पण चर छिदुआ भयति ।।[1]

वेणी म मोती भी बँधा होता था जिसका वणन इस प्रकार किया गया है कि उसकी वणी स बँधा हुआ और विलम्बित एसा एक मोती उसकी नासिका पर लोट रहा है माना सीपिया के समक्ष हो और कीर (हस) उसे चुनने का यत्न कर रहा हो

वइणी बधि विलविया, मुत्ती हेक रुलति ।
जाने सीपि सुमुप्पीया कठइ कीर चुणति ।।[2]

---

१ कुतुब शतक—स डा माताप्रसाद गप्त छद ११।
२ वही छद स १३।

मस्तक पर सिंदूर की बि दी का उल्लेख तो नहीं मिलता, पर सिर पर सिंदूर का विवरण मिलता है जिससे माँग भरने की प्रथा व्यजित होती है

वरणी सिरि सिंदूर।[1]

कपूर और कस्तूरी का लप शरीर म किया जाता था।[2] अरगजा से सुवासित केशो म भीनी सुगधि आती थी।[3]

आभूपणा म, हाथो म चूडी तथा कडो का विवरण मिलता है

वरणी कर 'करि' लाल।[4]

वधू क करा म लाल कडिया (चूडिया) हैं जो ऐसी लग रही हैं मानो किसी के हृदय स हिलगकर काम अपन शल्य का निकाल रहा हो।

पृथ्वीराज रासो

महाकवि च द वरदाई ने पथ्वीराज रासो[5] के अनक स्थलो पर नारी शृगार के अ तगत—शृगार प्रसाधन तथा आभूपणो का उल्लख किया है, जिनम से कुछ स्थल महत्त्वपूण हैं

इच्छिनी का शृगार तथा नखशिख (समय १४)।
पुडीरी दाहिनी का रूप (समय १६)।
पृथा का शृगार (समय २२)।
इ द्रावती का रूप (समय ३२)।
हसावती का शृगार (समय ३६)।
सयोगिता का नखशिख (समय ६६)।

उपयुक्त शृगार वणना म अनक स्थलों पर कवि ने सोलह शृगार तथा बारह आभरणा का उल्लेख मात्र किया है, परिगणन नही

जसे, करि पोडस शृगार तथा

घट बीअ बरिस नव सत्त अगि (२,५१२)।

पद्मावती (समय ४३) म स्पष्ट उल्लख हुआ है कि मलिन वस्त्र उतारकर स्नान कर सोलह शृगार किए। वह आभूषण मगवाकर अग प्रत्यग को इस प्रकार सजान लगी कि मानो कामदेव की सेना को सजा रही हो।[6]

---

१ कुतुब शतक—स डा माता प्रसाद गुप्त छ द ७८।
२ वही छ द ६०।
३ वही छ द १ २।
४ वही छ द ७६।
५ पृथ्वीराज रासउ—स माताप्रसाद गुप्त साहित्य सदन चिरगाँव झासी।
६ तन चीकट चीर डारयो उतारि मज्जन मयक नवसत सिंगार।
भूषन मगाय नष सिष अनूप सजि सेज मनो मन्मथ्य भूप॥
(पद्मावती समय)

हसावती के वस्त्राभूषण मे तत्कालीन वेश भूषा का विस्तत विवरण प्राप्त होता है।

मग जरित मुद्रिका पानि । रवि परी होइ सुजानि ॥
नो ग्रहिण पचिय तथ्य । उप्पन्न चद सु कथ्य ॥१६०॥

तथा,

पट दून भूपन सज्जि । सजि सजत ससव सज्जिअ ॥
मय मुक्ति जेहर जोड । गति हस तज हित होइ ॥१६२॥

इस खड म 'पट दून' अर्थात बारह का उल्लेख तो है, पर बारह आभूषण कौन कौन स हैं इसका वणन नही है केवल मुद्रिका पहुची जेहर ही स्पष्ट हैं। इन आभूपणों के अतिरिक्त ताटक[1] तिलक[2] तिलक नग[3] कनक शीशफूल[4] नासिका म मोती,[5] गले म मोतिया की माला,[6] हिलते हुए हार,[7] भुजाओ म टोडर,[8] हाथो मे कंकण[9] तथा पगो म नूपुर[10] मजीर[11] आदि उल्लेखनीय हैं। आभरणो म सुदर और उभरे हुए नग जड हैं (जरे जिव नग्ग सुरग सुघाट ४, २५,२६) इस प्रकार सुदरियाँ नाना प्रकार के सुदर आभरणो से शृगार किया करती थी।[12]

इस महाकाव्य मे अनेक प्रकार के सुन्दर तथा झीन वस्त्रा का उल्लेख है जिनके ताने बाने दिखायी नही देते थे। तार, कतान तथा पाम वस्त्रो का प्रचार अधिक था। 'तनसुख' वस्त्र विशेप रूप स प्रचलित था। कचुकी और पटोर (लहगा क समान वस्त्र) म स्त्रियाँ दिखाई देती थी। 'कुसुमी सारी' का विशेप प्रचलन था।[13] चीर (ओढना) म रक्तिका (घुघची) शोभित थी।

मध्यकाल म भारतीय नारियो के वेश प्रसाधन का विशेप विवरण पृथ्वीराज

---

१ श्रवन्न ताट रिप्पया (३।१७।११) तेज ताटक ते स्रवन डोल (४।२ ।११)।
२ मजरिय तिलक पजरिअ पाम (२।५।११)।
३ तिलक नग निरग्ग अग जोत्ति जग्गी (४।२०।५)।
४ कनक्क सा बिपन्चय सुराग सीस दिट्ठुया (३।१७।२५)
५ सुभाय मुत्ति सोभये (४।२८।२७)।
६ सुग्रीव कठ मुत्तयो (३।१७।१६) स्फुरति मुत्ति सा जले (४।१४।१८)।
७ स्फुरति हार सोहये (४।१४।१५)।
८ भुजा स जासु तुडडर (३।१७।११)।
९ जराउ जर्रात कनक्क कसति (४।२५।१६) तथा करिककरि कक्कन अकइ जोव (४ २५)।
१० सबद् बद् नुप्पुरे (३।१७।३७) तथा नव नूपुर नारि धन (६।६१)।
११ रैहि आरोहि मजीर सद् (४।२ ।३१)।
१२ सुभ सिगार सदरिय अग नाभरनन (१ ।१८।२)।
१३ कुसुम सा चीर सा वीर सोभा (४।२३।१७) तथा (५।३८।१०)

रासो म मिलता है। नारियो के श्याम केश (कयद केस) सुशोभित हैं। उडते हुए अलक ही भ्रमर जान पडत हैं।[1] सुन्दरियो की ढीली गूथकर लटकाई हुई अलक-लत्ता ऐसी लगती है मानो क्चन क स्तभ पर सचमुच भुजग चढा हुआ हो।[2] वणी ऐसी लगती है, मानो जन्मेजय पुत नागयज्ञ कर रहे हैं जिसस शक्ति होकर जो नाग शेष थे वे इनकी पीठ पर लग गये हैं।[3] अलक मुक्त लहरा रहे हैं।[4] तीन लटा वाली वणी भी बनान का प्रचलन था।[5] मांगो को मोतिया स भरा जाता था।[6] वेला सेवती और जूही के फूल गूथे जाते थे। घुघराल केशो को पुष्पा स सजाया जाता था, और उसम मोती की लडी को पोहा जाता था।[7]

माथ पर मगमद का बिन्दु[8] लगाया जाता था, साथ ही कही कही ललाट पर आड[9] (तिलक) का भी प्रचलन था। मुख म ताम्बूल[10] खाया जाता था जिससे होठ लाल हो जाते थ। नत्रा म अजन लगाने की प्रथा थी।[11] दांता को नीला-सा रगा जाता था। रूपवती क हाथ म दपण का उल्लेख मिलता है जिसको एक प्रसाधन भी स्वीकार किया गया है पर 'आरसी' का उल्लेख नहा मिलता।

ढोला मारू रा दूहा

ढोला[12] एक शृगारपरक काव्य है जिसम शृगार प्रसाधना का विवरण मिलता है। नारी की वशभूषा का वणन भी है। स्त्रियाँ कटि के नीचे घाघरा[14]

---

१ अलि अलक वही २ ५ १६।
२ वही ४ १५ १ २।
३ पुनर जन्मेजय ते जानि जग्गे। रहे सक्ति ते सेस ते पूठि लग्ग (४ २० १ २)।
४ अलक्क अरोह प्रवाहे ति मोहे (४ २० १८)।
५ त्रिसरावलि बनि वेनिय (१० ११ ४७)।
६ मांग मोत्त्नि नय मत्ति धानी (४ २ ३)।
७ कुट्टिल कस सुन्देश पौहप रचियत पिक्क सन्न (पद्मावती समय १२)।
८ वही ४ २५ ७।
९ तस्य मध्य मगमद विंदु जा। जस इदु नद ति खिंधु जा (१ ११।४१ ४२)।
१० लनाट आड लग्गय (४ १४ ३३)।
११ अधरन अदिट्ठ अच्छन्न तमोर (२ ५ १)।
तथा
अधर आरत्तअ रत्त साई (४ २० १५)।
१२ नैमु अजन प्रिय (१ ११ ३२)
१३ डा कृष्ण कुमार शर्मा—ढोला मारू रा दूहा।
१४ घम्म घम्मतइ घाघरे उनटयौ जाण गयन्न। पृष्ठ ७०।

पहनती थी शरीर पर दखनी चीर[1] ओन्ती थी और वक्ष पर काँचली[2] धारण करती थी। पाट वस्त्रो[3] का भी प्रचलन था, झीने[4] (पारदर्शी) वस्त्रा का उल्लेख भी मिलता है। दुलहिन क लिए लाल रग के कपडा का प्रचलन था। साधारणत चीर[5] का भी उपयोग मिलता है।

शृगार प्रसाधनो म सोलह शृगार का उल्लेख भी मिलता है (सु दर सोल सिंगार सजि गई सरोवर पास)। केश वि यास का विस्तत वणन है। खुले केशों की उपमा फ वारे से दी गयी है। मारवणी बाल खोलकर प्रिय स मिलती है।[6] मारवणी की वणी नागिन की तरह काली सुचिक्कन तथा उर्मिल है। सौ दय वद्धि क लिए वह अजन लगाती है।[7] अधरा पर अलक्तक की लाली लगायी जाती थी।[8] मारवणी के भाल पर मगमद का तिलक[9] भी लगा है। तबोल रस का पान किया जाता था।

आभूषणो का प्रचलन अत्यधिक था अतएव अनेक प्रकार क आभूषणों का उल्लेख मिलता है। स्वणजटित आभूषण होत थ जिन्ह 'आभरन भी कहते थे। प्रत्यक अग आभूषणो म सज्जित करने का रिवाज था

दत जिसा दाडम कुली 'सीसफूल' सिणगार।
काने 'कुडल' झलहलइ, कठ 'टकावल' हार।।

नाक म नकफूली गले म नवलखा हार व मोतिया का हार भुजा म बहरखा तथा चूडा कटि म मेखला, पाँवो मे झनकार करती हुई झाझर उल्लखनीय है। भौंहो पर सोहली[11] सुशोभित है।

---

१ गयगमणी गूजर घरा आणा दखणी चीर (२३२)।
२ कद र मिलउली सज्जना कस कचकी छोडि (१६)।
३ पट्टोला पहिरेसि (०३३)।
४ झीणा कप्पड पहिरणइ जाणि झखइ सोव्रन्त (७) चीक वरन्ने कप्पडे (१३६)।
५ हाथली छाला पडयी चीर निचोइ निचो" (१५६)।
६ रायजा"ी घर अगणइ छुट छछाल (७३)।
७ निकसी वेणी सापणी स्वात न बरसउ आइ।। पृष्ठ १२५।
८ कर रत्ता मोती नमल नयणे काजल रेह।। पृष्ठ ७३।
९ अहर अनत्ता रगि।। पष्ठ ८७।
१ मृगनयणी मृगवली मखी मगमद तिलक निलार ।। पष्ठ ७३।
११ भृमन ऊपरि सोहला परिहिउ जाणि क चग।। पष्ठ ७१।

चतुर्थ अध्याय

नारी-शृंगार की परम्परा का विकास

उबटन तथा स्नान

अंग शुचि के उपरान्त, अंग प्रसाधना के अन्तर्गत स्नान[1] का प्रथम स्थान[2] है। विभिन्न देशों में और भिन्न भिन्न युगों में स्नान की विधियों एवं प्रणालियों में परिवर्तन होता रहता है। स्नान की व्यवस्था तो हर देश तथा काल में रही है। मोहन जोदड़ो[3] तथा हड़प्पा की संस्कृति तक में स्नान की व्यवस्था थी, यह तथ्य वहाँ से प्राप्त ध्वंसावशेष के आधार पर सिद्ध होता है। ऐसी भी व्यवस्था थी कि नर नारी सम्मिलित रूप से 'जन स्नान-गृहों' में स्नान करते थे। नहाने से पूर्व मालिश का भी विधान मिलता है। पुराणकाल में पुष्करिणियों का वर्णन तथा मध्ययुग में निर्मित विशाल बावड़ियाँ स्नान के महत्त्व का प्रतिपादित करती हैं। मुगलकाल की 'हमाम-व्यवस्था' से लेकर अर्वाचीन 'स्नान प्रणाली' तक इस परम्परा का ही विकास है।

त्वचा के निखार के लिए उबटन तथा स्नान आवश्यक प्रसाधन हैं। त्वचा के असंख्य छोटे छोटे छेदों को साफ करने के लिए स्नान विधि ही सर्वोत्तम है। फिर भारत गर्म देश है, वर्ष में आठ माह यहाँ गर्मी पड़ती है और रोमकूपों से पसीना निकलता है। त्वचा साफ न करने से रोम कूप बन्द हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप

---

1 वात्स्यायन के कामसूत्र में भी इसका स्पष्ट उल्लेख है
नित्यं स्नानं द्वितीयकमुत्सादनं तृतीयक फेनकः ॥ (१।१६ १७)।

२ प्रथम अंग शुचि तक विधि मज्जन दुतिय बखान। वल्लभदेव द्वारा संकलित सुभाषितों में मज्जन का प्रयोग है तो उज्ज्वलनीलमणि में स्नान का प्रयोग। केशव ने भी यही कहा है प्रथम सकल शुचि मज्जन अमल बास—रसिकप्रिया (४३) तथा कविप्रिया (१३)।

३ स्नान के लिए एक विशाल हौज था उसकी लम्बाई ३९ फुट और चौड़ाई २३ फुट थी। स्नान-गृह आयताकार था जिसके चारों ओर बरामदा था। आठ फुट गहरे हौज में उतरने के लिए सीढ़ियाँ थीं। बड़े हौज के कोने में एक और मकान था जो उष्ण स्वेद के लिए रहा होगा। इसकी खुदाई में चौकोर चौकियाँ मिली हैं जो पक्की ईंटों से ठोस बनी हुई हैं।—प्राचीन भारत के प्रसाधन पृ० ६२, ६६

रग और स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। इस प्रकार स्नान और सौन्दर्य का सीधा सम्बन्ध है। स्वास्थ्य सफ़ाई और सुन्दरता के हेतु स्नान का विधान है। आवश्यकतानुसार गर्म, गुनगुने अथवा ठंडे पानी का प्रयोग किया जा सकता है। पानी का प्रयोग कैसे करें इसका भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है। चरक सूत्र में स्वास्थ्य के लिए स्नान के लाभ इस प्रकार बताये गये हैं—स्नान से शरीर की दुर्गन्ध, शरीर में भारीपन, आलस्य, तन्द्रा, कण्डू, मल, भोजन में या काम में अनिच्छा, पसीने की दुर्गन्ध आदि नष्ट हो जाते हैं। स्नान करना पवित्र, वृष्य, आयुवर्धक, श्रम, स्वेद, मल को दूर करने वाला है, शरीर में बल वृद्धि करता है और ऊर्जा को बढ़ाता है। यही कारण है कि प्राकृतिक चिकित्सा में तो स्नान को अत्यधिक महत्त्व माना गया है।

संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों तथा काव्यों में स्नान गृहों का वर्णन मिलता है। बाण ने 'कादम्बरी' में बड़े विस्तार से स्नान-गृह का उल्लेख किया है। इस भव्य स्नानागार में सुगन्धित जल कलशों और द्रोणियों में भरा रखा रहता था। स्फटिक की बनी चौकियाँ वहाँ रखी होती थीं। किसी जल में चन्दन का रस मिला होता था और किसी में कुंकुम। स्नान विधि क्रीडामय भी होती थी।

स्नान के साथ विलेपन का सम्बन्ध भी रहा है। कभी स्नान के पूर्व 'विलेपन' और कभी स्नान के साथ 'विलेपन' की प्रथा थी। विलेपनों में चन्दन का प्रमुख स्थान था। विलेपन ही लेप है। चन्दन के लेप के पूर्व भी अन्य लेपों से शरीर को स्वच्छ एवं सुवासित किया जाता था। सर्वप्रथम नारियाँ तेल, घी, मक्खन, चर्बी आदि से अपने शरीर की मालिश करती थीं। तत्पश्चात् सुगन्धित द्रव्यों (लोध्र-चूर्ण, लोध्रपुष्प) से शरीर को सुवासित करती थीं। तदनन्तर स्नान किया जाता था।[1] स्नान के समय भी शरीर को सुगन्धित बनाने के हेतु चूर्ण एवं सुगन्धित मिट्टी का प्रयोग किया जाता था।[2] स्नान के बाद जिन चन्दनों का शरीर पर लेप किया जाता था उनमें से हरि चन्दन, रक्त चन्दन एवं काशी चन्दन उल्लेख्य हैं।

प्राकृत काल में स्नान का रूप ही 'ण्हाण' (पाइअ, पृ० ४२३) हो गया और जिस पटटे पर बैठकर स्नान किया जाता था—वह ण्हाण पीढ (पीठ) कहलाता था। स्नान के जल में विभिन्न प्रकार के पुष्प डालने की प्रथा थी मालती पुष्प

---

१ वरमेत सप्पि दामान वा कम्मकरान वा पादब्भञ्जन महावग्ग।
गाहावइ वा कम्मकरी तो वा अन्नमन्नस्स गाय तिल्लेण वा नवणीएण वा घाण वा वसाए वा अभगति (आचारांगसूत्र) लोद्ध च लोद्धकुसुमं च। (सूयगड)।

२ भिक्खुनियो चण्णेन नहायन्ति सेय्यथा गिहिनी (चल्लवग्ग)।
भिक्खुनियो वासितकाय मत्तिकाय नहायन्ति॥ वही।
ये सभी उद्धरण डॉ० कोमलचन्द जैन लिखित 'बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन' से उद्धृत हैं। इससे सिद्ध होता है बौद्ध तथा जैन-काल में स्नान को कितना अधिक महत्त्व दिया जाता था।

तो विशेष रूप से डाला जाता था, अतएव वह 'ण्हाणमल्लिया' (स्नानमल्लिका) कहलायी। मध्यकाल म नूरजहाँ के स्नान कुण्ड म ताज गुलाब डाल जात थे। ण्हाण ही आधुनिक काल म आकर 'नहान' बन गया। विशष अवसरा पर नारी जा स्नान करती है उस नहान कहा जाता है।

स्नान की प्रक्रिया का विस्तृत वणन १२वीं शताब्दी म लिखित 'मानसोल्लास' (२ २८) म सोमेश्वर न किया है। सोमेश्वर न स्नान का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए बताया है कि मुख्य स्नान जल से ही किया जाता है।

मानसोल्लास म स्नान के कई भेद गिनाए गए हैं

१ नित्य, २ नमित्तिक ३ काम्य ४ क्रियाग ५ मलकषण ६ क्रियस्नान।

शरीर म तलादि लगाकर केवल शरीर की शुद्धि के लिए जो स्नान किया जाता है उस मलापकषक अथवा 'अभग' (अभ्यग) स्नान कहते हैं

'मलापकषणाय तु स्नानमभ्यगपूवकम्॥'

इस ही मलस्नान' कहते हैं।

शुभ दिनों की दष्टि स द्वितीया दशमी, एकादशी त्रयोदशी, चतुदशी को इस प्रकार के स्नान का निदेश किया है। वारों की दष्टि से सोम बुध तथा शनि को बडा महत्त्व दिया है। जोतिरीश्वर कत वण रत्नाकर' (१२) म भी स्नान विधि का सविस्तार वणन है।

अभ्यग शरीर को लाभ दता है। इसम शरीर की खुश्की दूर हाती है तथा त्वचा कामल और मासपेशियाँ सुडौल रहती हैं। नाक कान और नाभि म भी तेल लगाना आवश्यक है। चेहरा गदन और आँखा क समीप भी तेल मलें बाँह और परा म तल की मालिश लाभप्रद होती है। सोमेश्वर ने केतकी पुनग चपक की सुगंध युक्त तेल मलन का निर्देश किया है। स्नान के पूव शरीर पर तेल तथा सिर म आवला लगाने का आदेश है। नलचम्पू कादम्बरी तथा जीवानन्दनम म इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। चरक के अनुसार श्री अग्निदेव न अभ्यग के गुण बताते हुए लिखा है—शरीर पर तेल की मालिश स मनुष्य म बल आता है त्वचा सुन्दर होती है। जिस प्रकार घडा तल या घी लगाने से मजबूत होता है और पहिये पर तल लगान स वह ठीक हाता है उसी प्रकार शरीर पर तेल लगान म शरीर की त्वचा दढ और सुन्दर बनती है। स्पशन-काय त्वचा क अधीन है स्पश ज्ञान का कारण वायु है। इसलिए वायु को शान्त करन के लिए तेल की मालिश सवश्रेष्ठ है। जो व्यक्ति नित्यप्रति शरीर पर तेल मलता है, उस चोट आदि से कष्ट नहीं होता। देखने म सुदर होता है। कालिदास ने ऋतुसहार (४।१८) म उल्लेख किया है कि स्त्रियाँ हेमन्त ऋतु म तेल मलती हैं या मलवाती हैं।

अभ्यग के साथ साथ उबटन[1] का भी निर्देश किया गया है। बौद्ध एव जन साहित्य म प्राप्त उद्धरण अयत्र दिए जा चुके हैं। कुमारसभव (७।६) म कालिदास ने लोध्र के उबटन का उल्लेख किया है। हल्दी का उबटन किया जाता था जिसका गाथा मप्तशती[2] की अनेक गाथाओं म उल्लेख मिलता है और यह प्रथा तो आज तक चली आ रही है। प्राचीन काल म सरसो, तिल, वच आदि को पीसकर दूध या पानी म भिगाया जाता था। दूसरा उबटन 'बेसन का आज भी चल रहा है। प्राचीन काल म बेसन म चन्दन केसर कस्तूरी और दूध मिलाया जाता था। गुलाब जल म बेसन तथा हल्दी मिला लेना ही विशष उपयोगी होता है। जौ के आटे म थोडी-सी केसर तथा चन्दन का चूण मिलाकर भी उबटन बनाया जा सकता है शरीर की कोमलता और स्निग्धता बनाए रखने के लिए उबटन आवश्यक है। साबुन का प्रचार तो सोलहवी शताब्दी म जमनी, फ्रान्स तथा इग्लैंड-वासियो ने किया, भारत म तो पुतगालिया द्वारा साबुन सवप्रथम लाया गया[3] जिसका प्रचलन बाद म सवत्र हुआ। बाबर के समय म भी 'सबुनी' का उल्लेख मिलता है। गुरु नानक के नपजी साहिब म सबूनी का उल्लेख है (तपलीत कपड हाथ दभू सबूनी लयय धोये)। साबुन के पूव तो उबटन ही शरीर शुद्धि का एकमात्र साधन था। इसे बनाने की अनेक विधियाँ थी। वस कामसूत्र म फेनक[4] का वणन मिलता है जो सभवत साबुन की भाति ही सफद पदाथ था।

---

१ उबटन (उद्वर्तन) से सुन्दरता स्वच्छता तथा कान्ति आती थी।

(वणरत्नाकर १२)

२ हलिद्दापिज्जराइ गोलाणइतडाइ (११७८)।
हणाणहलद्दाभरिअन्तराई (११८)।
ण्हाणहलिद्दाकडअ (३।४६)।
इसको ही आईने-अकबरी भाग प्रथम (१८७३ पृ० ७५) में गुसल कहा है जो सुगधित तेल मक्खन आटा तथा रग के मिश्रण से बनता था।

३ वाट महोदय के अनुसार, साबुन की कला भारत म प्राचीन काल से थी
The art of Soap making has been known and practiced in India from remote antiquity the improved article produced being used by washerman and dyers—P N Chopra—Some aspects of Society & Culture during the Mugal age 1963 pp 15
से उद्धत—बरार म बलडाना जिले में लेनर नामक स्थान का उल्लेख इस सन्दभ म मध्य काल में किया गया है कि यहाँ शीशा और साबन बनाने के सभी पदाथ प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। बरारी ने भी १६४४ म इसका उल्लेख किया है।

—वही पृ १६

४ फेनक के उपयोग से मानसिक उल्लास सौभाग्य और स्फूर्ति आदि गुणो का प्रादुर्भाव होता है।

मानसोल्लास के अनुसार स्नानभोग के बाद अंगमार्जन[1] कर गीले कपड़े उतारकर धौत वस्त्र धारण करने की प्रथा थी। धौत' के साथ सुधौत' का भी प्रयोग मिलता है। धौत (धुला हुआ कपड़ा) से ही 'धोती' शब्द विकसित हुआ है, जो आगे चलकर अधोवस्त्र का पर्यायवाची बन गया।

सूफी काव्यधारा में प्रथम शृंगार 'स्नान' का महत्त्व सर्वत्र माना गया है, तत्पश्चात चीर (वस्त्र) धारण करना। मुल्ला दाउद कृत 'चंदायन' में इसका स्पष्ट उल्लेख है

कूं-कूं हरद चाँद अन्हवाए।
सेंदुरो चीर काढ़ि पहराए॥[2]

यही क्रम मृगावती, पद्मावत, मधुमालती आदि ग्रन्थों में है

पुनि नहाइ के चीर पहिरावा।[3]

प्रथमहिं मंजन होइ सरीरू।
पुनि पहर तन चन्दन चीरू॥[4]
पुनि लै सखिन्ह तुरति अन्हवाए।
बसन अनूप आनि पहराए॥[5]

कृष्णकाव्य धारा में उबटन तथा स्नान का विस्तार से वर्णन मिलता है। सूरसागर में श्रीकृष्ण के शरीर में लगाने के लिए 'केसरि का उबटना'[7] और तेल का उबटन मलने का उल्लेख मिलता है।[8] परमानन्ददास ने सुगन्धित उबटन[9] का उल्लेख किया है। मुरली के प्रसंग में गोपियों के संदर्भ में तेल के उबटन का उल्लेख है। जलक्रीडा के प्रसंग में ऐसा उल्लेख है कि रासरत गोपियों के शरीर से चन्दन तथा कुंकुम के उबटन[10] इतने अधिक छूटते थे कि जल में कीच हो जाती

---

1. चल्लन्गग में शरीर पोंछने का उल्लेख है। कल्पसूत्र में रोयेंदार सुगन्धित तथा रंगीन तौलिए जैसे किसी कपड़े का उल्लेख है।
2. चन्दायन ५२।
3. मिरगावती छन्द २६१।
4. मंजन (सं. मार्जन) प्रा० मजन यही मज्जन रूप में भी मिलता है।
   डा. वासुदेवशरण अग्रवाल ने मंजन' और स्नान' में भेद किया है। उबटन द्वारा शरीर के मल आदि की सफाई मज्जन और सुगन्धित जल में स्नान।
5. पद्मावत दोहा २९६।
6. मधुमालती दोहा ६४।
7. केसरि कौ उबटनो बना रचि रचि मल छुड़ाऊं सूरसागर पद सं. ८३।
8. सूरसागर पद सं. ८०४ ३७९३ तथा ८०१।
9. अमित सुगध सुबास अंग करि उबटन गुन जाऊंगी॥ परमानन्दसागर। ६८।
10. अंग मरदन करिबे कौं लागीं उबटन तेल धरी॥ सूरसागर १६१८।

थी, इससे सिद्ध होता है कि सुगधित द्रव्यों का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता था। विवाह क समय के सुदर पद म उल्लेख है

बदन-मजन त अजन गयो ह्व दूरि।[1]

जलक्रीडा स सम्बधित अनक पद हैं

न्हात सुख करत अति बढी प्रीति॥[2]

इन पदा म पानी स भीग पट लट तथा अगराग के बह जान का सुदर वणन है

लटकि रही लट गीली।
भीजि पट लपटयो सुभग उर रही केसर चयन।
मलयज पक कुकुमा मिलिक जल जमुना इक रग॥

उबटन अथवा तल लगान के पश्चात स्नान की प्रक्रिया है। स्नान का जल सुगधित करने के लिए परमानददास ने जल म केसर[3] घोले जाने और नददास न अष्टगध मिलाए जाने की चर्चा की है। सूर ने भी मज्जन[5] शब्द का प्रयोग किया है। पृथ्वीराज न वेलि किसन रुक्मणी री' मे गुलाब जल[6] मिले जल का वणन किया है।

रामकाव्य धारा में तुलसी न मानस में मज्जन[7] शब्द का प्रयोग किया है और अनेक बार किया है पर प्रसाधन के रूप में नही।

रीतिकाल के साहित्य में तो स्नान तथा उबटना के विस्तत वणन मिलते हैं।

कवि वृद कृत शृगार शिक्षा' में शुचि के उपरात मजन शृगार का विस्तत वणन इस प्रकार मिलता है

तन-मन उज्जवल होत सुख, सुब आरस मिटि जात।
मजन द्वितीय सिंगार कौ इहि विधि करत सुहात॥

केसरि अगर घसि चदन कपूर पूर सार मग सार ल फुलल में मिलाइय।
चपक की बेली मन भावती सहेलिन के कोमल करनिकर अग उबटाइय॥
वृद' कहि सुदरी को सुदर सरीर सब सुच्छ उसनोदक गुलाब सौं न्हवाइय।
आछे आछे उज्जल अगोछान सौ औछि-औछि दपन सो तन मनरजन बनाइय॥

---

१ सूरसागर पद स १६६४।
२ सूरसागर पद स १७७५ १७७८ १७७६ तथा १७८ द्रष्टव्य है।
३ केसर सोंधी घोरि-परमा २०७ तथा पद स २५२ में दूध से स्नान का उल्लेख है।
४ अष्टगध उष्नोन्द सौं अस्नान कराये॥ नन्दास—१७८।
५ गोरक्या कियो मज्जन लाल गिरिधर बरयो॥ सूर—१७६४।
६ कुमकुम मजण करि धौत वसत धरि॥ वेलि —८१।
७ कुछ प्रयोग द्रष्टव्य है मज्जनपान पाप हर एका।
करि न जाइ सर मज्जन पान॥

इस प्रकार यह प्रथम प्रसाधन 'स्नान' शृंगार से अधिक स्वास्थ्य की दृष्टि स महत्त्वपूर्ण है।

अंगराग (विलेपन)

स्नान के पश्चात शरीर पर सुगंधित वस्तुओं से बना हुआ अंगराग' लगाया जाता था। यह ऋतु के अनुसार बदलता भी रहता था। शीतऋतु मे कस्तूरी, केसर और अगरु की अधिकता होती थी ग्रीष्म ऋतु में चन्दन और कपूर की प्रधानता रहती थी। स्त्रियाँ इसका शरीर पर लेप करती थी। लेप द्वारा शरीर पर पक्षियो के जोडे युगल मूर्ति रूप म बनाए जाते थे। शरीर की शोभा तथा पसीने की दुगध का कम करने क लिए शरीर पर सुगंधित द्रव्यो का लेप किया जाता था। इसम केसर[1] चन्दन[2] तथा कपूर क अतिरिक्त हल्दी भी मिला लेते थे।

अनुलेपन का उल्लेख भारत म प्राचीन काल से ही मिलता है। वदिक काल म भी इसका प्रचलन था। अनेक प्रकार के चन्दनो का लेप शिशिर ऋतु को छोडकर वर्ष भर होता था, चन्दन का विभिन्न ऋतुओं के अनुकूल बनाने के लिए विभिन्न वस्तुएँ उसम मिलायी जाती थी। चन्दन १६ प्रदेशो म पाया जाता है, और इसके नौ रंग तथा इसम छह प्रकार की गंध मानी जाती थी। हरिचन्दन शुक्र के रंग का होता है। इसम आम की सी गंध होती है। इसी प्रकार अन्य चन्दन होते हैं।

बौद्धकाल म भी चन्दन के लेप के अतिरिक्त नारियल तेल, घी मक्खन चर्बी आदि से शरीर की मालिश करती थी, तत्पश्चात लोध्रचूर्ण, लोध्रपुष्प आदि सुगंधित द्रव्यो से शरीर को सुवासित करती थी। स्नान के बाद शरीर पर चदन का लेप किया जाता था। प्रसाधन की दृष्टि से हरिचन्दन को उत्तम माना जाता था। चन्दन स चर्चित शरीर वरचंदणचच्चिया"[3] कहलाता था। शरीर को उत्तम धूप स धूपित किया जाता था (कालागरुपवरधूवधूवियाओ)। चहरे को मनसिल लगाकर रंजित किया जाता था।

ओठो पर लालिमा लाने के लिए नन्दीचूर्ण का प्रयोग किया जाता था

---

१ अमरकोष के अनसार चन्दन क ११ नाम हैं
कश्मीरजन्माग्निशिख वरं वाह्लीकपीतने।
रक्तसङ्कोचपिशुन धीर लोहितचन्दनम्। १२५।

२ चन्दनलेपन के ३ नाम—चर्चा तु चार्चिक्य स्थासकोऽय प्रबोधनम।

३ डॉ कोमलचन्द्र जैन—बौद्ध और जैन आगमों म नारी जीवन १९६७ ई० पृष्ठ २०५ २०७।

मुख चुण्णेति मनोसिलिकाय।
नन्दी चुण्णगाई पाहराहि ॥

जन आगमो के आधार पर लोध्रचूण, लोध्रपुष्प तगर, खस के साथ कटकर मिलाया हुआ अगरु विलेपन के काम म आते थे।[1]

महाभारत काल[2] म चन्दन का लेप प्रचलित था। तुग (सुगधित द्र य) तथा काले अगर को मिलाने की प्रथा थी। इगुद और अगर तेल स भी विलेपन हाता था। पति के जाने पर अजन माला धारण अनुलेपन आदि प्रसाधनो म विरहिणी नारियो की रुचि नही रहती थी।

कालिदास न तीन प्रकार के चन्दना का प्रयोग वर्णित किया है—हरिचन्दन रक्तच दन, सितचन्दन। अगराग को भी कस्तूरी म बसाकर सुगधित कर लेते थे। रघुवश क १२वें सग म अगराग[3] के इतने अधिक सुगधित हो जान का उल्लख है कि फूला से भौंरे भी उड उडकर उधर आन जान लगे थे। अगराग के कई प्रकार भी उल्लिखित किए गए हैं। अन्य अनुलेपा म गोरोचन हरिताल और मनसिल प्रसिद्ध थे। सुगधित द्रव्यो म काला अगरु धूप तथा कस्तूरी का विवरण मिलता है। सुगधित चूर्णों म लोध्र प्रसव रज अम्बुज रेणु केसर चूण कतक रज मुखचूण कस्तूरी का चूण, मगरोचन आदि का उल्लेख मिलता है। इतन अधिक अनुलेप किसी अन्य काल तथा साहित्य म नही मिलते है।

कादम्बरी म सगधित अगराग कुमकुम लाध्र कृष्णागुरु का उल्लख मिलता है। हषचरित मे ऐसा उल्लख है कि गोरोचन या सिन्दूर के तिलक का अभाव वधव्य का सूचक है। कपूरमजरी म होठों शरीर आदि पर विभिन्न अवलपा का उल्लेख मिलता है

बिम्बोट्ठे बहल ण बेंति मअण यो गन्धतेल्लाविला।
वेणीओ विरअन्ति लेन्ति ण तहा अङ्गम्मि कुप्पासअ ॥[5]

मानसोल्लास म विलपन पर विशेष महत्त्व दिया गया है। विलपनोपभाग शीषक से पृथक उल्लेख किया गया है

विलेपनोपभोगो य कथ्यते भोगिना प्रिय।
अच्छ विलेपन रम्यमगलसौख्यप्रदायकम ॥[6]

---

१ डॉ जगदीश चन्द्र जन—जन आगमो म भारतीय समाज १९६५ ई पृष्ठ १५४।

२ सुखमय भट्टाचाय—महाभारत-कालीन समाज १९६६ ई।

३ कालिदास—रघवश-(१२।२७)।

४ डॉ गायत्री वर्मा—कालिदास के ग्रथो पर आधारित तत्कालीन भारतीय सस्कृति पृष्ठ २४० २४१।

५ कपूरमजरी (३।१३)

६ मानसोल्लास (।५।६८)
डा० शिवशखर मिश्र—सोमेश्वर कृत मानसोल्लास एव सास्कृतिक अध्ययन।

ऋतुओं के अनुकूल विलेपन का रूप बदल लिया जाता था, जैसे वसन्त में यक्षकर्दम-कमसधि, चंदन, अगरु कपूर कस्तूरी कुंकुम, केसर, ग्रंथिपर्ण का चूर्ण मिला लिया जाता था। ग्रीष्म में भी विधान था कि,

स्वेदगंधविनाशाय साध्याप्ये लेपमाचरेत।[1]

वस्त्र एवं भूषा के अनुसार भी शरीर पर अंगराग का प्रयोग किया जाता था

वस्त्रभूषणानुसारेण शृंगारांगविलेपनम्।[2]

अरगजा का अर्थ भी अवलेप है यह अंगराग का एक रूप है। इसमें सुगंधित द्रव्य भी समाहित हो जाते हैं। कुतुबशतक में अरगजा से भीनी रमणी का उल्लेख मिलता है

अरगजई भीनी।[3]

जायसी ने भी लिखा है कि अरगजा लेपन से सुख मिलता है

कौन अरगजा मदन औं सुख पीन नहान।

पुनि भई चाद जो चौदस रूप भयो छिपमान॥

वल्लभदेव के संग्रह में सोलह शृंगार वाले उद्धरण में भी अंगराग की ओर संकेत मिलता है पर वहाँ 'सौगन्ध्य' का प्रयोग किया गया है।

अन्य सन्दर्भ ग्रंथों में भी विलेपन-सामग्री का विवरण मिलता है। उज्ज्वल नीलमणि में चर्चितांगी के प्रयोग से विलेपन व्यंजित होना है। आईने अकबरी में 'चन्दन-लेप' का विवरण मिलता है।

चन्दन के लेप का विवरण तो चन्दायन तथा पद्मावत आदि सभी मध्यकालीन ग्रन्थों में है। चन्दन से चित्र भी बनाये जाते थे जिसका विवरण पृथक् किया गया है

चन्दन अगर चतुरसम भरीं। नएँ-चार जानहुँ अवतरी।[5]

इस पंक्ति में एक साथ चन्दन अगरु चतुरसम नामक सुगंधियों का उल्लेख मिलता है।

मधुमालती में भी चतुरसम[6] का ही विवरण मिलता है।

सूरसागर में सुगंधित द्रव्यों के लेपन की विधि का पर्याप्त उल्लेख मिलता

---

१ वही (३।८।६८४)।

२ वही (३।५।१०६)।

३ कुतुबशतक १०२।
कुतुबशतक—सं० डा० माताप्रसाद गुप्त ज्ञानपीठ वाराणसी।

४ वल्लभदेव—सुभाषितावली—पीटर्सन द्वारा संपादित।

५ जायसी—पद्मावत दोहा ३३२।

६ मधुमालती सं० माताप्रसाद गुप्त पृ० ५२।

है। शृ गार सबधी अनेक पदो म चोवा, चन्दन हर प्रकार के चन्दन, अरगजा, केसर कपूर, मगमद और अगरु आदि पदार्थों का उल्लेख मिलता है

चन्दन अरगजा सूर केसरि घरि लेउँ।
गधिनि ह्वै जाऊँ निरखि, ननिनि सुख देऊँ।[1]

तथा

चन्दन अगरु कुमकुम मिश्रित।[2]

अरगजा के सबध म सूर की यह प्रसिद्ध उक्ति लोकवाणी म स्थान पा चुकी है

खर कों कहा अरगजा लेपन मर्कट भूषन-अग।[3]

उद्धव सम्वाद म अगराग के स्थान पर भस्म रमाने का उल्लेख मिलता है

चन्दन छाडि बिभूति बतावत, यह दुख कौन जरो

सूर के अन्य प्रयोग भी मिलत ह जसे

चोवा चन्दन और अरगजा, जा सुख मैं हम राखी।[5]

तथा

मगमद मलय कपूर कुमकुमा केसर मलिय साख।[6]

अरगजा और मरगजी सुगन्ध स सुवासित साडी

सौंधें अरगजा अरु मरगजी सारी अग।

जल विहार म शरीर पर लगे च दन केसर, कमल पराग कुकुम आदि के घुलने से जल रग बिरगा हो गया था

मलयज-पक कुकुमा मिलिक, जल-जमुना इक रग।[8]

तथा,

चदन अग-कुकुमा छूटत, जल मिलि तट भई कीच।[9]

---

१ सूरसागर पद स १६६३।
२ वही पद स ३३२६।
३ वही पद स० ३३२।
४ वही पद स ४१६६।
बिभूति अगराग का स्थानापन्न कसे सभव है!
५ सूरसागर पद स० ४२१६।
६ वही पद स ४५५४।
७ वही पद स २६२८।
८ ६ वही पद स १७८ तथा १७८१।
सूर के अन्य पद भी इस सन्दर्भ म द्रष्टव्य हैं
अग कुकुम—पद सं ३१६१
अग चन्दन—पद स २३७३
अग सिंगार—पद स २६४५ २६४६ तथा
अगरज—पद स ११३ ।

परमानंददास ने भी चोवा चन्दन का एक साथ प्रयोग किया है

चोवा चन्दन अग लगाये।[1]

अनेक प्रकार के सुगंधित द्रव्यों तथा पदार्थों का मिश्रण भी किया जाता था ऐसे उल्लेख भी इस काल के साहित्य म पर्याप्त मिलते हैं

मग मद तिलक कुकुमा चदन अगर कपूर बास बहु सुदवन।[2]

अन्य सभी कवियो न अगराग (विलेपन) का विस्तत वणन किया है। तुलसी न भी अरगजा का उल्लेख किया है

गली सकल अरगजा सिचाई, जह-तह चौके चारु पुराई।

केशवदास ने केवल अगराग का सोलह शृगार म उल्लख किया है, जिसके अतगत आचाय विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने विविध रगा स चिह्न बनान के अतगत माग म सिन्दूर भरना भाल पर खौर दना गाल या चिबुक पर तिल, उरस्थल पर केसर मलना तथा हाथा म मेहदी लगाना माना है। वस्तुत कशव का इससे क्या तात्पय था यह स्पष्ट नही होता। विभिन्न टीकाकारा ने विभिन्न अथ निकाले हैं।

केशवदास के ग्रन्थ 'कविप्रिया'[3] म अगवास वणन मिलता है, जिसके अन्तगत कपूर कुकुम आदि अनेक सुगन्धो का वणन है।

रीतिकालीन मे अगराग का बिहारी[4] पद्माकर भिखारीदास ने अरगजा, बिहारी ने चोवा पद्माकर न अगरु, पद्माकर तथा रसलीन ने कुकुम तथा भिखारीदास बिहारी आदि सभी कवियो ने कपूर का वणन अपने काव्य म किया है।

केश-रचना

नारी को अपन स्वाभाविक सौन्दय पर सन्तोष नही होता, प्रत्युत वह अपने सौन्दय म कृत्रिम प्रसाधना स अभिवद्धि करने का निरन्तर प्रयत्न करती रहती है। नारी के व्यक्तित्व को अधिक आकषक बनान का श्रेय बहुत कुछ अश म उसके केश विन्यास को है। केश पास सुसज्जित होना सौन्दय का प्रथम आवश्यक अग है। सुन्दरता के क्षेत्र म केशो का अपना विशेष स्थान है प्राचीन काल से ही भारतीय नारियाँ केश विन्यास को बहुत महत्त्व दती आई हैं। विशेष कश सज्जा से अपने को अलकृत करना नारी का प्रथम प्रसाधन रहा है। सष्टि के प्रारम्भ से ही, नाना

१ परमानन्द सागर पद स १५।

२ वही पद स ७३८।

३ केशव—कविप्रिया—८४।

४ म न दयो सयो मुकर छुवत छनकि गो नीर।
लाल तिहारो अरगजा उर है लग्यो अबीर॥५३५॥

प्रकार के उपायो द्वारा केश रचना की जाती रही है।

भारतीय साहित्य म नारी के केशो पर पर्याप्त कविताएँ लिखी गयी हैं। रमणी के अलका की प्रतिपल नव उन्मेषशालिनी कान्ति से प्रभावित होकर सस्कृत प्राकृत अपभ्रंश हिन्दी म पर्याप्त का य लिखा गया है। नारी के प्रलम्ब कुतला की प्रभा पर मुग्ध कलाकारो ने सौन्दय का स्वरूप स्थापित किया है। कुटिल अलकावली की छवि से आकर्षित कविया न अप्रस्तुत योजना जुटायी है। रमणी क लम्बे केशा म जो वणनातीत सौन्दय होता है व ी साकेतिक है। लम्बे होने के साथ साथ केशो का काला होना भी सौन्दय म वृद्धि करता है। कशो का *नैसर्गिक सौन्दय लम्बे, आप स घुघराले, काल पतले और कोमल बालो म है।* नारी की काली और घुघराली कश राशि का सौ दय वर्णन स्थान-स्थान पर किया गया है। सुदरी नायिकाओ क काले काले बल खाते हुए बालो की तुलना म कोई भी काली चिकनी और सुन्दर वस्तु टिक ही नही सकती—इस प्रतियोगिता म यमुना सपराज बादल आदि सभीका रग फीका पड गया।

केश प्रसाधन एव कश विन्यास पर भारतीय कलाकारो एव शिल्पियो ने विशेष ध्यान दिया है। नारी की सौन्दयप्रियता के अनुसार उसका चित्रण विभिन्न *कालो मे उसक अनुरूप एव यथावत किया है।*

प्रागतिहासिक काल म उत्तर भारत की महिलाए अपने केशो को प्राय फीता से बाँधती थी। उनका शिरोवस्त्र पखे के आकार का होता था। मोहन जो दडो हडप्पा आदि की खुदाइयो म प्राप्त मूर्तियो मे ऐसी ही आकतियाँ मिली हैं। शिरो वस्त्र म कुछ अलकार भी होते थे। अलकारो म मनको का स्थान विशेष होता था। पीठ पर लटकती हुई वेणी भी *बनायी जाती थी। कभी-कभी स्त्रियाँ अलकार* युक्त त्रिकोण वस्त्र से भी कशो को ढँक लिया करती थी। मोहन-जो-दडो की एक मूर्ति स ज्ञात होता है कि उस समय स्त्रियाँ एक विशेष प्रकार की ढीली टोपी भी पहनती थी। इन मूर्तियो को देखने स यह भी स्पष्ट होता है कि महिलाएँ जूडा बाँधती थी कभी-कभी दो वणिया भी करती थी और केशो को घुघराले बनाकर उन्हें अनेक प्रकार स सजाती थी।

वदिक युग म भी केश शृगार को विशेष महत्त्व दिया गया है। वदिक काल *की स्त्रियाँ केश क्लाप क विभिन्न प्रकार अपनाती थी। उनके लम्बे केश होते थे,* और नाना प्रकार क पुष्पो से व उन्हे सजाती थी। धूप से बाला को धूपित करने की प्रक्रिया भी प्रचलित थी।

केशा म कपूर की गन्ध कस्तूरी की सुवास और अगरु की सुगधि दी जाती थी। ग्रीष्मकाल म सुगधित तल या स्नान के समय व्यवहार किए जाने वाल कषायकल्प से यह काय होता था।

बालो को सजान या गथन की क्रिया ही कचग्राय प्रसाधन कहलाया।

आँवले से सिर धोकर जल से स्नान होता था। अगर से धूप देकर बाल सुखाए जाते थे। उसके बाद उन्हें सँवारकर पाटी की जाती थी। जूड़े में फूल खोंसा जाता था या कबरी बाँधकर वेणी में फूल लगाते थे। कुछ स्त्रियाँ दाएँ बाएँ और ऊपर तीन जूड़े या त्रिमौलिविन्यास बनाती थीं। मथुरा के कुछ चित्रों में स्त्री मस्तकों पर बँधे हुए बालों का एक जूड़ा मिलता है। इस जूड़े को ही 'धम्मिल' कहा गया है (धम्मिलः संयताः कचाः)। धम्मिल में माला गूँथ जाने का वर्णन भी मिलता है।

बल पड़े हुए केशों में नाना प्रकार के मणि मुक्ता लगाए जाते थे। केश कमर तक लम्बे और वेणी में गुँथे हुए होते थे। उनमें पुष्प और लता गुच्छ लगाए जाते थे। 'थेरीगाथा' नामक ग्रंथ में अम्बपाली ने अपने केशों का वर्णन करते हुए कहा है "काले भौंरे के रंग के समान जिनके अग्रभाग घुँघराले हैं, ऐसे किसी समय मेरे केश थे। पुष्पाभरणों से गुँथा हुआ मेरा केशपाश कभी जूही और चमेली की सी गंध वहन करता था। कंघी और चिमटियों से सजा हुआ मेरा सुविन्यस्त केशपाश कभी अच्छे रोपे हुए सघन उपवन के समान शोभा पाता था, सोने के गहनों से सुसज्जित महकती हुई चोटियों से गुँथा हुआ मेरा सिर रहता था।" इस वर्णन से एक जनपदीय रूपाजीवा नारी के केश-कलाप का कुछ परिचय मिलता है। सद्गृहिणियाँ भी कंघी दर्पण तथा सुगंधित द्रव्यों के योग से केशों को सुन्दर स्वच्छ और चमकीले बनाए रखती थीं। केशों को सुवासित रखने के लिए पुष्पादि का प्रयोग भी किया जाता था। केश कलाप में विशेष स्वर्णाभरण धारण करने की भी प्रथा थी, जो सोने के साथ मणियाँ जड़कर बनाया जाता था। इसके निर्माण में बहुत धन व्यय होता था।

बौद्ध साहित्य में ही नहीं जैन साहित्य में भी इसी प्रकार केश प्रसाधन के संबंध में अनेक तथ्य मिलते हैं। महिलाएँ सिर पर घुँघराले केश रखती थीं और उन्हें पीछे से—केशों के नीचे से होकर सामने एक फीते से बाँधती थीं। चारों ओर केशों को बीच में लाकर जूड़ा बाँधती थीं। जूड़ों को एक फीते से कसकर बाँध दिया जाता था। कुछ रमणियों के सुन्दर केश पीछे की ओर खुले लटकते रहते थे, और सिर पर एक मुकुट सा आभूषण होता था। कुछ अपने केश को पीछे की ओर बिखेरकर छोड़ देती थीं, जिनको एक पट्टी से बाँध दिया जाता था। कुछ महिलाएँ सिर के मध्यभाग में केशों का जूड़ा बाँधकर उसे शिरोवस्त्र से ढँक लेती थीं।

मौर्यकाल में भारतीय महिलाओं के केश विन्यास के संबंध में कौटिल्य के अर्थशास्त्र, मेगस्थनीज की विवरणिका तथा महाभारत के सभा पर्व से बहुत कुछ ज्ञात होता है। इस काल में नारियाँ अपने केशों में हस्तिदन्त निर्मित सूचिकाएँ प्रयोग में लाती थीं। वेणी, जूड़े और घुँघराले केशों से नारियाँ अपने सिर को सज्जित रखती थीं।

केश कलाप 'अजन्ता'

नोट अन्य मोतियों के आभूषण भी स्पष्ट हैं।

माँग को सिन्दूर से भरना

भारतीय सौभाग्यवती स्त्रियों के सौन्दर्य प्रसाधनों मे माँग को सिन्दूर से भरना बहुत प्राचीन परम्परा है। सोलह शृंगार की परम्परा म भी इसे महत्वपूर्ण स्थान[1] दिया गया है।

यह प्रथा बहुत प्राचीन है पर 'माग' शब्द इतना अधिक प्राचीन नहीं। संस्कृत-साहित्य म इसके लिए सीमन्त शब्द का प्रयोग ही अधिकतर हुआ है। सीमन्त =सीमाया सीम्न वा अन्ते। शब्दार्णव म भी सीमन्त का अर्थ इस प्रकार दिया गया है—सीमन्त स्त्रिया मस्तकेशवीथ्यामुन्नाहृतम। सीमन्त के लिए सिन्दूर[2]

1 प्रथम अंग शुचि एक विधि मञ्जन द्वितियबखान
अमल बसन पहिरे तृतीय जावक चारि सुजान।
पचम केश सँवारियो षष्ठहिं माँग सिन्दूर।

2 सिन्दूर के प्रचलन का श्रेय किसको है? इस सबंध मे डा नरेन्द्र सिंहा का विचार है

का प्रयोग प्राचीन काल से किया जा रहा है। यह पीला या रक्त वर्ण का होता है। भाव प्रकाश में इसका विवरण इस प्रकार है

सिन्दूरं रक्तरेणुश्च नागगर्भश्च सीसकम्।
सीसोत्थ धातु सिंदूर गुणस्तत्सीसवन्मतम् ॥

यह लाल वर्ण का ही पिसा हुआ चूर्ण होता है, जिसे नागगर्भ और सीसा भी कहते हैं। चटक लाल रंग का सिन्दूर अच्छा समझा जाता है। यह खुश्क और गर्म होता है। और हड्डियों को जोड़ने में सहायता करता है

सिन्दूरमुष्णवीसपकुष्ठकण्डूविषापहम्।
भग्नसंधानजननं व्रणशोधनरोपणम् ॥

सिन्दूर के प्राचीन प्रचलन की सूचना डा० अल्टेकर[1] ने भी दी है

सिन्दूरभूषणविवर्जितमास्यपद्ममुत्सृष्टहारवलयं कुचमण्डलञ्च ॥

कालिदास ने रमणियों के केश शृंगार का वैविध्यपूर्ण वर्णन किया है। केशों के मध्य माँग निकाली जाती थी। माँग भरने का भी उल्लेख कालिदास की रचनाओं में है। इस माँग को भरने के लिए अरुण चूर्ण का उल्लेख मिलता है

वक्रेतरागरलकैस्तरुण्यश्चूर्णारुणान्वारिलवान्वमन्ति। —रघुवंश (१६।६६)

(सीधे लटके हुए बालों से कुंकुम मिली हुई लाल रंग की बूँदें चू रही हैं।)

स्त्रियाँ अपनी माँग को फूलों से भी सजाया करती थीं

चूडापाशे नवकुरवकं चारु कर्णे शिरीषं।
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥ मेघदूत-उत्तर(२)

एक स्थान पर दो अँगुलियों से गीली हरताल[2] और मंगलसूचक मैनसिल[3] से मेना अपनी पुत्री पार्वती के माथे पर विवाह का सौभाग्यसूचक तिलक करती है, ऐसा उल्लेख मिलता है

Sindoor was the *symbol* of red blood applied by the Mundas married ladies out of the killed animals on their head to indicate their fortune that their husbands are returned safe from the hunting or Sendera as it is still called in Mundari

दूसरी ओर सुप्रसिद्ध भाषाविद् डॉ सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या सिन्दूर को चीनियों की देन मानते हैं

Prabodh Chandra Bagachi *suggested* that the Sanskrit word for Vermillion Sindoor was also from the Chinese (ts in T ung)—Indian Linguistics—Bagachi Vol Page II

१ A streak of Sindhura on the head or a circular mark of kumkum on the forehead was made by maidens and women in coverture—indespensible sign of Saubhagya or married bliss A S Altekar—The Position of Women in Ancient India 1956

२ हरताल—पीले रंग का एक प्रसिद्ध खनिज पदार्थ जो दवा के काम में आता था।

३ मनसिल—एक प्रकार की धातु जो मिट्टी की तरह लालिमायुक्त पीली होती थी।

अयङ्ग लिम्याहिरितालमाद्र माङ्गल्यमादाय मन शिला च।
कर्णावसक्तामलदन्तपत्र मातातदीय मुखमुन्नमय्य ॥
कुमार० (७।२३ २४)

श्रीहर्ष ने 'नैषध' म तो इसका स्पष्ट उल्लेख किया है

नलात स्ववश्यस्त्यमनाप्तुमानता नृपस्त्रियो भीममहोत्सवागता ।
तदङ्घ्रिलाक्षामदधत मङ्गल निरःसु सिन्दूरमिव प्रियायुषे ॥
नैषध (१५।५५)

नल स अपने वधध्य को नही पान के लिए, राजा भीम क महोत्सव म आयी हुई राजपत्नियो न अपने पतियो की आयु रक्षा क लिए मागलिक सिन्दूर के समान दमयन्ती के चरणो की महावर को अपन सिर पर लगाया।

सिन्दूर सौभाग्य का लक्षण है। मध्यकाल म प्राकृत[1] म मग रजतद्रव्य विशेष, रग के काम म आनेवाला एक द्रव्य विशेष था।

प्राकृत 'मग' ही हिन्दी म माँग (सीमन्त) रूप म विकसित हुआ होगा। सिन्दूर ही इगुर या सिंदरप' भी कहलाता है। काव्यकल्पलतावृत्ति म सीमन्त को दण्ड' उपमान से भी अभिव्यक्त किया है। देवेश्वर ने कविकल्पलता म माँग के लिए रास्ता, दण्ड गगा की धारा आदि उपमाएँ जुटायी हैं। मियाँ नूर को प्रकाश नाममाला[2] म अन्य शब्द भी हैं।

हर्षचरित म स्त्रियो क माथे पर सिन्दूर लगाने का उल्लेख मिलता है। सिन्दूर की डिबिया को ही 'सिन्दूरपात्राणि' कहा है।

माँग को सिन्दूर पुष्प अथवा मोती आदि बहुमूल्य पदार्थों म सजाने की प्रथा थी।[3] इसस पूर्व १०वी शताब्दी से १५वीं शताब्दी के मध्य भी इसके उल्लख मिलते हैं

'राउलबेल' (११वी शताब्दी) मे माँग म सिन्दूर का उल्लेख है

जिसउ सिंदूरिअउ रजायउ ॥६०॥

'सदेशरासक' म फूलो का शृगार

सज्जिउ कुसुमभार सीसोवरि ॥३ १७८॥

वसन विलास म सिन्दूर तथा मोती दोनो का उल्लेख है

सौंधइ माँडूरिहिं पूरिअ पूरिअ मोतीअ चग ॥५६॥

पृथ्वीराजरासो' म माँग को मोतियो से भरे जान का उल्लेख

---

१ पाइअसद्दमहण्णवो पृष्ठ ६६२।

२ प्रवणि वैणी माँग यह सामत सुवपानि ॥ ५३७॥

३ Women also used flowers and ornaments to decorate their hair Frayer says— Their hair—grown in tresse which the rich embellish with gold cornoets and rich jew ls the poor brace with stings of Jasmine flower
Rekha Misra—*Women in Mughal India 1967 Page 124*

माँग मोहनिलय मुति यानी ॥४२०३॥

'कुतुबशतक' में वधू के सिर पर सिंदूर का उल्लेख

वरणी सिरि सिंदूर ॥७८॥

विद्यापति ने भी महिलाओं के सिर में सुशोभित सिंदूर की रेखा को 'भानु अरुण' कहा है, साथ ही उनके पदों में, सीमंत में मोतियों का उल्लेख है। छिताई वार्ता में मोतियों से भरी माँग का स्पष्ट उल्लेख है

मोती माँग मदन की बाट ॥[1]

वर्ण रत्नाकर[2] में सिन्दूर से अलंकृत सीमन्त का उल्लेख मिलता है

सिन्दूरदण्डिकालंकृत सीमन्त (पृष्ठ ६)

चन्दायन' में 'सिन्दूर' को सौभाग्य और सौन्दर्य का पर्यायवाची ही समझकर 'मांगलिक स्वरूप' का वर्णन है

हाथ सेंधुरा सेंदुर भरा। भीतर मंडप चाँद 'पउ' भरा।[3]

(हाथ में सिन्दूर-पूरित सिन्दूर-पात्र लिया तथा मंडप के भीतर चाँद ने धर रखा।)

चन्दायन' में सिंदूर भरी माँग का विशद वर्णन प्रस्तुत हुआ है

पहिलें माँग क कहउँ सोहागू। जेंहि राता जहँ खेलइ फागू।

माँग चीरि सिर सेंदुर पूरा। रेंगि चला जनु कानकेंजूरा॥[4]

तथा—

लइ कइ 'कूच तउ' दरब दिखावा। सोज सेंधुउरा माँग भराया॥

सेंदुर चदन सम कोइ लेई। मनां आपुन करइ नहिं देई।

सेंदुर सो कर जहि पिउ होई। नांह मोर हरदीं हइ सोई।[5]

मोतियों से भी माँग पूरने का प्रचलन था यही कारण है कि नायक युद्ध में जीतकर आने पर मोती से माँग भराने की प्रतिज्ञा करता है —

मना मोतिन्ह माँग भरावउँ।[6]

(जूड़े) का भी प्रचलन था

जूड़ा छोरझार सो नारी। देवसहिं रात होई अँधियारी॥

---

१ छिताई वार्ता—१७४।

२ डा० भुवनेश्वर प्रसाद गुरुमता—वर्ण रत्नाकर का सांस्कृतिक अध्ययन १९६५ ई० अप्रकाशित शोध प्रबंध पृष्ठ ६६९।

३ चन्दायन—सं० डा० माताप्रसाद गुप्त १९६७ ई० पृष्ठ २३६४।

४ वही पृष्ठ ६२।

५ वही पृष्ठ ३८३।

६ वही पृष्ठ १०६।

७ वही सं०, डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त ७६ पृष्ठ ११८।

सुहाग चिह्न के रूप में माँग में सिन्दूर का प्रयोग मिलता है

अवकि माग सिरि चीरि सेंदूरहि ।[1]

'मृगावती' में भी केश-सज्जा तथा माँग में सिन्दूर भरने का विवरण मिलता है

कर सौं कुरिल सवारिस बारा । देखेउ माँग बहुत जियमारा ॥[2]

तथा,

लट जो लटक गाल पर परं । जस र पदम नागिन बस निकर ॥[3]

साथ ही

सर सेंदुर दीन्हा ॥[4]

जायसी ने तो पद्मावत में इसको तीसरा शृंगार प्रसाधन माना है

प्रथमहिं मजन होइ सरीरू । पुनि पहर तन चदन चीरू ॥

साजि माँग पुनि सेंदुर सारा । पुनि ललाट रचि तिलक सवारा ॥[5]

जायसी ने केश विन्यास के अन्तर्गत ही मुख के पास पत्रावली रचने का भी संकेत किया है

रचि पत्रावलि माँग सिंदूरा । भरि मोतिन्ह औ मानिक पूरा ॥[6]

× × ×

कनक माग जो सेंदुर रेखा । जनु बसन्त राता जग देखा ॥

क पत्रावलि पाटी पारी । औ रचि चित्र विचित्र सँवारी ॥

भएउ उरेह पुहुप सब नामा । जनु बग बगरि रहे घनश्यामा ॥

जमुना माँझ सुरसती माँगा । दुहुँ दिसि चित्र तरगहि गांगा ॥

सेंदुर रेख सो ऊपर राती । बीर बहूटिन्ह की जनु पाँती ॥

बलि देवता भए देखि सेंदुरू । पूज माग भोर उठि सूरू ॥

भोर साँझ रवि होइ जो राता । ओहीं सो सेंदुर राता गाता ॥[7]

तथा बादल की वधू

भएऊ वीर रस सेंदुर माँगा । राता रुहिर खरग जस नागा ॥[8]

सेंदुर के तिलक को आँकुस (अकुश) के तुल्य माना गया है ।[9]

---

१ वही डा माताप्रसाद गुप्त पृष्ठ ३४८ ।
२ मिरगावती (स परमेश्वरीलाल गुप्त) छन्द ५३ ।
३ वही छन्द ५४ ।
४ वही छन्द ७६ ।
५ जायसी—पदमावत (दोहा २९६)
६ वही दोहा २९७—केशों में पट्टियाँ बनाना जिसमें फूल-पत्तियाँ होती हैं— पत्रावली कहलाता है ।
७ वही दोहा ४७१ ।
८ वही दोहा ६१९ ।
९ वही दोहा ६४१ ।

केशों का बहुत ही चित्रमय वर्णन तथा माँग का सश्लिष्ट शृंगार वर्णन जायसी ने उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओं की छटा के साथ किया है।[1]

बीभत्स रस के साथ

खाँडे धार रुहिर जनु भरा। करवत लै बेनी पर धरा॥
तेहि पर पूरि धरे जौं मोती। जमुना माझ गाँग कै सोती॥
करवत तपा लेहिं होई चूरू। मकु सो रुहिर लै देइ सेंदुरू॥[2]

जायसी ने माँग के लिए अनेक मूर्त तथा अमूर्त उपमान जुटाए हैं जिनमें उल्लेखनीय हैं

बिना सिन्दूर—सरस्वती, रात्रि मध्य उजला पथ, दामिनी, कंचन रेखा।

सिन्दूर भरी—बीरबहूटी गगन में सूर्य की किरण रुधिर भरी तलवार, राता बसन्त।

मधुमालती में भी सिर में सिंदूर लगाने का विवरण मिलता है

मुख तबोल सिर सेंदुर रोरा।
गावहिं तरुनी होई अंदोरा॥[3]

तथा,

नगर खोरि सम महक तरुनित माग सिंदूर।

'चित्रावली' में भी माँग को मोतियों से भरा गया है

भरे माँग मोती मनियारे। नखत पाँति ससि आइ जोहारे।[5]

'नानन्पेप' में सौभाग्यसूचक 'सेंदुरदान' का वर्णन विवाह के अवसर पर किया गया है

मौरि टारि कुवर कर लीन्हा।
अति अनन्द सौं सेंदुर दीन्हा॥

निर्गुण सन्तों में इतना अधिक विशद वर्णन तो नहीं मिलता पर सिन्दूर के शृंगार के प्रतीकार्थक प्रयोग मिलते हैं

का काजल स्यूंदर के दीय।[6]

---

१ जायसी—पदमावत दोहा १०० ।
२ वही दोहा १०।
३ मधुमालती (मझन) डा० माताप्रसाद गुप्त १९६१ ई० छन्द ५२।
४ वही छन्द २८।
५ चित्रावली छन्द २८।
६ कबीर—सं० हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा ग्रन्थावली पद सं० १३९।

तथा,

हाथ मे नारियल मुख मे बीडा, मोतियन माँग भरी ।[1]

कृष्ण काव्य धारा म अष्टछाप के कवियो ने केश, कबरी तथा केश शृगार का बडा विशद तथा चित्रात्मक वणन प्रस्तुत किया है ।

राधा तथा गोपियों के सुदर लम्बे और काले-काले केशा का चित्रमय वणन अनेक पदों म मिलता है। नायिका की रूपशोभा की वद्धि म सुदर केश सहायक सिद्ध होत हैं। राधा के केश एडी को छू रहे हैं

बडे-बडे बार जु ऍडिनि परसत स्यामा अपन अचल मैं लिएँ।
बेनी गूथन फूल सुगध भरे, डोलत हरि बोलत न सकुच हिएँ॥
कसुभी सारी अलक भलक मनौं, अहिकुल बदन सौं पूजा किएँ॥[2]

पुष्पा स गुथे हुए कश मदु तथा चिक्ने हैं

अति सुदेस मदु चिकुर हरत चित, गूँथे सुमन रसालहि।
कबरी अति कमनीय सुभग सिर, राजति गोरी बालहिं॥[3]

कुचित केशो को ही अलक' कहा गया है

राजति राधे अलक भली री।
मुकुला माँग, तिलक पन्नगि सिर, सुत समेत भप लेन चली री॥

बिखरी अलको तथा सुथरे बाला के वणन के बाद वेणी गूथने का चित्रण भी मिलता है। बाल सुलझान के बाद दो भागा म विभाजित कर माँग निकालने का भी सूरदास ने चित्रण किया है

रची माग सम भाग राग निधि, काम धाम-सरनी।[4]

तथा

विविध बेनी रची, माँग-पाटी सुभग।[5]

माँग को मोती से अलकृत करने का उल्लेख भी कई पदा मे मिलता है मोतिया से भरी माग—मोतिनि माँग भरी (पद स० १६७३), मुक्ता माँग (प० स० २३२१)

गुथे हुए बालो के लिए चोटी बेनी कबरी वणी आदि श ो का उल्लेख मिलता है इनको फूलो से भी सजाया जाता था

१ कबीर—ह प्र द्विवेदी प स १८८।
२ सूरसागर पद स० ३२३५।
३ वही पद स १६७३।
४ वही पद स २३२१।
५ वही प स २८ २।
६ वही पद स १६६०। अन्य पदों में ६४२ १३२२ १३२६ १६७३ १७७८ २११६ २३२१ २६४५ आदि द्रष्टव्य हैं।

बेनी चपक, बकुलन ग्रथित रचि रचि सखिनि सवारी।[1]

सूरदास ने भी पुष्पों से सजे केशों का विस्तार से वर्णन किया है

बेनी गूँथन फूल सुगध भरे, डोलत हरि बोलत न सकुच हिएँ।[2]

सूरदास ने कुछ स्थानों पर धम्मिल का भी उल्लेख किया है

धम्मिल नीर अगाध।[3]

माँग में सिंदूर भरने का विवरण

मुख मडित रोरी रग सेंदुर माँग छुही।[4]

कबरी में मोतियों की माला और माँग में सिंदूर से मडित

विराजति राधा रूपनिधान।
सुदरता की पुज प्रगट ही, को पटतर लिय आन।
सिंदुर सीस माँग मुक्तावलि, कच कमनीय बिनान॥[5]

गोविन्द स्वामी ने मोतियों से सज्जित माँग के साथ, बेनी में विविध फूल गुथे होने का वर्णन किया है

प्यारी के फूल सिर सोहे हो, मोतिन माँग सँवारी हो।
विविध कुसुम बेनी गुही, चपक बकुल निवारी हो॥[6]

तथा

पिय प्यारी की बेंनी बनावत फूल के हार सिंगार करत।

\+ + +

बेंनी गुही जिन माँग सवारी सीस फूल लटकायो।[7]

गजमोतियों से खचित माँग के साथ अन्य प्रकार के मोतियों की छटा भी माँग में देखी जा सकती है।

छीतस्वामी ने माँग को मोतियों से ही भरा वर्णित किया है

कचन थार साजि लियें कर मोतिनि माग सवारी।[8]

चतुर्भुजदास ने ग्रथित बेनी का वर्णन किया है, जिसमें विविध प्रकार के कुसुम गुथे रहते हैं

१ परमानन्द सागर पद स० ६१६।
२ सूरसागर पद स० ३२३५।
३ वही पद स ३ ६३।
४ वही पद स ६४२। अन्य पद द्रष्टव्य हैं—२ ६३ २११६ २१४६ ३१०७ ३२२६ आदि।
५ वही पद स ०६४।
६ गोविन्द स्वामी के पद स १३५।
७ वही पद स १५०।
८ वही पद स २ ४।
९ छीतस्वामी के पद स २१।

चली री चतुर कुरगम ननी।
भूखन बसन साज बन सुदर, विविध कुसुम गूथी बनी।[1]

फूलों क शृगार का ही न दन्दास ने भी वणन किया है

सीस पुहुप गूथन छवि वही मनो मदन भग कानन आई।[2]

कुभनदास ने मोतिया की माँग का विशेप रूप से वणन किया है

मोतिन माग वियुरी ससि मुख पर।[3]

अ य पदा म पुष्पा स केश पाश को सजाने का स्वाभाविक चित्रमय वणन मिलता है

तेरे सिर कुसुम वियुरि रहे मानिनि।
सोभा देत मानो नभ निसि तारे॥
स्याम अलक छुटि रही री बदन पर।
चद छिप्यो मानों बादर कारे॥

तथा,

बेनी गूथ विविध कुसुमावलि सुहथ सवारत सग।[5]
+ + +
मदुल कुसुम रची बनी सवारी कठ कुसुमनि के हार घरे।[6]

कृष्णन्दास के साहित्य म भी धम्मिल का उल्लेख मिलता है

धम्मिल विपुल बिमल सर भग रेखा रति पूर।

पुष्पा से केशों को सजाने को विशेष महत्त्व दिया गया है

पकज मुख अति सुदेस सियलित सिर कुसुम-केस।[8]

तथा,

तेरे लाबे केस विविध कुसम ग्रथित देखि।[9]
+ + +
कुसुम निकर धम्मिल माँग, मनि तनसुख छींट ओढ़नी राग।[10]

तथा,

बनी गुही है चमेली।[11]

---

१ चतुभुजन्दास पद स १२६।
२ न ददास रूपमजरी ११६ तथा बेनी के लिए रास पचा० २ ।२७।
३ क भनदास-पदावली पद स० ३ ५।
४ वनी पद स ३२ ।
५ वही प" स० ३३६।
६ वही पद स ३८७।
७ कृष्णन्दास पदावली प" स ५८।
८ वनी पद स ५६।
९ वही पद स ८७।
१ वनी प" स २७४।
११ वही पद स० १ ४२।

वेश सज्जा म पुष्पों के अतिरिक्त मोतियो का भी विवरण मिलता है

विविध मोतिनि गुही सुमग मगे।[1]

अन्य सम्प्रदायों के कवियों ने भी इस परम्परा का निर्वाह किया है, जसे

रामराय-सेंदुर माँग भाल तिलकावलि।[2]

सूरदास मदनमोहन बेनी गूँथन हित फूल सुगध फेंट भर डोलत बोलत नाहिन सकुचि हिए॥[3]

राधावल्लभी सम्प्रदाय के कवियो ने तो बडा ही मनोहारी चित्रात्मक वणन किया है। हरिराम व्यास क कुछ चित्र द्रष्टव्य हैं

बेनी गुही मगननो की पिय।

चपकली सोहति अलकनि बिच मोहति मन ननिनि सुख लागत।[4]

हितहरिवश जी न तो कबरा का बडा ही सरस वणन किया है

यों राजत कबरी गूँथित कच-कनक-कज बदनी।

चिकुर चद्रकनि बीच अध बिधु मानो ग्रसित धनी।

सौभाग्य रस सिर श्रवण नारी पिय सोमन्त ठनी।[5]

'ध्रुवदास' की बयालीस-लीला मे भी मोतियो स भरी माँग का उल्लख है

मोरी सीस सुरग सुहाई। मोतिन माँग रची सुखदाई।[6]

पुष्पो से गुथी माँग का पथ्वीराज कवि न बेलि मे बडा हृदयहारी वणन किया है

कबरी किरि गुथित कुसुम करम्बित
जमुण फेण पावन्न जग।
उतमग किरि अम्बर आधो अधि
माँग समारि कुआर मग॥[7]

(फूल दे-देकर गुथी हुई चोटी, मानो जग को पवित्र करनवाली यमुना के

---

१ वही पद सं० ६२४।

२ चतन्यमत और ब्रज-साहित्य स प्रभुदयाल मीतल पष्ठ १४७।

३ सूरदास मदनमोहन, स प्रभुदयाल मीतल पष्ठ ५७।

४ भक्तकवि व्यासजी स० प्रभुदयाल मीतल पष्ठ २७७।
अन्य पद भी द्रष्टव्य हैं
पृष्ठ २८६ पर—चिकुरनि चपकली गुहि बेनी डोरी रोरी माँग सवारी।
पृष्ठ २८७ पर—चिकुरनि चपकलिन की रचना सेंदुर मरम पनारी।

५ राधावल्लभ सम्प्रदाय और सिद्धान्त ले० डॉ विजयेन्द्र स्नातक पृष्ठ ३१३।

६ ध्रुवदास—बयालीस-लीला वही पष्ठ २४८।

७ बलि क्रिसन रुक्मणी री छद ८५।

फेन हैं और मस्तक के बीचो बीच सँवारी हुई माग ही मानो आकाश स्थित आकाशगगा है।)

राम का यधारा म तुलसी ने नारी शृंगार का बडा ही सयत वणन किया है पर सौभाग्यचिह्न सिंदूर के उल्लेख स व भी वच न सक हैं

राम सीय सँदुर देहीं। सोभा कहि न जात विधि केहीं॥
अरुन पराग जलजु भरि नीके। ससिहिं भूष अहि लोभ अमी के॥[1]

कशव ने माग म सिंदूर तथा मोनी दोनो का उलनख किया है

सेंदुर माग भरी अति भली। तिहि पर मोतिन की आवली॥
गग गिरातन सो तन जोरि। निकसीं जनु जमुना जल फोरि॥[3]

कबरी म भी पुष्प लगाये जात थ

कवरी कुसुमालि सिखीन दई।
गजकुभनि हारनि सोभमई॥[3]

केशवदास न कविप्रिया म अलक-वणन कशपाश वणन[4] तथा वणी वणन[5] पृथक-पृथक किया है इससे सिद्ध होता कि अलक कश तथा वणी म व भेद ही नहीं करत थे शृंगार प्रसाधन म इन्हे पृथक विशष महत्त्व दते थे।

माँग का वणन केशवदास ने शिर शोभा वणन म किया है

स्यामल सुमिल सुभ पाटिन मे चारु माग
अरुन जलन-सोभ सोभ जल जल मे।

रीतिकाल म सि दूर (इगुर) का वणन दव न भाव विलास राजविलास श द रसायन आदि म किया है। कश वि यास मे जूड का वणन बिहारी भिखारी दास तोष आदि न वणी का वणन बिहारी पद्माकर भिखारी दास वनी देव, *मतिराम आदि सब कवियो ने किया है तथा माँग का चित्रात्मक वणन पद्माकर,* भिखारी दास दव आदि न किया है

वृन्द ने केसपास सुधारिबो पाँचवाँ शृंगार माना है।[8]

सौभाग्य चिह्न माँग म सि दूर भरना प्राय सभी कालो म मिलता है। इसके साथ केशो क विविध शृंगार की भी प्रथा चलती रही।

---

१ रामचरितमानस (तुलसी) गटका पष्ठ २९३।
२ आदि ३१।८।
३ रामचद्रिका ११।२८।
४ कविप्रिया ६६ ७१।
५ वही ७४ ७५।
६ वही ७७ ७८।
७ वही ७६।
८ वन्द—शृगार शिक्षा पष्ठ १५।

वस्त्र धारण

शरीर को सजाने' की दृष्टि से ही नही वरन प्रकृति (जलवायु) के अनुसार शरीर को ढकने के लिए वस्त्रो का असाधारण महत्त्व है। समाज मे आदि काल से शरीर को पत्तों पेड की छाल आदि से ढकने की प्रक्रिया चलती आ रही है जिसने कालान्तर मे वस्त्रों का रूप ले लिया। वस्त्रो की निर्माण-प्रक्रिया भी समय समय पर बदलती रही, और देश काल का भी उसपर प्रभाव पडा। संस्कृति के साथ वेश का सीधा सम्बन्ध है।[२]

भारत की जलवायु गर्म है ऐसी स्थिति म कभी प्रकृति की ओर से अधिकाधिक वस्त्र पहनने की आवश्यकता नही रही। ऋतुओ के अनुसार भी वस्त्र विन्यास की रीति बदल जाती रही है। बौद्धसघ म बरसात के लिए विशेष प्रकार की लुंगी पहनने का प्रचलन था।

सिन्धु सभ्यता के चिह्नों और अवशेषो से ज्ञात होता है कि उस समय भी वस्त्र पहनने की शैली उच्च कोटि की थी। ३५०० ई०पू० से १५०० ई० पू० तक प्रागैतिहासिक सभ्यता मे अनेक वस्त्र मिलते हैं। ऐतिहासिक प्रमाणो से सिद्ध है कि नारियाँ पख के आकार का शिरोवस्त्र पहनती थी इस शिरोवस्त्र पर अलकार भी बने होते थे। कमर मे स्त्रियाँ करधनी से बँधी लगोटियाँ पहनती थी।[३] वैदिक साहित्य के रचना-काल म स्त्रिया सुरुचिपूर्ण ढग से वस्त्र पहनने लगी। यज्ञ के अवसर पर जो वस्त्र स्त्रिया पहनती थी, उसमे रसना का विशेष महत्त्व मिलता है। यह 'रसना अधिवास के ऊपर बाँधी जाती थी। (इससे पूर्व सिन्धु सभ्यता म यही डेढ़ फुट चौडी कोई साडीनुमा पट्टी थी जो कमर पर लपट ली जाती थी)। वास [४] सर्वाधिक प्रचलित वस्त्र था। यजमान की स्त्री अपने कटि-प्रदेश म यह वस्त्र धारण करती थी। कुश का बना 'चण्डातक पहना जाता था। कुशा से तात्पर्य रेशमी वस्त्र है। चण्डातक को अर्धोरुक भी कहा गया है जो आधी जाघो तक आनेवाला घाघरा जसा कोई वस्त्र था, और जिसे नर्तकियाँ पहना करती थी।

---

१ २ Clothing originated in the decorative impulse *This Provides a* cause which operates through unconscious intelligence & automatic *feeling* The natural man will undergo any trouble any discomfort in order to beautify himself to the best of his power (Ratzel) The primary function of her dress is to render her *unattractive to others* to conceal her body from other men's eyes
Jamila Brij Bhushan—The costumes and Textiles of *India* p 1

३ Dr Charles L Fabri—A History of Indian Dress 1900 Page 1

४ वास—Direct piece of cloth worn round the loin the woman *of that* epoch work only a piece of cloth now a days called Sari around her body —Dr Bhupinder Nath Dutt Indian art in Relation to culture

'अर्धोसक'[1] जाँघिया या घघरी की तरह कोई वस्त्र था।

बौद्ध एवं जनयुगीन जीवन में भी नारी की दिनचर्या में प्रसाधन का महत्त्व था। बौद्ध युग में काशी के वन वस्त्र[2] प्रसाधन की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे। साडी ही प्रमुख वस्त्र था।[3] नीला रंग स्वच्छता की दृष्टि से सबसे सुन्दर माना जाता था अतएव इसका ही अधिक प्रचलन था। इसके अतिरिक्त पीला, लाल, हरा, मजीठा और गहरे रंग भी पसन्द किए जाते थे। आज के युग की तरह एक ही रंग के सभी वस्त्र पहनने की भी प्रथा थी (भिक्खुनिया स बनीनकानि चीवरानि धारेंति—चुल्लवग्ग, पृ० ३८७)[4]। किनारीदार विभिन्न आकृति वाले कंचुक उत्तरिज्ज[5] जो दुकूल (वृक्ष की छाल से बना कपडा) से बनते थे।

जैन आगमों में प्राप्त वर्णनों से ज्ञात होता है कि उस काल में वस्त्र सम्बन्धी मान्यताएँ काफी बदल गई थी। नील रंग का अंशुक श्रेष्ठ समझा जाता था। चीनांशुक (चीणसुय) का प्रचलन बढ़ गया था।

साधारणतः भिक्षुणियों के तीन वस्त्र होते थे—संघाटी (कमर में लपटने के लिए यही साडी का प्राचीन रूप है) अंतरवासक (ऊपरी भाग को ढकने का वस्त्र) और उत्तरासंग (चादर)।[6]

कालिदास के साहित्य में स्तनांशुक तथा कूर्पासक का उल्लेख है। स्त्रियों के लिए चोली के ढंग का कर्पासक बनाया जाता था, जो कटि के ऊपर रहता था और प्रायः आस्तीन रहित। अंशुक रेशमी वस्त्र होता था और इतना महीन कि कभी-कभी निःश्वास से भी उड जाता था। इसके टुकडों को वक्ष स्थल पर सामने से ले जाकर पीछे गाँठ बाँध दी जाती थी। ओढ़नी की भी प्रथा थी (उत्तरासंगवती)।

भरहुत के चित्रों में स्त्रियाँ धोती पहने हुए हैं पर यह घुटनों के नीचे नहीं पहुँचती—इसमें पुंजन भी होते हैं। इनकी साडी भारी भरकम करधनी और कमरबन्द से बँधी होती है। स्त्रियों के शरीर का ऊपरी भाग खुला हुआ दिखलाया

---

१ डॉ० मोतीचन्द्र—प्राचीन भारतीय वेशभूषा पृ० ९३।

२ कासिकुत्तमधारिनि—थेरी गाथा १३।३।
कासिकसुखुमानि—थेरी गाथा १४।१।

३ महावग्ग पृ० ३ ६ तथा चुल्लवग्ग पृ० २७४।

४ डा० कोमलचन्द्र जैन—बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन १९६७ ई पृ १९८ २ ४ द्रष्टव्य हैं।

५ पाइअ सद्द महण्णवो पृ १५५—चादर दुपट्टा।

६ डा. मोतीचन्द्र—प्राचीन भारतीय वेशभूषा प ३५।
कंचुक का भी प्रचलन था बिना कंचुक पहने गाँव में जानेवाली भिक्षुणियों के लिए प्रायश्चित्त का विधान था—वही प ३६।

७ डॉ गायत्री वर्मा—कालिदास के ग्रंथों पर आधारित तत्कालीन भारतीय संस्कृति प २६२ ७।

गया है पर यक्षिणी के दाहिने स्तन के नीचे एक मनमनी चद्दर की तह के निशान हैं।[1] उनके सिर कामदार ओढ़नी से ढँके होते थे।[2] भरहुत के एक अर्धचित्र में दो स्त्रियाँ रूमालों से अपने सिर ढँके हैं। मथुरा की एक दूसरी शताब्दी की मिट्टी की मूर्ति (५" ऊँची) बढोना म्यूजियम में है जिसमें एक लड़की साड़ी पहने हुए है।

सांची में प्राप्त कला प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि उस काल में ओढ़नी का प्रचलन अधिक था (किनारे वाली, दो लहों वाली दो लहों पेंचों से बँधी चौलहो पेंचों से बँधी पट्टे के आकार की)। गांधार की कला में, स्त्रियों की वेशभूषा में तीन कपड़े स्पष्ट हैं—आस्तीन वाला कंचुक साड़ी जो सारे शरीर को ढक लेती थी और एक चादर जो कंधों पर रहती थी। मथुरा की मूर्तिकला के आधार पर यह पता लगता है कि वहाँ की नारियाँ शायद कंचुक (चोली) नहीं पहनती थीं। कुछ दृश्यों में स्त्रियाँ अवश्य सिले हुए वस्त्र पहन रही हैं जो कमर तक कसा है तथा जिनका घेर चुनटदार है। यहाँ की स्त्रियाँ सिर भी नहीं ढकती थी जिससे उनकी सुन्दर केशराशि दिखाई दे। अगर ओढ़नी कहीं है तो पीछे लहराती है।

ये ही वस्त्र प्रकारान्तर से १०वीं शताब्दी तक चलते रहे जिनका उल्लेख तत्कालीन साहित्य में मिलता है तथा मूर्तियों में जिनको देखा जा सकता है।

इस शताब्दी के प्रसिद्ध ग्रंथ 'मानसोल्लास' में विलपन के पश्चात 'वस्त्रोपभोग' (३।६ १०१७ से ३३) का विस्तृत उल्लेख मिलता है। नाना देशों के वस्त्र तथा अनेक प्रकार के वस्त्रों का विवरण मिलता है। अनेक प्रकार के रंगीन वस्त्रों (रक्त तन्तुओं मजीठ के रस से लाल लाक्षाद्रव से युक्त कुसुम के रस से लिप्त सिन्दूर से अरुण किए हुए अभय रस से काले किये हुए) क्षौम[3] कार्पासिक, रोमज (पशुओं के रोम से बनी) तथा अंशुक[4] का विवरण मिलता है।

अल-बरुनी ने भारतीय स्त्रियों के वस्त्रों में कुर्ती (कुतक) का उल्लेख किया है जो छोटी कमीजनुमा होती थी और जिसमें आस्तीन भी होती थी। इस काल के वस्त्रों पर प्रो० मुहम्मद हबीब ने प्रकाश डाला है। उन्होंने साड़ी और कुर्ती का विशेष विवरण दिया है

---

१ डॉ मोतीचन्द्र—प्राचीन भारतीय वेशभूषा पृ ६६।

२ वही पृ ७३।

३ क्षौम' का उल्लेख वेणीसंहार तिलकमंजरी आदि बाण के ग्रंथों में पर्याप्त मिलता है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इसे पुरानी चीनी घास से निर्मित वस्त्र माना है (सुमाया विकार क्षोमम्) लोकभाषा में हो इसका नाम मल्ल था (क्षौमो इव मल्ल इति ख्याते) मल्ल संभवतः मलमल का ही प्राचीन रूप है जो कामरूप तथा बंगाल से विशेष रूप से आता था।

४ यह भारतीय तथा चीनी दोनों देशों में प्रसिद्ध था। यह मुलायम सुन्दर रेशमी वस्त्र था।

At the time under review, women used to wear antriya or Sari half tied round the legs and half wound round the shoulders An Utriyah or Dopatta was wrapped round it outdoors A skirt (lahanga) was worn at the time of dancing Dhoties had often Ornamental borders

सोमदेव सूरि रचित 'यशस्तिलक'[1] (९५९ ई०) म तत्कालीन वस्त्रा म नेत्र, चीन, चित्रपटी पटाल रल्लिका दुकूल अशुक कौशय का उल्लख है। उस काल की पोशाक म कचुक चोलक चण्डातक पट्टिका निचोल उल्लेखनीय हैं।

ग्यारहवी शता दी के शिलाकित काव्य 'राउरवल म चोली का उल्लख मिलता है। चोली[2] क कई नाम है

कचुआ—रातऊ कचुआ अति सुड्ड चागउ (८)।

कांचू—कांचू रातउ (३४)।

कच्यू—(१७।४)।

य दो रगी भी होती थी—गोरइ अगि वेरगा कच्यू (५१)

चोली[3] के अतिरिक्त घाघरा[4] चादर तथा आढनी का भी उल्लेख मिलता है। पाटणी साडी का विशष उल्लेख है। बहुत महीन मलमल (पारडी) धारीदार कपडा (सेंदूरी) तथा दक्षिण भारत, लका मे महीन मलमल (सलढही) का प्रचलन था। नरपति नाल्ह के वीसलदेव रासो म कुकुम से चर्चित चूनडी[5] का उल्लेख है।

सदेश रासक' म श्वत और स्वच्छ वस्त्र (सिय स्वच्छ) रगीन वस्त्र (रगियइ) चोली (कुप्पास) चल्ल (कटिवस्त्र) णियसण (शिरोवस्त्र) थणवट्ट (स्तनपट्ट) का उल्लेख मिलता है।

ढोला मारू रा दूहा म उल्लेख है कि स्त्रियाँ कटि के नीचे घाघरा (घम्म घम्मतइ घाघेर) पहनती थी। शरीर पर दखनी चीर (प्राणा दखणी चीर) ओढती थी और वक्ष पर काचली (कस कचुकी छोडि) धारण करती थी। पाट वस्त्रों

---

१ Prof Habib—Indian culture & social life at the time of the Turkish Invasions JAHRI 1941 Vol 1 No 2 3 ppl 125

२ डॉ मोकुलचन्द्र जन—प्राचीन भारतीय वस्त्रभषा सस्कृति २४।

३ The first recorded e amples of the choli the bodice or blouse are found to my knowledge in the pre Mughal miniature paintings of Gujrat mostly Jain religious manuscript illuminations Though a few of those may well go back to the 10th Cent A D
Dr Charles L Fabri—A History of indian Dress 1960 pp 6
प्रो नायन ब्राउन ने ११२७ ई म इसका प्रथम प्रमाण मिलना स्वीकार किया है।

४ पहिरण् घाघरि जो केरा (५२)।

५ विउ ण सेंदूरी मोनन्ना कीजइ (८०)।

६ कुकुम घन्न चरचिनू गाव (८५)।

(पट्टोला) और पारदर्शी क्षीन वस्त्र (झीणा कप्पड) का उल्लेख मिलता है। दुलहिन के कपडो म लाल रग के कपडा (चोल बरन कपडे) का प्रचलन था। साधारणत वस्त्रो म चीर (चीर निचोइ निचोइ) का ही प्रचलन था।

वसत विलास म चोली (कचुर), ओढनी तथा चीवर का विवरण मिलता है। पृथ्वीराज रासो म अनक प्रकार के सुन्दर तथा क्षीन वस्त्रो का उल्लेख मिलता है, जिनके तान बान दिखाई दत थ। ताम, कतान तथा पाम वस्त्रो का विशेष प्रचार था। तनसुख विशेष रूप स प्रचलित था। कचुकी और पटोर म स्त्रिया विशेष रूप स दिखाई दती थी। कुसुभी सारी[1] का विशेष प्रचलन था। अबर (चीर म रक्तिका (घुघची) शोभित होती थी। 'कुतुब शतक' म आढनी (ओढण -९७) का उल्लेख मात्र है।

विद्यापति के साहित्य म साडी—सारी[2] का विशेष उल्लेख मिलता है। चीर, नील वसन (नीला वस्त्र) अभिसार म विशेष लाभप्रद होने के कारण इनका अनेक बार उल्लेख है—नील वसन नील पटोर, नील निचोल नीलमनि आदि।

छिताई वार्ता म भी कुसभी चीर (कुसुंभी चीर) तथा श्याम रग की कचुकी (कचुकी सोही इ स्याम) का उल्लेख मिलता है। जब नायिका दक्षिणी चीर[3] पहनती है तो चपा जसा उसका शरीर खिल उठता है और लाल ओढनी[4] से उसका माहिनी रूप बन जाता है।

धोती[5] का उल्लेख लक्ष्मण सन-पद्मावती म मिलता है कनक धावति ताम पटहरी।[6] धोवती के अतिरिक्त चोल, पाट, पटोला निमल चीर, नवरग चीर आदि का विवरण मिलता है।

इस प्रकार अब तक के साहित्य के आधार पर प्रमाणित है कि १५वी शताब्दी

---

१ मध्यकालीन विवेच्य साहित्य में इसका विशेष उल्लेख मिलता है। यह तीन प्रकार का माना गया है (१) महाकुसुम्भ (२) ह्रस्व कुसुम्भ (३) वन कुसुम्भ। यह एक छोटा पौधा कुसुम (कुसुम्भ) है जिसम छोटे छोटे लाल फूल उगते हैं और जिन्हें छाया में साव धानी स सुखाते हैं। इसके फूल से लाल रग बनता है। इससे ही सात प्रकार का रग बनाया जाता था—प्याजी गुलाबी उजला गुलाबी गहरा लाल सुनहरा नारगी (सेंहुड़ के फूल के साथ) पीला चमक लिए गहरा लाल (हल्दी के साथ) बगनी रग (नील के साथ)।

२ पदावली अभिसार का पद स० ११—अहनिस मारी तनसुख सारी।

३ पहिरयौ अगि दक्खन को चीर। चपक दल तन सुबन सरीर॥१८४॥

४ कुस भ सुरग लाल ओढ़नी। बनिता बनी काम मोहिनी॥४ ५॥

५ धोती अर्थात धौत वस्त्र। इस शब्द का अर्थ है—धुला हुआ वस्त्र। धोती नित्य धोई जाने के कारण धौत कहलाती। कुछ विद्वान अधोवस्त्र का रूपान्तर धोती मानते हैं।

६ लक्ष्मणसेन-पदमावती (स० उदयशकर शास्त्री) ८५। अन्य प्रयोगों के लिए वही—पृ ७१ ७२ द्रष्टव्य है।

At the time under review, women used to wear antriya or Sari half tied round the legs and half wound rourd the shoulders An Utriyah or Dopatta was wrapped round it outdoors A skirt (lahanga) was worn at the time of dancing Dhoties had often Ornamental borders'

सोमदव सूरि रचित यशस्तिलक[१] (६५६ ई०) म तत्कालीन वस्त्रो म नेत्र चीन चित्रवटी पटाल, रलिलका दुकूल, अशुक कौशय का उल्लेख है। उस काल की पोशाक म कचुक चोलक चण्डातक पट्टिका निचोल उल्लेखनीय हैं।

ग्यारहवी शताब्दी क शिलाकित काव्य 'राउरवल म चोली का उल्लेख मिलता है। चोली[२] क कई नाम हैं

कचुआ—रातऊ कचुआ अति सुद्ध चागउ (८)।

काचू—काचू रातउ (३४)।

कप्यू—(१०।४)।

ये दो रगी भी होती थी—गोरइ अगि वेरगा क्प्यू (४१)

चोली के अतिरिक्त घाघरा[४] चादर तथा ओढनी[५] का भी उल्लेख मिलता है। पाटणी साडी का विशष उल्लेख है। बहुत महीन मलमल (पारडी) धारीदार कपडा (सेंदूरी) तथा दक्षिण भारत लका मे महीन मलमल (सलहही) का प्रचलन था। नरपति नाल्ह के बीसलदेव रासो म कुकुम से चर्चित चूनडी[६] का उल्लेख है।

सदेश रासक म श्वेत और स्वच्छ वस्त्र (सिय स्वच्छ) रगीन वस्त्र (रगियइ) चोली (कुप्पास) चल्ल (कटिवस्त्र) णियसण (शिरोवस्त्र) थणवट्ठ (स्तनपट्ट) का उल्लेख मिलता है।

ढोला मारू रा दूहा म उल्लेख है कि स्त्रियाँ कटि के नीचे घाघरा (घम्म घम्मतइ घाघर) पहनती थी। शरीर पर दखनी चीर (प्राणा दखणी चीर) ओढती थी और वक्ष पर कावली (कस कचुकी छोडि) धारण करती थी। पाट वस्त्रों

---

१ Prof Habib—Indian culture & social life at the time of the Turkish Invasions JAHRI 1941 Vol 1 No 2 3 ppl 125

२ डॉ गोकुलचन्द जन—प्राचीन भारतीय वस्त्रभषा संस्कृति २४।

३ The first recorded examples of the choli the bodice or blouse are found to my knowledge in the pre Mughal miniature paintings of Gujrat mostly Jain religious manuscript illuminations Though a few of tho e may well go back to the 10th Cent A D
Dr Charles L Fabri—A History of indian Dress 1960 pp 6
प्रो नामन ब्राउन ने ११२७ ई म इसका प्रथम प्रमाण मिलना स्वीकार किया है।

४ पहिरणु घाघरेहिं जो केरा (७२)।

५ विउडण सेंदूरी सोलन्नी वीजा (८)।

६ कुकुम चन्न चरचित गात्र (८५)।

(पट्टोला) और पारदर्शी झीन वस्त्र (झीणा कप्पड) का उल्लेख मिलता है। दुलहिन के कपडों में लाल रंग के कपडा (चोन बरन्न कपडे) का प्रचलन था। साधारणत वस्त्रो में चीर (चीर निचोइ निचोइ) का ही प्रचलन था।

वसंत विलास में चोली (कंचुक), ओढनी तथा चीवर का विवरण मिलता है। पृथ्वीराज रासो में अनेक प्रकार के सुन्दर तथा झीन वस्त्रों का उल्लेख मिलता है जिनके तान वान दिखाई देते थे। ताम, कतान तथा पाम वस्त्रों का विशेष प्रचार था। तनसुख विशेष रूप से प्रचलित था। कंचुकी और पटोर में स्त्रियाँ विशेष रूप से दिखाई देती थी। कुसुंभी सारी[1] का विशेष प्रचलन था। अंबर (चीर) में रक्तिका (घुंघची) शोभित होती थी। 'कुतुब शतक' में आढनी (ओढण-६७) का उल्लेख मात्र है।

विद्यापति के साहित्य में साडी—सारी[2] का विशेष उल्लेख मिलता है। चीर, नील वसन (नीला वस्त्र) अभिसार में विशेष लाभप्रद होने के कारण इनका अनेक बार उल्लेख है—नील वसन नील पटोर नील निचोल, नीलमनि आदि।

छिताई वार्ता में भी कुसंभी चीर (कुसंभी चीर) तथा श्याम रंग की कंचुकी (कंचुकी सोहीं इ स्याम) का उल्लेख मिलता है। जब नायिका दक्षिणी चीर[3] पहनती है तो चंपा जैसा उसका शरीर खिल उठता है और लाल ओढ़नी से उसका मोहिनी रूप बन जाता है।

धोती[4] का उल्लेख 'लक्ष्मण सेन-पद्मावती में मिलता है कनक धावति ताम पइहरी।[5] धोवती के अतिरिक्त चोल, पाट, पटोला, निर्मल चीर नवरंग चीर आदि का विवरण मिलता है।

इस प्रकार अब तक के साहित्य के आधार पर प्रमाणित है कि १५वीं शताब्दी

---

१ मध्यकालीन विविध साहित्य में इसका विशेष उल्लेख मिलता है। यह तीन प्रकार का माना गया है (१) महाकुसुम्भ (२) ह्रस्व कुसुम्भ (३) वन कुसुम्भ। यह एक छोटा पौधा कुसुम (कुसुम्भ) है, जिसमें छोटे-छोटे लाल फूल लगते हैं और जिन्हें छाया में सुखा कर मुखाते हैं। इसके फूल से लाल रंग बनता है। इससे ही सात प्रकार का रंग बनाया जाता था—प्याजी गुलाबी उजला गुलाबी गहरा लाल सुनहरा नारंगी (सेंदुर के फूल के साथ) पीली चमक लिए गहरा लाल (हल्दी के साथ) बैंगनी रंग (नील के साथ)।

२ पदावली, अभिसार का पद सं० ११—अहनिस भारी तनपुर सारी।

३ पहिरयौ अंगि दक्खन कौ चीर। चंपक दल तन मुवन सरीर ॥१८४॥

४ कुम भ सुरंग लाल ओढ़नी। बनिता बनी काम मोहिनी ॥४०५॥

५ धोती अर्थात धौत वस्त्र। इस शब्द का अर्थ है—धोया हुआ वस्त्र। धोया नित्य धोई जाने के कारण धौत कहलाती। कुछ विद्वान अधोवस्त्र का रूपान्तर धोती मानते हैं।

६ लक्ष्मणसेन-पद्मावती (सं उदयशंकर शास्त्री) ८५। अन्य प्रमाणों के लिए देखें

तक साडी (सारी), धोती, चोली (कचुकी) लहगा ओढनी आदि वस्त्रा का पर्याप्त प्रचलन हो चुका था। देशीनाममाला म 'अद्वजधा'[1] नामक वस्त्र का उल्लेख भी मिलता है।

नीले रग का अभिसारिका के लिए महत्त्व है, पर खुसरो ने इस प्रतिदिन के वस्त्रों म स्थान नही दिया है, क्योंकि इसे शोक का प्रतीक माना है। स्त्रियाँ चटकीले रगो के छपे हुए, चमकदार वस्त्रो की शौकीन थी।

साडी (सारी)

यह एक लम्बा कपडा मात्र है जो शरीर के मध्य भाग म लपेट लिया जाता था और ऊपर सिर पर भी पीछे की ओर से डाल लिया जाता था। टवनियर[3] न इसका विशेष विवरण दिया है। इसका एक छोर ही वक्षस्थल पर होता हुआ सिर की ओर जाता है। बाबरनामा[4] म भी इसका विवरण दिया गया है। डेला वेला ने छीटदार वस्त्र का उल्लेख किया है। मनूची[6] ने साडी का स्पष्ट उल्लेख किया है और उसकी तौल को विशष महत्त्व दिया है।

इसम स्पष्ट यह सकेत मिलता है कि साडियाँ रगीन भी होती थी। इसका एक छोर विशेष रूप से अलकृत होता था। १७वी शताब्दी के चित्रो म तो इसका स्पष्ट रूप देखा जा सकता है। साडी का कपडा महीन तथा रगीन हो तो विशेष आकर्षक समझा जाता था। इस प्रकार साडी का प्रचलन बहुत प्राचीन काल स होते हुए भी इसके स्वरूप आकार, रगरूप तथा पहनने क ढग म निरतर परि-

---

१ देशी नाममाला ११३१।

२ इजाज खशरवी—प २७४।

३ The dress of women is simple cloth making five or six turns like *petticoat from waist downward as if they had three or four rounds* above the other Vol II pp 421

४ Sari as cloth one end of which goes round the waist the other is thrown over the head Babur—Vol 1 pp 519
G S Ghure—Indian Costume 1951 pp 142

५ *Spotted Cloth—Chintz*

६ Thin Siricas (Sari) weighing not more than one ounce and worth from forty to fifty rupees each Vol 11 pp 340 341 (A cloth *18 yard long* 38-44 in northern India is called Sari Portuguese Pagne) Pane for o they call this cloth is striped in two calours One half of the said pane *is thrown over the shoulders or the head* when speaking to a person of any portions but when they go to the well or a spring to fetch water and at work in their houses they keep the whole pane bound round their waist and thence upwards and naked
Manucci—Storia do Mogor 1907 Vol III page 40

वतन होता रहा है। डेला के अनुसार, कालीकट की स्त्रिया नीला रग विशेष पसद करती थी। रग का भी मनोवैज्ञानिक प्रभाव पडता है और यह स्थान एव मौसम के अनुरूप अलग अलग होता है। आज सैकडो प्रकार की साडिया भारत मे चलती हैं और यह भारतीय नारियों की पहचान बन चुकी हैं।

अनेक प्रकार क कपडों तथा रगो की साडियो का प्रचलन भारत म सदियों स था। साडी पर बूटों की छपाई का काम भी मध्य युग म आरम्भ हो चुका था। अकबरकालीन चित्रों म यह स्पष्ट दिखाई देता है कि स्त्रिया जो साडियाँ पहनती थीं उनके बॉडर कितने अधिक अलकृत होते थ। य छोर ही 'पल्लव' कहलाते थे, जिसे आज लोकभाषा म पल्लू' कहत हैं। पल्लव' दक्षिण मे एक प्रसिद्ध जाति थी। दक्षिण स ही इस प्रकार की साडी बनने का प्रचलन हुआ जो फिर समस्त भारत म फल गया।

अगिया (अगिका)

चोली (कचुकी) का प्रचलन तो काफी प्राचीन था पर १०वीं शताब्दी की मूर्तिकला स ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय वक्षस्थल पर कोई वस्त्र नहीं पहना जाता था। यह भी सभव है कि मूर्तिकला म नारी के स्वास्थ्य तथा सौंदय के प्रदशन की भावना स ऐसी परम्परा का विकास हो गया हो।

मध्य काल तक चोलीनुमा वस्त्र का व्यवहार अनिवाय हो गया था। डेला वेल ने[१] इसका स्पष्ट उल्लेख किया है। स्टावरिनस[२] तथा ग्रोस ने भी इसका विवरण दिया है। एक प्रकार से यह कसी (फिट) बॉडी ही का प्राचीन रूप था।[३] अगिया का राजस्थान म विशेष प्रचलन था और सधवा और विधवा की अगिया भिन्न भिन्न प्रकार की होती थी। सधवा स्त्रियाँ कुहनी तक आस्तीन वाली

१ And for the most part they use no garment but wear only a close waste-coat (waistcoat) the sleeves of which reach not beyond the middle of the arm the rest where to the hand is covered with bracelets of gold or silver or ivory

Della Valle page 45

२ They support their breasts and press them upwards by a piece of linen which passes under the arms and is made fast on the back. (Stavorinus part I page 115)
P N Chopra—Some aspects of society and culture during the Mughal Age 1963 pp 11
(While going out they would have put on a silk or cotton waist-coat over smocks)

३ All respectable ladies it seems used to wear a jacket or bodice either with long sleeves reaching the fingers or with short ones ending at the elbows clining to the body

G S Ghure—Indian Costume 1951

कचुकी पहनती थी और विधवा स्त्रियाँ लबी आस्तीनों वाली। सूयमल ने एक स्थान पर निर्देश किया है

६८।२२ दरजण लबी 'अंगिया', आणीज अब मूम।
तब टोटे मोनू दया दूण सिवाई तूम॥

(हे दर्जिन! अब मेरे लिए लबी कुरतियाँ लाया करना। मेरे सधवापन की पोशाकें म सीने से जो तुम्हें टोटा (नुकसान) रहेगा उसकी पूर्ति मैं तुझे दूनी सिलाई देकर करूंगी।)

(सूयमल डिंगल म वीर रस)

प्रत्येक सम्मानित महिला अंगिया[1] पहनती थी। यह एक प्रकार की चोली ही थी फिर भी इन दोनों म अ तर किया जा सकता है

अँगिया

इसम प्राय पीठ खुली रहती है। यह वक्षस्थल को ढकने मात्र के लिए तयार की जाती थी और डोरी द्वारा पीछे पीठ पर बांध दी जाती थी। आगे चलकर इसम बाहें भी लगने लगी।

चोली

महाराष्ट्र और गुजरात मे इसका प्रचलन बढा और चोली के साथ 'कटोरी चोली' भी बढी। स्त्री का स्तनाच्छादक वस्त्र ही चोली कहलाया। (कचु= कचुअ—पाइअ-सद्द महण्णवो, पृ० २०६)। १५७० ई० के आसपास बाँहे भी विशेष रूप से अलकृत होने लगी।

ओढनी

देशीनाममाला[2] म यही 'ओड्ढण' है जो किसी अच्छे सूती वस्त्र अथवा सिल्क से बनती थी जिस पर चादी सोने के तारो से काम होता था। डेला वेला[3] ने इसे दोनो ओर घुटन तक लटकता हुआ वर्णित किया है। फाबरी ने तो ओढनी से ही आधुनिक साडी का विकास माना है।

---

१ पिछले पष्ठ पर दी गई पाद टिप्पणी स० ३ द्रष्टव्य है।

२ Desinamamala 1 155

३ Mandelslo—hung down on both sides as low as the knees (made of Calieves) Della Valle pp 401

४ Surprisingly enough the present day Sari which developed about the year 1780 A D did not develop from this older Sari but in the leng thening of that other garment the Dupatta or orhni now tucket in the waistband whist the thing once called sari has turned slowly in to a petticoat worn under this much length and bandkerchief the orhni
—Charles L Fabri—A History of Indian Dress 1960 pp 8

घाघरा

यह मुसलमान स्त्रियो का पहनावा था, जो धनी महिलाओ म अधिक लोक प्रिय था।

लहँगा

एक प्रकार का लम्बा वस्त्र था जो कमर से नीचे पहना जाता था। मध्य काल म इसका विशेष प्रचलन था।

मध्यकाल के प्रसिद्ध सदभ-ग्रथ आईने-अकबरी[1] म वस्त्र धारण सोलह शृगारो म परिगणित है, अतएव कुछ वस्त्रों का उसम विशेष रूप स उल्लेख मिलता है

* अँगिया (अगिका) बाहे कभी कुहनी तक और कभी अगुलिया तक।
* लहँगा नीवीबध के साथ कटि के नीचे पहनन वाला वस्त्र।
* (ओढनी) के लिए (मजर) विवरण दिया गया है कि इसका एक भाग सिर पर जाकर ढका भी जाता था और घूघट भी बनाया जा सकता था।
* पायजाम आजकल के पाजामे का पूव रूप।

मध्यकालीन ग्रथों म इन सभी वस्त्रों का रोचक चित्रात्मक विवरण मिलता है, जिसक प्रकाश म इन वस्त्रो की रूप रचना और अधिक स्पष्ट होती है।

सूफी काव्य धारा के प्रारम्भिक ग्रथ चदायन म उस काल के अनेक वस्त्रो का उल्लेख मिलता है। सिंदूरी रग के चीर का विशेष महत्त्व था

कूरूभ भरद चांद अहवाए। सेंदुरी चीर काढि पहराए ॥[2]

सिंदूरी रग की साडी तथा पाट (सूती वस्त्र) तथा पटार (रेशमी वस्त्र) का विशष महत्त्व था

सुनहु चीर कस पहिर कुवांरी। फुदिया राथ सेंदुरिया सारी।
पहिर मधनवा और कसियारा। चकवा चीर चौकरिया सारा॥
मुंगिया पटल अग चढ़ाई। मडिला छुदरी भर पहिरायी॥
मानों चांद कुसभी राती। एक खड छाप सोह गुजराती॥
दरिया चंदरौटा औ मुखारु। साज पटोरें बहुत सिंगारु॥
चोला चीर पहिर जो चालो जानों जाह उड़ाइ।
देखत रूप विमोहे देवता, चितहुत अछरो आइ॥[3]

---

१ H S Jarutt—Ain I Akbari 1948 pp 341
२ चंदायन छन्द ३२ पृ० १ ६ (सं० परमेश्वरी लाल गुप्त)।
३ चन्दायन छन्द ६४ पृ १३८।

'मगावती' मे केवल 'चीर' का ही महत्त्व दिया गया है

पुनि नहाइ क चीर पहिरावा ॥[1]
कहत बात सब बाहर गई
चीर सँवारि पहिरि लई।[2]
तोर चीर सौं उत्तम चीरु
आनि देउँ तिह आपन लीरु ॥[3]

आम तौर मे प्रमाणित है कि मध्य काल म पोशाक के वस्त्रो को कुसुमी बनाया जाता था और च दन स सुवासित[4] चीर के साथ जेत्तर[5] का उल्लख भी मिलता है—जो सभवत इत्र का पुराना नाम रहा होगा।

पद्मावत म कोरिन भी पटोर का लहँगा पहने है और पटुवनी शरीर पर सु दर रगीन वस्त्र

भ कोरी सँग पहिरि पटोरा।[6]
× × ×
पटुइनि पहिरि सुरँग तन चोला ॥[7]

चन्नी रग का चँदनौटा या चोला और सु दर चीर पद्मावती धारण किए हुए थी। यह चीर —ओढ़नी या उपरना हो सकता है।

चीर चारु औ चन्दन चोला।
हीर हार नग लाग अमोला ॥[8]

जायसी की रचनाओ स प्रमाणित है कि सु दरी रमणियो के मनोहर वक्ष-स्थल को ढकने के लिए कचुकी का प्रयोग होता था

कुच कचुकी सिरीफल उभ ॥[9]

जायसी ने लगभग सभी वस्त्रा का एक स्थान पर भी उल्लेख कर दिया है

---

१ मिरगावती (सपा परमेश्वरी लाल गप्त) छन्द २६१।
२ वही छद ४६।
३ वही छन्द ८७।
४ वही छन्द ७६।
५ वही छद ३५६ तथा ३७६।
६ पद्मावत दोहा १८५।
७ वही दोहा १८५।
८ २९६।
चँदनौटा (चन्दन-पट्ट) के लिए दोहा २९६ ३२७ ३३५ ३५४ भी द्रष्टव्य हैं।
चीर के लिए दोहा स० ३२१ ५८६ भी द्रष्टव्य हैं।
आईने-अकबरी में सोने के काम किये हुए वस्त्र के लिए इसका प्रयोग हुआ है।
९ वही दोहा २९९।

पटुवह चीर आनि सब छोरे। सारी कचुकी लहरि पटोरे॥
फुँदिया और कसनिआ[1] राती। छाएल पडुआए गुजराती॥
चँदनौटा खीरोदक सारी। बाँस पोर झिलमिल की सारी॥
चिक्वा चीर मघौना लोने। मोति लाग औ छापे सोने॥
सुरँग चीर भल सिघलदीपी। कीन्ह छाप जो धन्नि व छीपी॥
पेमचा डोरिआ औरु चौदरी। स्याम सेत पियरी औ हरी॥
सातहुँ रग जो चित्र चितेरी। भरि क डीठि जाहिं नहिं हेरी॥[2]

इसम अनक प्रकार की साडियाँ, छपे वस्त्र रेशमी परिधान, फुदनदार नीवीबध, लाल अँगिया और लहँगो का उल्लेख है। बाँस पोर पिमरि, नेत, डोरिआ छपे वस्त्र उल्लेखनीय हैं। कनक-पत्र भी उल्लेखनीय वस्त्र था।

उत्तरी भारत मे तो लहँगा चोली (अँगिया) का विशेष प्रचलन था। सिर पर डालन के एक लम्बे से रुमाल को रपतिया भी कहा गया है। मधुमालती' मे चीर (१३६, २४८) चोला (२६६), पटोर (५३, ४३८ ३६४) तथा पातिया (३३६) का विवरण मिलता है। पोतिया—पोतो स तयार किया गया वस्त्र होगा।

सत-का यधारा म वस्त्रो का विशप उल्लेख नही, फिर भी महत्त्वपूण वस्त्रा का विवरण इस प्रकार है

धोती सुदर अपरस धोवती चौंके बठो आइ।
देह मलीन सदा रहै ताही क सगि खाइ॥[3]

पाट पटम्बर जँह देखो तँह पाट-पटम्बर ओढन अम्बर चीर।[4]
धरमदास की अरज गोसाईं हस लागवो तीर॥

मध्यकालीन वस्त्रो म चुनरी कचुकी साडी ओढनी, अगिया प्रमुख हैं

*चुनरी चुनरी के तो प्रतीकात्मक प्रयोग—भक्ति और शृगार की मध्यकालीन रचनाओ मे भरे पडे हैं

मोरी चुनरी मे परि गया दाग पिया।
पाँच तत्त की बनी चुनरिया, सोरह सौं बद लागे जिया।[5]

---

१ कसनियाँ को डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल ने बद लगी हुई कसनी माना है इसके अय रूप—कनसिनिआ कनीसिआ कनकसनिआ भी उल्लखनीय हैं।— हुलसे कुच कसनी बद टटे (दोहा २८)।

२ पद्मावत दोहा स ३२९।

३ सत सुधासार भाग १ प ३७४।

पृ० १०६।

४ कबीर (ह प्र० द्विवेदी) पद स० १६५। अय पद स १८७ २२७ २२५ तथा २२६ भी द्रष्टव्य हैं।

५ रज्जब—सत सुधासार भाग १ प० ५२७।

कचुकी हद तजि अपनी कचुकी क्सिकी पहर जाइ ॥[1]
अगिया दुर्लहिन अगिया काहे न धोवाई।
बालेपन की मली अँगिया, विषय दाग परि जाई ॥[2]
ओढनी ओढन अबर चीर (धरमदास)।

सत साहित्य म परोक्ष रूप से, प्रतीकात्मक शली मे ही, विशेष रूप से वस्त्रों का उल्लेख मिलता है।

कृष्ण भक्ति शाखा

वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछाप काव्य म अपन परमाराध्य और आराध्या के सामान्य तथा विशेष दोनो अवसरो के वस्त्रों की चर्चा बडे विस्तार से की गयी है। 'वस्त्र के लिए अष्टछाप काव्य में अबर चीर, पट पटम्बर वस्त्र वसन आदि शब्दो का प्रयोग हुआ है। बिना धुला हुआ कपडा— कोरा कापरा' है।

इस युग म तनसुख[2], ताफ्ता, खासा[5] तथा रेशमी[6] वस्त्रो का प्रचलन था। पाटम्बर[7] (रेशमी वस्त्र) का भी उल्लख अनेक रचनाओ म है। जरीदार वस्त्रों[8] की चर्चा भी मिलता है।

कपडे के रगो म लाल नीले पीले और हरे जैसे चटकीले तथा गहरे रगो को विशेष पसद किया जाता था।

स्त्रिया के वस्त्रा म तीन प्रमुख हैं

१ लहँगा तथा सारी।
२ काचुकी (कचकी) अँगिया अगी और चोली।
३ फरिया, चुनरी या ओढनी।

लहँगा

लहँगा व्रज का विशिष्ट परिधान रहा है। व्रज के साथ उत्तर और पश्चिमी युक्तप्रात राजस्थान मालवा और गुजरात म भी यह प्रचलित था। सबस पहले कुषाण-कालीन मूर्तियो म ग्वालिनें और उसी श्रेणी की स्त्रियाँ इस वस्त्र को

---

१ कबीर (ह प्र० द्विवेदी) पद स १६४।
२ तन तनसुख की सारी। सूर पद स २११६।
३ तनसुख स्वेत सुदेस अग पर बहुत अरगजा भीनी ॥ परमानददास पद स० ७१५।
४ सादी सुरग ताफता सुदर लरे बाँह छबि न्यारी ॥ पद स ७४२।
५ पिछौरा खासा को कटि बाँध परमानददास पद स ५६२।
६ पचरग रेसम लगाउ हीरा मोतिनि मढाउ ॥ सूर पद स ६५६।
७ एकनि कौं भूषन पाटबर—सूर पद स ६४३।
८ सूथन बनी जरकसी—परमानददास पद स ७१५।

पहने मिलती हैं। मथुरा म जमालपुर के पास मिली एक स्त्री मूर्ति शायद ग्वालिन की है। नाभि के जरा नीचे तक उसका शरीर अनावृत है, पर उसके बाद लहँगा शुरू होता है। यह लहँगा वसा भारी भरकम नहीं है जसा आज भी मथुरा के आस-पास बुदेलखड और राजस्थान गुजरात तक पहना जाता है।[1]

बडे घेर का होन के कारण घाघरा—घँघरिया भी कहलाता है। लहँगे को हेमचन्द्र न दशीनाममाला मे 'घग्घर'[2] कहा है, जिसे जाँघा के पहनाव के अथ में लिखा है। लहँगे क चार भाग होते हैं

१ नेफा (नीवी)—नीवी का उल्लेख तो वेदा से लेकर सूरसागर[3] तक मे मिलता है।

२ घेर—घेर भी कई प्रकार के हो सक्त हैं सूर ने तीन पट वाला लहँगा— तिपाइ' लिखा है

दच्छिन चीर 'तिपाइ की लहँगा'।
पहिरि विविध पट मोलनि महँगा।।[4]

मुरली की ध्वनि सुनत ही गोपियाँ सभ्रम की अवस्था म लहँगा कचुकी के स्थान पर पहन लेती है

कचुकी कटि साजि, लहँगा धरति हिरदय माँहि।।[5]

३ गोट।

४ लामन—घेर के नीचे किनारे किनारे एक पट्टी लगी रहती है

लामनि झारति चल गिरारौ।

परमानददास न हरे लाल और पीले लहँगा का उल्लेख किया है

लहँगा पीत हरे और राते सारी श्वेत सुहाई।।[6]

चतुभुजदास न लाल लहँगो का प्रधानता दी है

तरी सीधे तनी अगिया उरजनि पर अस कटि लहँगा लाल।।

सारी

साडी (सारी) की प्राचीन परम्परा और मध्ययुग म उसके परिवर्धित तथा

---

१ डॉ मोतीचन्द्र—प्राचीन भारतीय वेश भूषा पृ० १२५।
२ देशीनाममाला—२।१०७।
३ नीवी ललित गही जदुराई—सूरसागर पद स १३० ।
४ सूरसागर पद स० ३५१६।
५ वही पद स १६१६।
६ परमानन्दसागर पद स ६१६।
७ चतुभजदास पद स० ७६।
सूर ने भी लाल लहँगा' का उल्लेख किया है। (पद स० १६६१)।

विकसित रूप पर प्रकाश डाला जा चुका है। ब्रज का प्रधान वस्त्र लहँगा होते हुए भी साडी का प्रचलन भी वहाँ अवश्य रहा होगा।

उदाहरण के रूप म सूर ने कई प्रकार की 'सारी' का उल्लेख किया है।

पचरग सारी

बनी ब्रज नारि-सोभा भारि।
पगनि जहरि, लाल लहँगा, अग पँचरग सारि ॥[1]

लाल सारी

लाल ढिगनि की सारी आनी ॥[2]

झूमक सारी

झूमक सारी तन गोर हो ॥[3]

कुसुभी सारी

आछी नीकी कुसुभी सारी गोर तन ॥

रेशमी सारी

अग मरगजी पटोरी राजति।

परमानन्द ने भी 'झूमक सारी' का उल्लेख किया है, पर वह छपी हुई है

छापेरी झूमक अग साजे चहुँ दिस लगी किलारी।[5]

झूमक सारी का उल्लेख चतुभुजदास न भी किया है

अँगिया लाल लसति तन सारी झूमक नव जनहार ॥[6]

गोपियों की सुदर पोशाक में 'चूनरी'[7] की सारी भी उल्लेखनीय है।

तन 'तनसुख की सारी' पहिरे ॥[8]

---

१ सूरसागर प० स० १६६१।
२ वही प० स० १३१२।
३ प० स ३४१२।
४ प० स ३४११।
५ परमानन्दसागर प० सं ६१६।
६ चतुर्भुजदास प० सं० ८३।
चतुर्भुजदास के साहित्य में कुसभी सारी (८२) तथा मरगजी सारी (४७) उल्लेखनीय है।
७ वही प० स० ४६।
८ गोविन्दस्वामी प० सं० ११४।

गोविन्दस्वामी ने 'तनसुख' सारी तथा नीली सारी का उल्लेख किया है।

नीली सारी लाल कचुकी, गौर तन माग मोतिन ॥[1]

कुंभनदास ने रगमगी सारी और कुसुभी रग की झूमकी सारी की चर्चा की है।

कचुकी पीत, लाल लहँगा पर बनी रगमगी सारी ॥[2]

लहँगा लाल, झूमको सारी कुसुभी बरन पिय हेत रँगाई ॥[3]

कृष्णदास ने भी झूमक की सारी पचरग (५०) (७६०) कुसुभी सारी (६७, १०४२, १०६६) तथा पचरगी सारी (पद १०५) का उल्लेख किया है।

छीतस्वामी ने लाल सारी चतुर्भुज ने सुरग सारी (लाल) को विशेष महत्व दिया है।

सूर तथा परमानन्ददास ने 'ढिगनि की सारी' का भी उल्लेख किया है

यह तौ लाल ढिगनि की और, है काहू की सारी ॥[4]

ये तो लाल ढिगन की ओढ है काहू की सारी ॥[5]

सारी चूनरी दुपटिया आदि के पल्ले का किनारा 'खूट' कहलाता है

नीलाबर गहि खूट, चूनरी, हँसि हँसि गाँठि जुराई ॥[6]

बयालीस-लीला मे ध्रुवदास ने 'जाकसी सारी' का विवरण दिया है।

इस प्रकार मध्यकाल मे अनेक प्रकार की अनेक रगो की, भिन्न भिन्न छापे बूटो से सुसज्जित साड़ियो का उल्लेख प्राप्त होता है।

फरिया तथा चूनरी

सूर ने 'फरिया' छोटे लँहगे के अर्थ मे प्रयुक्त किया है

नील बसन फरिया कटि पहिरे ॥[7]

एक स्थान पर साड़ी चीरकर नयी फरिया बनाने का उल्लेख भी है

सारी चीरि नई फरिया ले अपने हाथ बनाई ॥[8]

'फरिया' के स्थान पर 'चुनरी' का प्रयोग भी मिलता है।

चुनरी के ही चूनरि चूनरी, चुनरिया आदि कई रूप मिलते है। चुनरी मे

---

१ वही पद स ५२१।
२ कुभनदास पद स ३१६।
३ पद स० ३१६।
४ सूरसागर पद स० १३११।
५ परमानन्ददास पद स ६६६।
६ सूरसागर पद स ३४०७।
७ पद स १२६०।
८ पद स० १३२२।

लाल, नील पीले, हरे जसे गहरे चटकीले रग विशेष पसन्द किए जाते हैं।

आजु तेरी चूनरी अधिक बनी।
बारबार सराहत राधा परम गुनी ॥[१]
नीलाबर गहि खूट, चूनरी ।[२]

चतुर्भुज न सुरख चुनरिया का उल्लेख किया है

सुरग चूनरी ॥[३]

न ददास ने पीली चूनरी का उल्लेख किया है

चूनरी सुपीत साज ॥

कुभनदास ने तो पूरा एक पद ही सुदर चुनरी पर लिखा है

आजु तेरी चूनरी अधिक बनी।
बार बार जु सराहत मोहन राधा जू परम गुनी ॥[५]

सूर साहित्य मे गोपियो के वस्त्रों म उल्लखनीय हैं

नीलाबर, पाटबर, सारी, सेत-पीत चुनरी, अरुनाए ॥[६]

'लाल चूनरी कविवर कृष्णदास को भी प्रिय है। सुदर पोशाक की वर्ण-योजना विशेष द्रष्टव्य है

पीत लहँगा, लाल चूनरि, स्याम कचुकि ॥

ओढनी

ओढनी का उल्लेख भी सूर के पदो म अनेक जगह है

पीत उढनियाँ कहाँ बिसारी ॥[८]
पीत उढ़नियाँ जो मेरी ल गई, ल आनो घरि ताकौं ॥[९]

ओढनी का उल्लेख कृष्णदास न भी किया है

---

१ परमानन्दसागर पद स० ३७६।
अन्य प्रयोगों के लिए द्रष्टव्य है— सुरग चूनरी पद स ३६८।
तथा पचरग चूनरी पद स २४६।
२ सूरसागर पद स ३४६७।
३ अष्टछाप सग्रह पद स ६२ तथा सुरख चुनरिया भिजाई पद सं० २५ भी द्रष्टव्य है।
४ नन्ददास पद स० १६१।
५ कुभनदास पद स ३१७। सुरग चूनरी के लिए पद स० १ १ १ ३ १ ४ द्रष्टव्य हैं।
६ सूरसागर पद सं १४ २।
७ कृष्णदास पद सं १ ४३।
८ सूरसागर पद स १३११—यहाँ पीताम्बर के लिए प्रयुक्त है।
९ वही पद स० १३१२।

ओढनी पचरग साजु ॥[1]

तथा

एक ओढ़नी ओढ़ हसगति मन्मथ मोह बढ़ाव ॥[2]

ओढनी का ही दूसरा रूप दुपट्टा है।

स्त्रियो के ओढने के वस्त्रों म 'उपरैना' का उल्लेख भी कई पदो म हुआ है। पर यह माया के वस्त्रों म प्रथम बार आया है।

पहिरे राती चूनरी, सेत उपारना सोहै ॥[3]

यहाँ विचारणीय है कि 'चूनरी' तथा उपारना दोनो एक साथ आये हैं।

यह 'उपरना' (उपारना) गोपियो का वस्त्र भी था, जिसे चुराकर श्रीकृष्ण ने कदम्ब की डालो म लटका दिया था

लियो उपरना छीनि दूरि डारन अटकायो।

इस काल की भक्ति भरी रचनाओ मे सर्वाधिक विवरण कचुकी का मिलता है। कचुकी के लिए अँगिया आगी चोली आदि शब्द भी प्रचलित रहे हैं। सूरदास न अनेक प्रकार की अँगियों का उल्लेख भी किया है

कटाव की अँगिया

सुभग हुमेल कटाव को, 'अँगिया' नगनि जरित की चौकी ॥[4]

अनेक नगो से जडी अँगिया

बहु नग जरे जराऊ अँगिया ॥[5]

कचुकी

कोउ पहिरति कचुकी सरीर ॥[6]

पीत पट डारि, कचुकी मोचित करन ॥[7]

कचुकि झीनि-झीनि पट सारी, चदन सरस सछद ॥[8]

टूटि गई तन चोली दरकि तरकि गई ॥[9]

---

१ कृष्णदास प० स ४८। पचरग ओढ़नी के लिए पद ५ भी द्रष्टव्य है।
२ वही पद स ५५।
३ सूरसागर प० स० ४४।
४ वही पद स० २१५८।
५ पद स० २०१३।
६ प० सं० ६४३ प० स ६४२ भी।
७ प० स० २३४७।
८ सूरसागर, प० सं ४४३३।
९ „ पद सं० १६५२ (डोरीदार चोली होती थी) प० स० ६४६।

सूरदास ने नील अँगिया के साथ उसके आगे के तिकोने साजे भाडनी का लाल होना भी कहा है।

परमानन्ददास ने नवरग की कचुकी (शरीर पर कसी हुई) का विशेष चित्रात्मक वर्णन किया है

नवरग कचुकी तन गाढी।
नवरग सुरग चूनरी ओढे चद्रबधू सी ठाढी॥[1]

कटाव की चोली

पहिर कुसुभी कटाव की चोली।[2]
तथा
सोहत चोली चारु तनी॥[3]
कचुकी कीर बिबिध रँग रगति॥
तथा
कचुकी कनक कपिस सब पहरें तहाँ उरजन की झाँई॥[4]

गोविन्दस्वामी ने राधा की खुली कचुकी[5] को मांडनि पीली कहा है। गोरे शरीर पर लाल कचुकी सुन्दर लगती है। कसीदा[6] काढी हुई सुन्दर कचुकी का उल्लेख भी मिलता है।

कचुकी सोभित कसीदा सुदर॥[7]

कुमनदास ने पीली कचुकी[8] कसी कचुकी[11] का उल्लेख किया है। छीत स्वामी ने फूल की कचुकी[12] का विवरण दिया है।

फूल सारी कचुकी बनी फूल की॥

चतुभुजदास ने लाल अँगिया और कचुकी (७५) का भी विवरण दिया है

---

१ परमानन्दसागर पद स० ३६८।
२ पद स ३६६।
३ प० स० ३७६।
४ प स ४६।
५ प० स० ६१६।
६ गोविन्दस्वामी पद स १३५।
७ वही पद स० ११५ ५२१। श्याम कचुकी के लिए द्रष्टव्य—पद सं ६५।
८ वही पद स ४२
६ कुभनदास पद स० ३१६।
१ वही पद स १४।
११ छीतस्वामी पद स० ६०।
१२ चतुर्भुजदास—अष्टछाप परिचय पद सं० ८७।

अंगिया लाल सेति तन सारी ॥

कृष्णदास ने कुसुममय तथा मगमद स सुरभित कचुकी का विशेष उल्लेख किया है

उरज मृगमद चित्र कचुकी कुसुममय ॥

एक पद म बिना कचुकी के सौंदय का भी उल्लख कर दिया है

बिना कचुकी सहज सुहाता रसिक गोपालहिं भाव ॥[1]

इसके अतिरिक्त कुसुभी कचुकी[2], तनसुख की चोली[3], चटकीली चोली[4], स्याम कचुकी[5], सौंधे कचुकी[6] का विशष उल्लेख मिलता है।

सूरदास ने अँगिया से जुडी नाभि तक लटककर पेट को ढकने वाली पट्टी का भी उल्लेख किया है जो अतरौटा[7] कहलाती है। सूर ने चोर पटम्बर (पाटम्बर) की भी चर्चा की है।[8]

चोली पर डा० बनारसी प्रसाद सक्सेना[9] का विवरण यहाँ उल्लेखनीय है

विविध रग और वस्त्र की चादर स सिर ढका रहता था— पूरी आस्तीन की चुस्त जकेट—जिसके कफ कधे और किनारा पर सुनहला काम रहता था—यह जकेट फूलदार या बूटेदार कपडे का आता था। इसके नीचे स्त्रियाँ चोलियाँ भी पहनती थी। समकालीन चित्रों द्वारा हम उस काल म पहनी जान वाली चोलियो की विभिन्नता का पता चलता है। य चोलिया प्राय वसी ही होती थी, जसी अजन्ता के भित्ति चित्रा म चित्रित मिली हैं। यह उन पुरानी चोलियो से अधिक मूल्यवान् होती थी, क्याकि अधिक मूल्यवान् कपडा की बनती थी। गम मौसम मे जकेट और बडियाँ बिल्कुल नही पहनी जाती थी, केवल चोलिया ही पहनी जाती थी। शरीर के ऊपर का भाग केवल बारीक दुपटटे से ढक लिया जाता था।

कृष्णभक्ति धारा के अन्य कवियो मे हरिदास[1] न नारी वस्त्रों मे नील

---

१ कृष्णदास पद स ५५।
२ पद स ७६ ।
३ पद स० ५०।
४ पद स ५६।
५ पद स १०४२।
६ पद स १०४०।
७ सूरसागर पद स ४४।
८ वही पद स० ४७८६।
९ डा बनारसी प्रसाद सक्सेना मुग़लकालीन पहनावा हिन्दुस्तानी १९४८ प० १ ७-१३३।

१ हरिदास—केलिमाल।

निचोल, सुखसारी, लाही अँगिया, अतलस, अतरौता, सिलसिला लहगा, सार की ओढ़नी झूमक सारी, मरगजी सारी तथा चूनरी का उल्लेख किया है।

हरिराम व्यास[1] ने नील कचुकी, लाल तरौटा तथा सनसुख की झूमक सारी का विविधवर्णी चित्र उपस्थित किया है।

हठीजी ने जरीदार किनारी की श्वेत सारी का विवरण दिया है

झीनी सेत सारी जरी मोतिन किनारीदार ।।पद १८

हितहरिवंश ने लाल रग की कचुकी और विविध रगों की सारी का नामोल्लेख किया है

कचुकी सुरग विविध रग सारी, नख जुग ऊन बने तेरे तन ।।[2]

रामराय न अतलास की कचुकी और लहरिया का लहँगा नामक वस्त्रों का सवथा नवीन विवरण दिया है

अतलस की कचुकी उरोजन, लहँगा लहरिया ललित किनारी ।।[3]

सूरदास मदनमोहन तो फूलों के ही समस्त वस्त्रो का उल्लेख करत हैं

फूलन की चोली सारी फूलन के हार डारी ।।[4]

राम भक्ति शाखा म शृगार प्रसाधन तथा वेशभूषा का अधिक उल्लेख नही है, फिर भी चूनरी तथा कुसुभी रग की साडी तुलसीदास को भी प्रिय है। सकेत से वे उल्लेख कर देते हैं

पहिरें बरन-बरन बर चीरा। सकल विभूषन सजें सरीरा ।।[5]

राम काव्य धारा के दूसरे कवि केशव ने अवश्य विस्तार स वस्त्राभूषणों का उल्लेख किया है। केशव न नील निचोल, कचुकी अगिया का विशेष विवरण दिया है

बरन-बरन अगिया उर धरे। मदन मनोहर के मन हरे ।।[6]

केशव ने षोडश शृगार वणन मे अमल बास को तीसरा स्थान दिया है

प्रथम सकल सुचि मजन अमल बास ।।

रीतिकाल में साडी और ओढ़नी का उतना व्यापक उल्लेख नहीं हुआ, जितना कचुकी का। साडी का वणन तो नायिका की वशभूषा म किया ही गया

---

१ व्यासजी पद ३६८।

२ राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धात और साहित्य प ३२५।

३ चतन्य मत और ब्रज साहित्य प० १४७।

४ सूरदास मदनमोहन (स० प्रभदयाल मीतल) प १ ५।

५ रामचरितमानस गुटका प २ ७।

६ केशव ग्रथावली भाग २ प ३८५।३६।

७ केशव ग्रथावली भाग १ प १४।४ ।

रीति कवि वृन्द ने भी वस्त्रों को सोलह शृगार में स्थान दिया है।

है। स्वास्थ्य और सौंदय झलकाने की दष्टि से, महीन साड़ी का महाकवि देव ने विशेष उल्लेख किया है

उज्ज्वल उज्यारी सी अलमलाति झीन सारी।—देव

भारतीय सभ्यता और सस्कृति के बदलते रग के अनुरूप, रगीन साडियो का प्रचलन मध्यकाल मे काफी बढ़ा। पद्माकर ने अनुकूल तथा विरोधी दोनो प्रकार के रगा की साडियों का वणन किया है—जिससे प्रमाणित है कि तत्कालीन जन जीवन म सादन मलमल बारीक रेशम, डोरिया, लहरिया आदि साडियो का विशेष प्रचलन था। पँचतोरिया का उल्लेख तो जायसी ने भी किया है। फाग के हेतु प्राय लोग झीनी श्वेत साडी पहनते हैं। चुनरी तथा ओढनी का भी चित्रात्मक वणन अनक मध्यकालीन कवियों न किया है।

माथे पर बिन्दी

आज भारत के प्रत्येक क्षेत्र म मस्तक पर बिन्दी लगाना 'सुहाग का चिह्न' स्वीकार किया जाता है, जिसे लगाकर भारतीय नारी गौरवान्वित होती है। विवाहिता के माथे पर बिन्दी लगने पर ही वह 'सुहागिन' अथवा 'सौभाग्यवती' कहलाने की अधिकारिणी होती है। नारी के भाल पर लगी बिन्दी ही उसके अखड सौभाग्य का सूचक (शुभ चिह्न) है।

'बिन्दी का पूर्व रूप 'तिलक'[1] था, बस अब फिर बिन्दी की आकृति तिलक जसी भी हो गयी है। 'तिलक या टीका'—मस्तक का आभूषण भी परपरागत चला आ रहा है। यह 'अगराग' के अन्तगत भी परिगणित होता है। माथे पर तिलक मुख्यत शोभा तथा मगलकाय म लगाया जाता है। प्राचीन भारत के जन समाज म भी माथे पर बिन्दी लगाने के लिए 'तिलक करणी'[2] का उल्लेख मिलता है। महाभारत म भौंहो के बीच म कत्रिम चिह्न—पिप्लु लगाने का भी उल्लेख मिलता है।[3] दमयन्ती के माथे पर यह चिह्न जन्मगत था। उस चिह्न का सौंदय वद्धक अलकार की तरह माना जाता है। पिप्लु के साथ तिलक का भी उल्लेख मिलता है माता पृथनी ने अपनी दो अगुलियो से हल्दी और मन शिला का तिलक मुख पर लगा दिया।'[4]

'कामसूत्र' मे वशीकरण के रूप में भी तिलक वर्णित है। गोरोचन के तिलक

---

१ चन्दन केसर आदि से तिलक बनाया जाता था जो समवत तिल के फूल की आकृति का होने के कारण तिलक कहलाया।

२ डा जगदीशचन्द्र जन—जन आगम-साहित्य में भारतीय समाज सन १९६५ प० १५४।

३ सुखमय भट्टाचाय—महाभारतकालीन समाज १९६६ ई।

४ तमालपत्र तिलकचित्रकाणि विशेषकम् ॥अमरकोष॥

५ डा० वनमाला भुवालकर—महाभारत में नारी म० २ २१ पृष्ठ ३४७।

निचोल, सुखसारी लाही अँगिया, अतलस, अतरौटा, सिलसिला लहँगा, सार की ओढ़नी, झूमक सारी मरगजी सारी तथा चूनरी का उल्लेख किया है।

हरिराम व्यास[1] ने नील कचुकी, लाल तरौटा तथा तनसुख की झूमक सारी का विविधवर्णी चित्र उपस्थित किया है।

हठीजी ने जरीदार किनारी की श्वेत सारी का विवरण दिया है

झीनी सेत सारी जरी मोतिन किनारीदार ॥पद १८

हितहरिवंश ने लाल रग की कचुकी और विविध रगो की सारी का नामोल्लेख किया है

कचुकी सुरग विविध रग सारी, नख जुग ऊन बने तेरे तन ॥[2]

रामराय ने अतलास की कचुकी और लहरिया का लहँगा नामक वस्त्रों का सवथा नवीन विवरण दिया है

अतलस की कचुकी उरोजन, लहँगा लहरिया ललित किनारी ॥[3]

सूरदास मदनमोहन तो फूलो के ही समस्त वस्त्रो का उल्लेख करते हैं

फूलन की चोली सारी फूलन के हार डारी ॥[4]

राम भक्ति शाखा म शृगार प्रसाधन तथा वशभूषा का अधिक उल्लेख नही है, फिर भी चूनरी तथा कुसुभी रग की साडी तुलसीदास को भी प्रिय है। सकेत स वे उल्लेख कर देते हैं

पहिरें बरन-बरन बर चीरा। सकल विभूषन सजें सरीरा ॥[5]

राम काव्य धारा के दूसरे कवि केशव ने अवश्य विस्तार से वस्त्राभूषणो का उल्लेख किया है। केशव ने नील निचोल कचुकी अगिया का विशष विवरण दिया है

बरन बरन अगिया उर धरे। मदन मनोहर के मन हरे ॥[6]

केशव ने षोडश शृ गार वणन म अमल बास को तीसरा स्थान दिया है

प्रथम सकल सुचि मजन अमल बास ॥

रीतिकाल म साडी और ओढनी का उतना व्यापक उल्लेख नही हुआ, जितना कचुकी का। साडी का वणन तो नायिका की वेशभूषा मे किया ही गया

---

१ व्यासजी पद ३६८।
२ राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धात और साहित्य पृ० ३२५।
३ चतन्य मत और ब्रज साहित्य पृ १४७।
४ सूरदास मदनमोहन (स प्रभुदयाल मीतल) पृ १ ५।
५ रामचरितमानस गटका पृ २ ७।
६ केशव ग्रथावली भाग २ पृ ३८५।३६।
७ केशव ग्रथावली भाग १ पृ १४।४३।
रीति कवि वृन्द ने भी वस्त्रो को सोलह शृगार में स्थान दिया है।

है। स्वास्थ्य और सौंदय झलकाने की दृष्टि से, महीन साड़ी का महाकवि देव ने विशेष उल्लेख किया है

उज्ज्वल उज्यारी सी अलमलाति झीन सारी।—देव

भारतीय सभ्यता और संस्कृति के बदलते रंग के अनुरूप रंगीन साड़िया का प्रचलन मध्यकाल म काफी बढ़ा। पद्माकर ने अनुकूल तथा विरोधी दोनों प्रकार के रंगों की साड़ियों का वणन किया है—जिससे प्रमाणित है कि तत्कालीन जन जीवन म साटन, मलमल, बारीक रेशम, डोरिया, लहरिया आदि साड़िया का विशेष प्रचलन था। पँचतोरिया का उल्लेख तो जायसी ने भी किया है। फाग के हेतु प्राय लोग झीनी श्वेत साड़ी पहनते हैं। चुनरी तथा ओढ़नी का भी चित्रात्मक वणन अनेक मध्यकालीन कवियों ने किया है।

माथे पर बिंदी

आज भारत के प्रत्येक क्षेत्र म मस्तक पर बिन्दी लगाना 'सुहाग का चिह्न' स्वीकार किया जाता है जिसे लगाकर भारतीय नारी गौरवान्वित होती है। विवाहिता के माथे पर बिंदी लगने पर ही वह 'सुहागिन' अथवा 'सौभाग्यवती' कहलाने की अधिकारिणी होती है। नारी के भाल पर लगी बिन्दी ही उसके अखड सौभाग्य का सूचक (शुभ चिह्न) है।

'बिन्दी' का पूव रूप 'तिलक' था, वैसे अब फिर बिन्दी की आकृति तिलक जसी भी हो गयी है।[1] तिलक या 'टीका'—मस्तक का आभूषण भी परपरागत चला आ रहा है। यह 'अगराग' के अन्तगत भी परिगणित होता है। माथे पर तिलक मुख्यत शोभा तथा मगलकार्य म लगाया जाता है। प्राचीन भारत के जैन समाज म भी माथे पर बिन्दी लगाने के लिए 'तिलक करणी'[2] का उल्लेख मिलता है। महाभारत म भौंहों के बीच म कृत्रिम चिह्न—पिप्लु लगाने का भी उल्लेख मिलता है।[3] दमयन्ती के माथे पर यह चिह्न जन्मगत था। उस चिह्न को सौंदय-वद्धक अलकार की तरह माना जाता है। पिप्लु के साथ तिलक का भी उल्लेख मिलता है, माता द्रुपदी' ने अपनी दो अगुलियों से हल्दी और मन शिला का तिलक[4] मुख पर लगा दिया।[5]

'कामसूत्र' में वशीकरण के रूप मे भी तिलक वर्णित है। गोरोचन के तिलक

---

१ चन्दन केसर आदि से तिलक बनाया जाता था जो सभवत तिल के फूल की आकृति का होने के कारण तिलक कहलाया।

२ डा जगदीशचन्द्र जैन—जैन आगम-साहित्य में भारतीय समाज सन् १९६५ पृ० १५४।

३ सुखमय भट्टाचार्य—महाभारतकालीन समाज १९६६ ई।

४ तमालपत्र तिलकचित्रकाणि विशेषकम् ॥अमरकोष॥

५ डा वनमाला भुवालकर—महाभारत म नारी मं २ २१ पृ० ३४७।

मागल्यसूचक तथा वशीकरण के रूप म स्वीकार किया गया है। गोराचन क अतिरिक्त हरताल तथा मनसिल के तिलक का उल्लेख मिलता है। 'कुमारसभव' म विवाह के अवसर पर पावती के भाल पर गीली हरताल तथा मनमिल से तिलक किया गया था

अथाङ्गुलिम्या हरितालमाद्र माङ्गल्यमादाय मन शिला च।[1]

गोरोचन के तिलक का उल्लेख कादम्बरी' तथा हपचरित —तथा मनसिल और हरताल के तिलक का उल्लेख कुमारमभव' के अतिरिक्त नपध' म भी किया गया है।

तिलक प्राय 'तिल के फल की आकति का ही बनाया जाता था। कालिदास ने मालविकाग्निमित्रम म स्पष्ट किया है कि काले भौरा से लिपटे हुए तिल के फूल ने स्त्रियो के माथे पर के तिलक को नीचा दिखा दिया है

आमान्ता तिलकक्रिया च तिलकलग्नद्विरेफाज्जन ॥[2]

इस नाटक म ही एक अन्य स्थान पर 'भ्रूभग' स तिलक की बिगडी आकति का उल्लेख मिलता है (भ्रूभगभिन्नतिलक)।

अभ्रक श्वत सरसा तथा भस्म से तिलक लगाने के विवरण भी प्राप्त होते हैं। कादम्बरी म चन्दन से भी तिलक लगाने का उल्लेख मिलता है। तिलक नारी सौदय की शोभा वद्धि करता है, परन्तु जो नारियाँ सहज सुन्दर हैं उन्हे तिलक की आवश्यकता भी नहीं। तिलक शृगार का एक अग था, जो स्नान म धुल जाता था अतएव स्नान के बाद पुन लगाया जाता था। यह १०वी शताब्दी स पूव ही गोलाकार आकति का हो चुका था। माघ ने अजन-काजल और श्यामल गोलाकार तिलक[3] का उल्लेख किया है।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल[4] ने छठी शताब्दी म इसके प्रयोग का उल्लेख करते हुए लिखा है— माथे पर एक बडी टिकुली थी, जो देखन म पद्मातपत्र के छायामडल-सी जान पडती है। मथुरा-कला म इस प्रकार की माथे पर गोल टिकुला से युक्त लगभग छठी शताब्दी का स्त्री मस्तक मिला है।

तिलक या बिन्दी कदाचित स्त्रियाँ लाल रग की किसी वस्तु से लगाती थी, पर तु उसके आसपास अजन से भी छोटी छोटी बिंदियाँ लगाती होगी। आग चलकर मध्यकाल म कृष्ण-काव्य धारा म इसका विस्तत विवरण मिलता है। पत्रभग के रूप म भी तिलक लगाये जाते थे। कपूरमजरी मे चन्दन स लगी

१ कुमारसभव-७।२३॥
२ मालविकाग्निमित्रम् ।३।५॥
३ स्निग्धाञ्जनश्यामरुचि सुवृत्तो ॥
४ डा वासुदेवशरण अग्रवाल—हर्षचरित का सास्कृतिक अध्ययन पृष्ठ ६१।

टिविक्द' का विवरण मिलता है।

'राउलवल'[1] म ललाट पर तिलक, 'सन्देशरासक'[2] म उन्नत ललाट पर तिलक, ढाला मारू रा दूहा'[3] म मगमद का तिलक पृथ्वीराज रासो'[4] म 'आड तथा विद्यापति'[5] म मगमद के तिलक का विवरण मिलता है।

'चन्दायन'[6] म तिलक का विधिवत वणन मिलता है। 'पद्मावत'[7] म सोलह शृंगार क अन्तगत तिलक लगान का उल्लेख जगह-जगह है।

मगमद तिलक चलता था पर जायसी न ललाट पर सवारकर तिलक लगाने का उल्लेख किया है

पुनि लिलाट रचि तिलक सँवारा।

'मधुमालती म मगमद क तिलक का विवरण है

म्रिगमद तिलक चतुरसम अगा॥[8]

नानद्वीप म ललाट पर 'आड का अकन किया गया है

आड लिलार टाड भुज माँहा।

जहाँ पर टीको या टीके का ललाट पर उल्लख मिलता है, वह माग से आकर ललाट पर लटकता हुआ आभूषण भी हो सकता है।

कृष्ण काव्य धारा के सभी कवियो न ललाट पर बिन्दी का चित्रमय वणन किया है। निम्बार्क-सम्प्रदाय के प्राचीन ग्रथ महावाणी' म ललाट पर 'आड' का उल्लेख मिलता है।

अष्टछाप क कवियो ने नारियो को सेंदुर या वदन (रोरी रोली), चन्दन आदि की बिन्दियाँ और मगमद, केसर आदि का तिलक या टीका लगाते हुए वर्णित किया है।

बिन्दी'[9] या वेंदी—चादी और सोने की भी बनती थी, जिसके धारण करने

---

१ निडालि टीके ते हरे किए (६४)।

२ अन्नह भालु तुरविक विलक आल कियउ (२ ४८)।
तथा
तिन भालयलि तुरविन दिलविकव (३ १६८)।

३ मगनयनी मगवनी मखी मगमद तिलक निलाट (७३)।

४ ललाट आड नग य (४ १४ ३३)।

५ मान पद स १ अय पदा क निए सखी सभापण पद स० ५ द्रष्टव्य है।

६ चन्दायन पष्ठ २४१।

७ पदमावत दोहा २६६।

८ मधमालती दोहा ५२।

९ नूर महम्मद न प्रकाश नाममाला में बेंदी के अनेक नाम दिये हैं
शिपान्दि सु भ्रधष्टक। बेंदा। ललामक पुर निरत।
प्रालब मजुलव पुनि कवहू होइ न विरत॥५७८॥

से गोर भाल की शोभा बढ जाती थी। सूरसागर म बिन्दी क अनेक रूप चित्रित किए गए हैं

गोरे ललाट पर सिन्दूर की लाल बिन्दी

गोरे ललाट सोहै सेंदूर को बिंद।
ससिहि उपमा देइ को कवि को है निंद।[1]

बदन (रोली) के टीके पर तो कृष्ण भी रीझे

बदन बिंदु निरखि हरि रीझे ससि पर बाल बिभास।[2]

भाल पर तिलक का उल्लेख

श्री सीसफूल अमोल तरिवन, तिलक सुदर भाल।[3]

सिन्दूर की बिन्दी के साथ तिलक भी

गोर भाल बिंदु सेंदर पर टीका धरयौ जराउ।[4]

जराउ (जडाऊ) टीका

मोतिनि माल जराइ को टीकौ।[5]

रोली की बिन्दी और जडाऊ बिन्दी दोनो एक साथ

बदन बिंद जराइ की बेंदी, तापर बन सुधारत।[6]

केसर के तिलक के बीच मे सिन्दूर की बिन्दी

अवली अलक, तिलक केसरि को ता बिच सेंदुर बिंदु बनायौ।

केसर लाल चन्दन जावक अगरु कस्तूरी कपूर चन्दन सिंदूर से बिन्दी लगाने की प्रथा थी।

१ सूरसागर पद स १६६४।
२ वही पद सं १६७१।
३ वही पद स ३४८६।
४ वही पद स० २११६।
५ वही पद स २१५८।
६ वही पद स० ३२४६।
७ सूरसागार पद सं० ३२२६।

लाल बिन्दी के बीच मे मृगमद का उपयोग

भाल लाल सिंदूर बिंदु पर, मृगमद दियौ सुधारि ।[1]

मृगमद का तिलक

ससिमुख तिलक दियौ मृगमद कौ ।[2]

श्री' या 'सिरी' भी माथे की टिकुली या बेंदी नामक आभूषण माना गया है ।[3] चाँद के समान गोल बिंदुली' या बेंदी नामक आभूषण का चित्रमय वणन मिलता है

भल बेंदी बिंदु इंदु लाज ।[4]

कुमकुम के आड का उल्लेख

कुमकुम-आड स्रवत स्रम-जल मिलि,
मधु पीवत छबि छीट चली री ।[5]

बिन्दी के चारो ओर लाल चूनी

ताटक तिलक सुदेस झलकत खचित चूनी लाल ।[6]

पद्मावत म जायसी ने भी गोल बिन्दी लगाकर चारो ओर चुनी चिपकाने की ओर सकेत किया है और कृत्तिका नक्षत्र म कचपची से इसकी उपमा दी है

तिलक सवारि जो चूनी रची ।
दुइज माह जानहुँ कचपची ॥

अजन रेखा के साथ बिंदी की लाल छवि

बेनी माग, भाल बेंदी छबि, ननन अजन रेख (रग) ।[8]

---

१ वही पद स० २७३६ ।
२ वही पद स १६७३ ।
३ सिरी जो रतन माँग बैसारा ।
जानहु गगन टूटि निसि तारा ॥
४ सूरसागर, पद स० १६६ ।
५ वही पद स २३२१ ।
६ वही पद स ३४६० ।
७ जायसी—पद्मावत दोहा ४७२ ।
इसी प्रकार की रचना जायसी के समकालीन जन चित्रकला के स्त्री चित्रो में है । डा० मोतीचन्द्र—जन मिनियेचर पटिंग्ज अव् वस्टन इडिया चित्र स ८५ ।
(डा वासुदेवशरण अग्रवाल—पदमावत का सजीवनी भाष्य दोहा ४७२ पर आधारित)
८ सूरसागर पद स० २७३१ ।
साहित्य लहरी के पद स० १०२ तथा १०५ भी द्रष्टव्य हैं ।
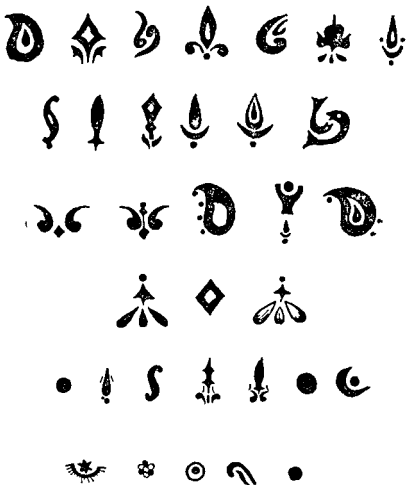
मध्यकालीन तथा आधुनिक विभिन्न प्रकार की बिंदियाँ।

अष्टछाप के दूसरे कवि कृष्णदास का चित्रमय वर्णन

गिरिधरन बस किए बेंदी।
सुनि राधे, तेरे माथे प सोभित अदभुत बेंदी।
वदन चंद्र-मंडल मंडित मुगताफल मंडित बेंदी।
स्याम-सुधा रस सरस रसो, नवरंग रंगमगी बेंदी।
हीरक मानिक बिबिध रतन मनि कनक-खचित बरबेंदी।
निरुपम उपमा को नाहिन कछु शृंगार सरवसु बेंदी।

बसीकरन औषधी मन्त्रजित भावमयी नव बेंदी ।
कृष्णदास' प्रभु रसिकराइ-मन हरयौ मनोहर बेंदी ।[1]

अर्धचन्द्र तिलक के मध्य बिंदी

अरध चद्र तिलक श्री राध क कुकम कौ
ता मॅह मगमद रस बिंदु ।[2]

परमानन्ददास न स्पष्ट किया है कि कृष्ण के माथे पर मृगमद का तिलक था और रोरी की मदु बिंदी राधा के ललाट पर सुशोभित थी

मगमद तिलक एक के माथे एक माथे सोहै मदु रोरी ।[3]

एक अन्य स्थल पर

मृगमद तिलक भाल पर राजित ता बिच बिंदुला एक ।
मनौ जपा को कुसुम पात पर कहिये कहा विवेक ॥[4]

राधा के तिलक सॅवारने का हृदयस्पर्शी चित्र

राधे बठी तिलक सॅवारति ।
मगनयनी कुसुमायुध के उर सुभग नदसुत रूप विचारति ॥[5]

चतुभुजदास ने भी मगमद के आड का उल्लेख किया है

मृगमद आड बेंडेरी अॅखियन आजिए अॅजन पूरि ।[6]

नन्ददास न जडाऊ बिंदी का उल्लेख किया है

सोहत बेंदी जराय की ऐसी भाल मागमनि प्रगटी जसी ।[7]

गोविन्दस्वामी न 'मसि बिंदुका' का उल्लेख किया है। कुभनदास ने भी काजल के तिलक को ही शुभ माना है। सभवत काजल का तिलक डिठौने का काम भी करता था

काजर तिलक दियो नीकी विधि, रुचि-रुचि माग सॅवारी ।[8]

अनेक मागलिक अवसरों पर गोरोचन का तिलक लगाने की प्रथा भी थी

गोरोचन दूध-दधि माये रोरी अच्छत लाय ।[9]

---

१ कृष्णदास पदावली पद स ७६ पृष्ठ २७-२८।
२ वही पद स० ७३७।
३ परमानन्दसागर पद स० २४६।
४ वही पद स ५६५।
५ वही पद स० ३७१।
६ अष्टछाप परिचय—स प्रभुदयाल मित्तल चतुभजदास के पद।
७ नन्ददास—नन्ददास ग्रथावली रूप मजरी स० ११६।
८ कुभनदास—पदावली स० ३१६।
९ परमानन्दसागर, पद स १२२।

राधावल्लभी-सम्प्रदाय के कवियों ने राधा के रूपवर्णन में इसका प्राय सर्वत्र उल्लेख किया है। ध्रुवदास ने 'शृंगार सत'[1] में (बेंदी लाल है गुलाब) तथा 'सभामंडल' में इस प्रकार का उल्लेख किया है

लाल भाल पर फबि रही बेंदी लाल अनूप।
मनो मूर्ति अनुराग की प्रकट भई धरि रूप॥

हरिरामव्यास ने मृगजबिंदु युक्त तिलक का चित्र उपस्थित किया है

मृगजबिंदुजुत तिलक इंदु छवि।[2]

सूरदास मदनमोहन ने मृगमद का तिलक वर्णित किया है। 'माधवानल काम कंदला' में भी इसका चित्रात्मक वर्णन मिलता है

लसत बाल के भाल में रोरी बिन्दु रसाल।
मनो शरद शशि में बसौ वीर बहूटी लाल॥[3]

पृथ्वीराज ने 'वेलि' में कुमकुम के तिलक का प्रभावात्मक रूप उपस्थित किया है

कमनीय कर कूंकू चौ निज करि
कलक धूम काढे ब काट।
सम्प्रति कियौ आप मुख स्यामा
नत्र तिलक हर तिलक निलाट।[4]

केशवदास ने 'रामचन्द्रिका' में 'बंदा' का चित्र उपस्थित किया है

सीसफूल अरु बेंदा लसै। भाग सोहाग मनो सिर बसै।[5]

केशवदास ने 'शिखनख' में भाल वर्णन में 'बदन की बिंदी' का स्पष्ट उल्लेख किया है

बदन को बिंदु अरुनोदय को प्राची भागु तिलक
तखत भाग को सहागु पाटु है।[6]

केशव रचित 'कविप्रिया' में तो बेंदा का बड़ा विस्तृत वर्णन है

बेंदा बरनत सकल छवि केसव ललित लिलार।
भाग सुहाग नरेश सम रबि ससि उदित उदार॥[7]

---

१ शृंगार सत छंद ४३।
डा० विजयेन्द्र स्नातक—राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धांत और साहित्य पृ० सं ४५५ से उद्धृत।
२ भक्तकवि व्यासजी पृ २८६
३ डा हरिकान्त श्रीवास्तव—भारतीय प्रमाख्यानक काव्य सन १९५५ पृष्ठ २४२।
४ वेलि (सं आनन्द प्रकाश दीक्षित) छंद ८७।
५ रामचन्द्रिका ३१।७७।
६ केशव—शिखनख ५।
७ केशव—कविप्रिया ७६।

रीतिकालीन कवियों मे विहारी ने तो इसको विशिष्ट स्थान दिया है। टढे तिलक के उल्लेख के साथ, चावल और हल्दी पीसकर लगी बिंदी, अभ्रक के साथ हीरा जडी बिंदी सन के फूल की बिंदी, चदा की बिंदी का उल्लेख विहारी की रचनाओं म मिलता है। यह दोहा तो सवप्रसिद्ध है

कहत सब बेंदी दिये अक दस गुनो होत।
तिय लिलार बेंदी दिये अगणित बढत उदोत॥

लगभग यही भाव मतिराम के दोहे म भी है

होत दस गुनो अक है दिये एक ज्यों बिंदु।
दिये दिठौना यों बढो आनन आभा इंदु॥

घनानन्द न तो इसका शृगार प्रसाधन ही नहीं अपितु पति-पत्नी के बीच प्रेम और आकर्षण का साधन स्वीकार किया है

पिय नेह अछह भरी दुति देह दिये तरुनाई के नेह तुली।
घनआनद खेल अलेल दस बिलस सुलस लट झूम झुली।
सुठि सुदर भाल प भौंहनि बीच गुलाल की 'कसी खुली टिकुली'।

इस प्रकार युगो से बिंदी नारी के शृगार प्रसाधन म महत्त्वपूर्ण योग द रही है। नारी क मस्तक पर लगी बिंदी उसके व्यक्तित्व का भी प्रभावशाली बनाती है। आधुनिक काल म भी राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त न साकेत' म सिंदूर बिंदु' को 'हरनेत्र माना है। आज तो अनक प्रकार की आकृतियों म बिंदिया मिलन लगी है।

तिलक का उल्लेख विहारी मतिराम दव आलम, पद्माकर, 'आड' का उल्लेख विहारी भिखारीदास, खौर' का विहारी पदमाकर भिखारीदास तथा 'टीका का विवरण भिखारीदास के साहित्य म प्राप्त होता है। 'बिंदी' (बेंदा) का सर्वाधिक प्रयोग विहारी तथा पदमाकर, भिखारीदास दव तथा सेनापति न किया है।

इस प्रकार परम्परा स चली आ रही बिंदी, आज नारी क सौभाग्य चिह्नो म अप्रतिम स्थान रखती है।

आँखो मे अजन

मनोहर स्वच्छ और विशाल आँखें सुदरता सूचक मानी गयी हैं। आंखो की पुतलियाँ काला पनली और घनी होनी चाहिए। आँखें किसी व्यक्ति क स्वास्थ्य का दपण होती हैं। आँखो क माध्यम स किसी के हृदय म झाँका जा सकता है। मुस्कराती और बोलती हुई आँखों स कौन नहीं प्रभावित होता! मुस्कराती आँखें सहृदयता की द्योतक हैं। आँखों का सौन्दय उनकी बनावट रग तथा चमक पर निभर होता है।

आँख में कृष्ण तथा सफेद-स्वच्छ, दो भाग होते हैं। ये दोनो भाग स्पष्ट होने चाहिए, यही आँखो का सौन्दर्य है। इस सौन्दर्य के लिए ही 'अंजन' का प्रयोग पुरातन काल से भारत में चला आ रहा है।

अंजन' का प्रयोग आँखो को स्वस्थ रखता है अत इसी कारण इस प्रसाधन का मुख्य अंग मान लिया गया है। विश्व में प्राचीन सभ्यता के सभी केन्द्रों में इसके उपयोग के प्रमाण मिलते हैं। सिन्धु सभ्यता के प्राप्त अवशेषों से भी इसका प्राचीनतम प्रयोग सिद्ध होता है। इन पुराने अवशेषो में अंजन के साथ 'अंजनदानी'[२] के कई उल्लेख भी मिलते हैं। सुरमा लगाने के लिए सलाई स्वर्ण रजत ताम्र और लोहे की बनती थी (अब काँच की भी बनने लगी है)। हर प्रकार की सलाई के प्रयोग के भिन्न गुण होते थे और यह निश्चित था कि किसका प्रयोग कब किया जाना चाहिए। पाणिनि ने त्रिककूट पर्वत से अंजन लाने का उल्लेख किया है।

बौद्ध साहित्य में स्पष्ट रूप से 'अंजन' का विशद वर्णन है। 'विनयपिटक' में सुरमे के उपयोग के उल्लेख मिलते हैं। अंजन लगाने की सलाई 'अंजनी' कहलाती थी। अंजन को आँखों में इस प्रकार आकर्षक ढंग से लगाया जाता था कि नेत्रों के किनारे पर अंजन की बारीक रेखा अंकित हो जाती थी।[३]

अंगविज्जा में भी आँखो में अंजन[४] का उल्लेख मिलता है। जैन आगमों में 'अंजन' 'अंजनी' (सुरमेदानी) तथा आँजने के लिए 'अंजन सलागा' (सलाई) का विवरण मिलता है। चुल्लवग्ग में भी ऐसा उल्लेख है। महावग्ग में पाँच प्रकार के अंजनों का उल्लेख मिलता है

कृष्ण अंजन रसअंजन स्रोत अंजन[६] गेरुक अंजन कप्पल(दीपक की स्याही)।

---

१ अनेक प्राचीन ग्रन्थों में अंजन का विस्तृत वर्णन मिलता है। चरक के ग्रंथ सुश्रुत में इसके गुणों का विस्तार से उल्लेख है। अत्रिदेव के अनुसार आयुर्वेद में नीलांजन रसांजन पुष्पांजन स्रोत और सौवीरांजन—पाँच अंजनों के प्रकार स्वीकार किये गए हैं।

२ कई उल्लेखों में बाण की कादम्बरी में लोचनांजनदान दारुशलाकेन का प्रयोग द्रष्टव्य है।

३ नत्ता अंजनमक्खिना' (थेर० १६१४) अदु अञ्जणि अलंकार (सूयगड १।४।२)।
डा कोमलचन्द्र जैन—बौद्ध और जैन आगमो में नारी जीवन १९६७ ई पृ २ ७।

४ वेद में अंजन के लिए आंजन शब्द प्रयुक्त है। कष्ट निवारण के लिए इसे आँखो में आंजते थे शरीर में बांधते थे शरीर पर लेप करते थे। एक स्थान पर पर्वत की आँख है पर्वत पर उत्पन्न होता है ऐसा उल्लेख मिलता है। हिमालय के त्रिककुद पर्वत के अतिरिक्त इसे यामन (यमुना) से उत्पन्न भी माना गया है।

अत्रिदेव विद्यालंकार—आयुर्वेद का बृहत् इतिहास १९६ पृ ५२।

५ डा० जगदीश चन्द्र जैन—जैन (आगमों) आगम-साहित्य में भारतीय समाज पृष्ठ १५४।

६ सुश्रुत में सिन्धुदेश में उत्पन्न अंजन स्रोतांजन कहा गया है (आयुर्वेद का बृ० इतिहास पृ ३८५)।

महाभारतकालीन समाज म 'अजन' का प्रयोग आम तौर पर किया जाता था। प्रसाधनश्च केशानामजन दन्तधावनम।[1] अनुशासन पर्व मे ही यह उल्लेख मिलता है कि पति के जाने पर अजन[2], रोचन स्नान, उबटन और प्रसाधन म विरहिणी की रुचि नही रहती। पतजलिकालीन समाज म भी इसका उल्लेख पर्याप्त मिलता है।

कालिदास के काव्य म अजन के अनक उल्लेख मिलते हैं। सौंदय के लिए अजन का प्रयोग किया जाता था यह काला[3] होता था, घुटा हुआ अजन अत्यधिक काले रग का होता था—इसका उपमान रूप म प्रयोग काले काले बादलो के वणन म किया गया है। विरह म काजल लगाना वर्जित था (उत्तर मेघ-३७)। अमरुकशतक म भी इसका विवरण है। कपूरमजरी म अज्जण (१।२०, २६ तथा २।१६) तथा कज्जल के अनक स्थान पर विवरण मिलत हैं।

खजुराहो की मूर्तियो म नारी सौन्दय के अद्भुत स्वरूप अकित हैं। देवी जगदम्बा के मदिर म नत्रो म अजन लगाती हुई एक प्रतिमा है।[5] तत्कालीन अभिलेखों म ऐसा उल्लेख मिलता है कि अजन लगाना सौभाग्य चिह्न था, और शत्रु की विधवा स्त्रिया आखो म काजल लगाना बन्द कर देती थी।[6]

वर्णरत्नाकर[7] म सुवीरा (सौवीराजन) तथा सूरिया (नीलाजन) का उल्लेख मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अजन के स्थान पर काजर (काजल) का उपयोग अधिक किया जाता था क्योंकि इसका उल्लेख कई स्थलो पर हुआ है

—काजरक कल्लोल अइसन (पृ० ५)।
—काजरक पव्वत अइसन (पृ० १६)।
—काजरक पयार अइसन (पृ० १८)।
—काजरक पव्वत अइसन आकार (पृ० ३२)।

---

१ सुकमय भट्टाचार्य—महाभारतकालीन समाज सन् १९६६।
२ डा मनमाला भुवालकर—महाभारत म नारी अ० २ २१ पृ० ३४४ तथा ३४७।
(अंजनं रोचनां चव स्नान माल्यानुलेपनम् ॥ अनुशासन २८५)
३ कुमारसभव—७।२ ८२।
४ ऋतु सहार—२।२ ३।२।
५ गोपाचन्द्र नागर—नारी सौन्दर्य का प्रतीक खजुराहो सा हिन्दुस्तान ७-३ १९६५।
६ भ्रूभङ्गन्या रहितैरनयनैरभि मन्यक कालाञ्जन
वासुदेव उपाध्याय—सोशियो-रिलीजियस कडीशन अव नाथ इण्डिया सन् १९६४ पृ १६७।
७ डा गुडमता—वर्णरत्नाकर का सांस्कृतिक अध्ययन पृ १००४ अप्रकाशित शोध प्रबध।
८ वही पृ० १००५।

आदि काल के ग्रथ ढोला मारू रा दूहा' म 'कदी मिलू उण साहिबा कर काजल की रेख', (४४) उल्लेखनीय है।

खुसरो न इजाज़ इ-खुशरव[1] म सुरमा सुरमेदानी का वणन किया है। जान फ्रेअर[2] न भी अपन यात्रा विवरण म इसका विवरण दिया है।

प्रेममार्गी शाखा के प्रथम कवि मुल्ला दाऊद के चदायन म 'काजर' का विवरण है। इस काव्य म सौभाग्य-चिह्न सिन्दूर के साथ 'काजल' का उल्लेख मिलता है

पाइ परीं अक्वारइँ धरीं। काजर सेंदुर दोऊ करीं।[3]

माँग म सिन्दूर के अतिरिक्त मुख म पान और आँखो म काजल ही सौभाग्य वती का मुख्य लक्षण है

मुख तँबोल चखि काजर पूरहिं।[4]

मगावती[5] पद्मावत[6] मधुमालती[7], रतनमजरी[8], ज्ञानदीप[9] आदि सभी सूफी काव्यो म इसका व्यापक प्रयोग मिलता है।

छिताईवार्ता[10] म आँख (केवल एक) म अजन लगान का उल्लख मिलता है।

सत काव्यधारा के कवियो न अजन का प्रयोग अनक स्थानो पर किया है। दादू दयाल की रचनाओ म शृंगारपरक[11] तथा प्रतीकात्मक[12] दोनो रूपो म

१ एस एच अस्करी—इजाज ए खुशरवी में वर्णित समाज रांची विश्वविद्यालय का रिसच जनल भाग १० पृ ७२।
Collyrium or antimony in which gem along with their ingredients were reduced to a fine powder

२ I never saw but one Grey eyed and therefore I suppose them are unless they should tincture them with some Fucus it may be of Anti mony which we read in the Sacred page the Jews used E peci lly the women both to preserve them from filth and to procure a graceful Blackness
John Fryer East India and Persia Travels 1912 Page 118

३ डा माताप्रसाद गुप्त—चान्दायन छन्द ३६५ व चन्दायन स ४५।

४ वही छद ३५ तथा चदायन—स ४०६।

५ सहज बरुनि जन काजर दिया—मृगावती २७।
मख तम्बोल चख काजर कीन्हा—वही ७६।

६ पुनि अजन दहु नन करेइ॥ दोहा २६६ पद्मावत।

७ नन रत्न काजर के दीखि सोभ बस देइ। मधुमालती दोहा ४८१।

८ ननि अजन भार।

९ मख समान देख अजन नना।

१० एकहि अज एक नन।

११ बिसर अजन मजन चीरा।
दादूदयाल की वाणी पद स १।

१२ अजन माया अजन काया अजन छाया रे।
दादूदयाल की वाणी पद स १६२।

अजन का प्रयोग मिलता है। आदि ग्रथ म 'आसा घर ५ म इसका प्रयोग मिलता है।

तुलसीदास[1] न भी रूपक मे 'अजन' का प्रयोग किया है।

इस काल के अय सदभ ग्रथा म भी इसका विवरण मिलता है। आईन ए-अक्बरी[2] म सोलह शृगार का उल्लेख मिलता है जिसके अतगत नवी सख्या पर आखो म काजल या सुरमे से शृगार का उल्लेख किया गया है। वल्लभदव स प्राप्त श्लोक मे नेत्राजन' तथा उज्ज्वल नीलमणि म 'कज्जलाक्षी का उल्लेख मिलता है। इसी आधार पर कष्ण काव्य धारा के प्रत्येक कवि न इसका बडा विस्तत वणन प्रस्तुत किया है और इसके बाद तो सोलह शृगार के अ तगत आखो म काजल लगाना भी स्वीकार कर लिया गया।

कष्ण काव्यधारा के अतगत महाकवि सूर म कज्जल' के उल्लेख भरे पडे हैं। कही-कही अजन[3] का भी उल्लेख है जस

बदन मजन त 'अजन' गयौ ह्व दुरि।[4]
आजु 'अजन' दियौ राधिका नन कौं॥[5]

काजर

'काजर' नन दिये।[6]
दरपन ल कजरांहि' सँवारत।[7]

सूरदास ने काजल के लिए 'साहित्यलहरी म सारगसुत' शब्द का ही विशेष रूप स प्रयोग किया है। अय अष्टछापी कविया ने भी सुदरी गावियो के नेत्रों म अजन अथवा काजल का वणन किया है।

परमानन्ददास ने भी अजन तथा काजर दोना शब्दा का प्रयाग किया है

बसीकरन रस सौं भिजी रचिपचि अजन रेख' बनाई।[9]

परमानददास के अय पद भी द्रष्टव्य हैं

---

१ गुरुपद रज मृदु मजल अजन। नयन अमिय दृग दोष विभजन।

२ आईन-ए-अकबरी जरट का अनुवाद पृ ३४१ ३४३।

३ अजन क अय प्रयोगों के लिए पद स २७१ ७३२ ७६६ ८०१ ११०५ १६१६ १९७३ १७९८ २२ ३ २७५१ २७७१ २७९७ २९९० आदि द्रष्टव्य हैं।

४ सूरसागर पद स० १६६४।

५ वही पद स ३ ६८।

६ वही पद स ६४२।

७ वही पद स० २८ ७। अय प्रयोग पद सं ४४३३ १६६ ६५८ ३१२ ३१२४ द्रष्टव्य हैं।

८ साहित्य लहरी पद स १६ ३१ ५० ५५ ६५ आदि।

९ परमानन्द सागर पद स ६१६।५। ३३५। ३९४।

ता दिन 'काजर' देहौं सखी री !
जा दिन नदनदन क नना अपने नना मिलहा सखी री ![1]

चतुभुजदास ने अजन धरने' का प्रयोग किया है

नन अजन धरि' क अब जहै ।[2]

कष्णदास न कज्जल' तथा काजर रेख' का प्रयोग किया है

नन 'कज्जल' अनी ।[3]

तथा

'काजर रेख' बनी ननिनि मे प्रीतम कौ चित्त चोर ।[4]

छीतस्वामी न भी 'अजन की रेखा का ही प्रयाग किया है

अजन की रखा' राचे ।[5]

हरिरायजी न भी अपने पदा म अजन"[6] को महत्त्व दिया है

जहाँ 'अजन' सब ही कौ मनरजन बस ।[7]

अन्य कविया म सगीतकार तानसेन ने 'अजन' का खडिता नायिका के सदभ मे विशष प्रयोग किया है

एक कर दपन एक कर 'कजरा' अचरा गहे सुधारत ।[8]

महाकवि केशव ने रामचन्द्रिका म लोचनो के सदभ म अजन' की चर्चा की है

लोचन मनहु मनोभव जन्त्रनि । भ्रू जुग उपर मनोहर मन्त्रनि ॥
सुदर सुखद सुअजन अजित । बान मदन विष सो जनु रजित ॥[9]

महाकवि न अपन दूसरे ग्र थ कविप्रिया म लोचन[1] के सदभ म भी अजन का प्रयोग किया है और अजन वणन पृथक स किया है

विष सिंगाररस-तूल तम पूरे पातक साज ।
मनरजन अजन सब बरनत ह कबिराज ॥[11]

---

१ परमानन्दसागर (स डा० गोवधननाथ शक्ल) पद स ५४४।५२१।५५३।५७५।६०६
२ सग्रह पद स० १९६ ।
३ कृष्णदास के पदों का सग्रह पन्द स ५४ ।
४ वही पन्द स १ ४ ।
५ छीतस्वामी पन्द स ८८।५७ ।
६ ब्रज में करहना उपवन के समीप ही अजनीखटि है जहां ऐसा विश्वास किया जाता है कि नन्दनन्दन ने श्री राधाजी के नयनो मे अजन लगाया था भौंहें सुधारी थीं और लाड़िलीजी ने हरी भूमि पर सुख से विश्राम किया था ।
७ हरिरायजी के पन्द (स प्रभदयाल मीतल) पन्द स० १२४ ।
८ डॉ० सरयूप्रसान्द अग्रवाल—अकबरी दरबार के हिन्दी कवि पृ स ४०१ छन्द ७७ ।
९ केशव ग्रथावली भाग २ पृ ३८३ छन्द १२ ।
१ वही भाग १ पृ २०७ लोचन वर्णन छन्द ५५
११ वही भाग १ पृ २ ७ छन्द ७५ तथा ५८ ।

रीतिकालीन कवियो मे तो बिहारी, पद्माकर, भिखारीदास मतिराम, विक्रम, तोष, मुबारक, रसलीन, आलम आदि सभी ने इसका वर्णन किया है। पुहुकर कृत 'रसरतन' मे इसका क्रम इस प्रकार स्वीकार गया किया है

प्रथम सुमज्जन चीर चारु कंचुकि हिय सोहै।
अंजन तिलक्न भाल करन कुंडल मन मोहै॥[1]

इस प्रकार अंजन काजल (काजर तथा कज्जल) की दीर्घ परम्परा मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के समय से चली आ रही है।

भौंह बनाना

भौंहो की सुन्दरता के कारण ही स्त्रियाँ 'नतभ्रू' कहलायी। भौंहो की वक्रता नारी सौंदर्य का वर्द्धन करती है। भौंहें काली और कुटिल हों तो सौंदर्यवर्द्धक मानी जाती हैं। संस्कृत साहित्य मे सर्वत्र काली भौंहो के सौन्दर्य का ही वर्णन मिलता है। 'नैषध' मे दमयन्ती की भौंहो का बडा सुन्दर तथा चित्रात्मक वर्णन मिलता है।

कालिदास ने 'लहर' को भ्रू का सर्वोत्तम उपमान स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त दूसरी उपमा धनुष है। कुमारसम्भव मे 'शलाकांजन निर्मितेव' शब्द का प्रयोग भौंहों के लिए हुआ है। भौंहो का काला होना— नेत्र की शोभा की दृष्टि से आवश्यक है अतएव भौंहो का प्रसाधन भी काजल या मसी से किया जाता था। आज भी 'भ्रो पेंसिल' प्रायः काली ही होती है। इस प्रकार लम्बी पतली काली तथा वक्र भौंहों का सौंदर्य के साथ शुभ स्वास्थ्य का भी लक्षण समझा जाता है। प्रसाधन द्वारा भी इन्हे यही रूप दिया जाता है।

मध्यकालीन कवियो ने नखशिख-वर्णन मे भी, नेत्रो के साथ भौंहों की स्वाभाविकता और सुन्दरता का पर्याप्त वर्णन किया है, पर प्रसाधन के रूप मे पृथक् मान्यता नहीं दी है सम्भवतः इसे अंजन के साथ ही समाहित कर लिया गया।

भौंहो की वक्रता के कारण ही गदाधर भट्ट ने इनको मोहिनी यन्त्र की लिपि समझ लिया था

भौंह मोहिनीयन्त्र लिखि लिपि करहूँ।

(गदाधर भट्ट की वाणी)

केशव ने भृकुटी-वर्णन पृथक् और विस्तार से किया है

किधौं मन दीपकनि ऊपर काजर लीक किधौं महराव मुख सुधाकर धाम की।
किधौं जुग कुभरेख लिखी है आँखिन पर किधौं दलदुति नासावंस अभिराम की॥[2]

---

१ रस रतन सम्पादित छंद ७६।
२ केशव ग्रन्थावली भाग २ पृ० ४५८।

कपोल तथा चिबुक का प्रसाधन

"कपोल का प्रसाधन कई रूपो म होता है। कपाल पर चित्रकम पत्रभग, लोध्ररज का उपभोग प्राय होता था। गालों को अनेक प्रकार की श्वत रक्तचदन की बुंदकियो स सजाया जाता था। चिबुक के कूप से दो रेखाएँ ऊपर गालो पर कानो की आर खीच दी जाती थीं। इन पर लता की भांति टहनियां और पत्तियां बना दी जाती थी, इसी प्रकार ललाट के ऊपर, केश रेखा के किनारे सफेद-लाल बुंदकियां डालीजाती थी। अधिकतर ये दोनो ओर कान तक, फिर नीचे भ्रुवो के ऊपर और दोनों तरफ़ रेखाएँ आंखो की कोरा क ऊपर मिला दी जाती थीं। इन्ही बुंदकियो स जब तिलक करते थे तो इसको भक्ति कहते थ। भक्ति के रूप म ललाट के बीचोबीच चारा ओर वत्ताकार दौडती चन्दन की श्वेत बुंदकियो के बीच लाल बिंदिया लाल बिंदियो के बीच श्वत बिन्दी भी रखते थे। इनमे धुली या सूखी केसर या कुकुम का भी प्रयोग होता था।"[1]

इतना विस्तृत तथा सूक्ष्म प्रसाधन का प्रचलन अधिक काल तक नही रह सकता सभवत यही कारण है कि कालक्रम से इस प्रसाधन के रूप तथा स्थान बदलत रहे और मध्यकाल तक आते आते कपोल या ठोडी पर कत्रिम तिल बनाना मात्र रह गया। सस्कृत साहित्य मे कपोल पर चदन, अगरु, कस्तूरी आदि से नाना प्रकार क चित्र, शालभजिका क जोडे के रूप म पक्षी आदि चित्रित किए जाते थे—इस तथ्य का उल्लख मिलता है। कपोल का प्रसाधन वक्षा के पत्तो से भी किया जाता था।

कपोल पर पत्रलेखा[2] बनान का उल्लेख नाटयशास्त्र तथा शिशुपाल वध म मिलता है। हरिविजय म उल्लख मिलता है कि पत्रावली द्वारा केसर स कपोल पर चित्र बनाए जाते थे। बौद्धकालीन साहित्य के आधार पर यह पता चलता है कि कपोल पर एक विशष प्रकार का चिह्न बनाया जाता था, जिसको 'विशेषक'[3] की सज्ञा दी गई है

विसेसक करोन्ति—चुल्लवग्ग॥
गण्डप्पदेसे विचित्तसग्गन विसेसक करोन्ति—अटठकथा॥

पद्मावत म इसका विवरण मिलता है

रचि पत्रावली मांग सिंदूरा।
चदनचित्र भये बहु भांती।[4]

---

१ अत्रिदेव विद्यालकार—प्राचीन भारत के प्रसाधन पृ ७४।
२ अमरकोष में २ नाम हैं पत्रलेखा पत्रागलिरिमे समे (१२३)।
३ डा कोमलचन्द्र जन—बौद्ध और जन आगमों में नारी जीवन १९६७ ई०, पृ २०८।
४ जायसी—पद्मावत दोहा २९७।

जायसी न इसके साथ कपोल पर 'तिल' का उल्लेख भी किया है, कपोल फूलो की गेंद क समान सुन्दर थ, कपोल पर पडा हुआ तिल कमल पर बठ हुए भौरे क समान लगता था, जिसन वह तिल देख लिया—वह जख्मी हो गया

कुसुम गेंद अस सुरँग कपोला।

× ×

तिल कपोल अलि पदुम बईठा।

बेधा सोइ जो वह तिल डीठा॥[1]

'पत्रावली' रचना का उल्लेख उज्ज्वल नीलमणि के राधा प्रकरण में भी है। इसका उल्लेख शृगार परम्परा में किया जा चुका है। निम्बार्क सम्प्रदाय के प्राचीन ग्रथ महावाणी' में भी चिबुक पर श्यामला बिन्दु' का विवरण मिलता है। सूरदास ने भी, शृंगार क अन्य प्रसाधना के साथ, ठोडी पर तिल बनान का निर्देश कई स्थानों पर किया है

कठश्री दुलरी बिराजति, चिबुक श्यामल बिंदु।[2]

तथा

चिबुक चारु तिल ताकि बनायौं।[3]

मुख क गोरवण पर काले छोट तिल से (विरोध के कारण) सौंदय की वद्धि होती है

चिबुक बिंदु बिच दियौं बिधाता रूप सींव निरुवारि।[4]

जनधम में भी स्नानोपरात इसको कौतुक-कम' कहा गया है। कौतुक[5] दष्टिदोपादि स रक्षा के लिए अकित किया गया काजल का चिह्न विशष है जिसको स्त्रियाँ कलात्मक ढग स लगाती थी और कृष्ण चिह्न स अकित उनके गौर मुखमण्डल की शोभा और भी बढ जाती थी।

यही अलकरण मध्य काल में दो रूपा में प्रचलित हुआ

१ चदन चित्र।

२ कृत्रिम तिल का निर्माण जो कपोल अथवा चिबुक पर किया जाता था।

चदनचित्र—पत्रच्छन्दों की सहायता से चदन द्वारा चित्रित फूलपत्ती पक्षी अथवा पुतलियों के चित्र। ललाट कपोल स्तन आदि पर फूलपत्तियों के कटाव पत्रावली या पत्रलता की रचना—जो पत्तो के खाके काटकर बनायी जाती थीं।

डा वासुदेवशरण अग्रवाल—पद्मावत का भाष्य दोहा सं० २६७।

१ जायसी—पद्मावत दोहा २६८।

२ सूरसागर पद स १६६१।

३ वही पद स० २ २६।

४ वही पद सं० २७३६।

५ प्राकृत मे यही कोउग' (कौउय) है—दष्टिदोषादि से रक्षा के लिए किया गया काजल का तिलक—पाइअ सद्द महण्णवो पृ० २६१।

कालिदास ने पत्र रचना को 'विशेषक' कहा है। मालविकाग्निमित्र में ऐसा उल्लेख है कि काले उजले और लाल रंग के कुरबक के फूलों ने स्त्रियों के मुखों पर चीती चित्रकारी फीकी कर दी

प्रत्याख्यातविशेषक कुरबकं श्यामावदातारुणम।[1]

पत्ररचना का संकेत कुमारसंभव (३।३०, ३३ तथा ३८) और रघुवंश में भी प्राप्त हुआ है। गोरोचन तथा कुंकुम से पत्र रचना की जाती थी। पार्वती के शरीर पर पत्र रचना गोरोचन से की गई थी। पत्र रचना अंजन से भी की जाती थी।

पुष्पदन्त ने इसको ही अलका तिलका (अलय तिलय) कहा है

केवि अलय तिलय देविहि करइ[2]
केवि आदसणु अग्गइ धरइ।

विद्यापति की 'कीर्तिलता'[3] में भी इसका उल्लेख मिलता है। पदावली में भी है

प्रथमहिं अलक तिलक लेब साजि।[4]

यह तिल बनाने की प्रथा ही आगे चलकर कई क्षेत्रों में गुदने से गुदाकर अंकित करने में बदल गई। शरीर गुदवाने की यह प्रथा आज भी कई प्रदेशों में दिखाई देती है। जायसी ने भी कपोल[5] के साथ ठोडी पर तिल का उल्लेख किया है

भौंह धनुक तिल काजर ठोडी।

कहीं-कहीं सूर ने तिल शब्द का प्रयोग न कर केवल प्रसाधन व्यंजित कर दिया है

चिबुक मध्य मेचक रुचि राजत, बिंदु-कुंद-रदनी।[6]

परमानन्ददास ने भी इसी प्रकार लिखा है

---

१ मालविकाग्निमित्र (३।५)।
कपोलों पर पत्र रचना का उल्लेख पद्मप्राभृतक (६) पाण्डिक (३४) में भी मिलता है देखिए डा० मोतीचन्द्र—शृंगार-हाट १६६।

२ राहुलजी ने इसे ही मनय तिलक कहा है—कोई मनय तिलक देविहि करई।
हिन्दी काव्यधारा पृ २०।

३ द्वितीय पल्लव १३६।

४ पदावली सखी शिक्षा।

५ तेहि कपोल बाएं तिल परा।
जेहु तिल देख सो तिलतिल जरा॥
जायसी—पदमावत दोहा १६ दोहा ४८ भी द्रष्टव्य है।

६ सूरसागर पद सं २८०२।

चिबुक मध्य सामल बिंदु राज मुख सुख सदन सयानी।[1]

कपोलो पर चित्र बनाने की प्रथा भी मध्यकाल में थी। शरीर पर भी चित्र बनाने की (सुभग तन धातु चित्र)[2] प्रथा थी।

छिताइवार्ता में भी तिल का उल्लेख मिलता है

तिल कपोल परि विधना दीउ
मनहु मदन चिह्न करि गयो।[3]

कुम्भनदास ने भी चिबुक पर ही बिंदु का विवरण दिया है

चिबुक सावल बिंदु चारु वेस।

राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक हितहरिवंशजी ने भी राधा के रूप वर्णन में इसका स्पष्ट उल्लेख किया है

चिबुक मध्य अति चारु सहज सखि सावल बिन्दु कनो।[5]

हरिराम व्यास ने चिबुक तिल तथा अलक तिलक दोनो प्रसाधनो का उल्लेख कर दिया है। इससे सिद्ध होता है कि अलक तिलक की प्रथा भी पहले से चलती आ रही थी

अलक तिलक झलकत गडनि पर ताटकन प्यारी।[6]

तथा

झलकति अलक तिलक भौंहनि छबि ननि अजन रेख अन्यारी।

साथ ही चिबुक तिल

सोभित स्यामलि बिंदु चिबुक सुक नासा ललित खरी।[8]

गदाधर भट्ट ने भी इसका चिनमय वर्णन किया है।

रामभक्ति शाखा के कवि केशव ने 'शिखनख' में कपोल तथा चिबुक वर्णन करते हुए किसी तिल का उल्लेख नही किया पर कविप्रिया के 'चिबुक वर्णन' में किया है

तनक चिबुक तिल तेरे पर मेरी सखि
डारौं वारि तरुनी तिलोत्तमा-सी कोरि-कोरि।[9]

---

१ परमानन्दसागर पद स ६१६।७।
२ वही पद स ५६५।
३ छिताईवार्ता छद १७४।
४ कुभनदास पदावली पद स १६।
यहाँ श्यामल (साँवल) बिन्दु काजर का ही हो सकता है।
५ डा विजयेन्द्र स्नातक—राधावल्लभ सम्प्रदाय (वही) पृ ३१३।
६ भक्तवर व्यासजी—स० वासुदेव गोस्वामी पृ २८७।
७ वही पृ वही।
८ वही पृ वही।
९ केशव—कविप्रिया छद ३६।
पदावली का भी केशवदास ने पर्याप्त उल्लेख किया है देखिए 'रसिकप्रिया'।
केशव ग्रथावली—भाग १ पृष्ठ १४ तथा ३७ क्रमश छद ४४ तथा ४७।

रीतिकाल में तो इस सौंदर्य प्रसाधन का शृंगारों में इतना अधिक महत्त्व हो गया कि प्रत्येक कवि ने इसका वर्णन किया है जिससे इसका प्रचलन और लोकप्रियता भी प्रमाणित होती है।

रीतिकाल के प्रारंभिक कवि मुबारक ने तो 'तिल शतक'[1] की रचना ही कर डाली। इस कृति के कुछ दोहे इस प्रकार हैं

गोरे मुख पर तिल लस ताहि करौं परनाम।
मानहुँ चन्द बिछाय क बैठे सालिगराम॥
× × ×
काजर मजरौटीन ते लीजे दृगन लगाय।
यह तिल काजर चिबुक मे विधि रचि करी बनाय॥
× × ×
बेसरि मोती मोत मन काँपे दियो लटकाय।
तिल हबसी लट ताजयो कहँ अनत क्यों जाय॥
× × ×
दग काजर रजक भरे अलक फिरंग बन्दूक।
तिल गोली मन लच्छ को मार मदन अचूक॥

पद्माकर ने भी तिल का चित्रात्मक वर्णन किया है। यहाँ एक कवित्त उद्धृत है

कधौं रूप रासि मे सिंगार रस अकुरित
सकुरित कधौं तम तडित जुन्हाई मे।
कहै पदमाकर त्यो किधौं काम कारीगर,
नुकता दियो है हेम-फरद सुहाई मे।
कधौं अरबिंद मे मलिंद-सुत सोयो आनि,
ऐसो तिल सोहत कपोल की लुनाई में।
कधौं परयो इन्दु मे कलिंदि जलबिन्दु आइ
गरक गुविंद किधौं गोरी की गोराई मे॥[2]

इस प्रकार पत्र रचना अलक तिलक, कपोल तथा चिबुक म तिल रचना आदि प्रसाधन के रूप काल क्रम से बदलते रहे।

ओष्ठ का प्रसाधन

ओठ स्वाभाविक रूप से लालिमा लिए होने चाहिए। ओठो की उपमा सर्वत्र कन्दूर के पके फल स दी जाती है।[3] ओठो पर लालिमा लाने के लिए पान का

---

१ मबारक—तिल शतक।

२ आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—पदमाकर पचामृत पृष्ठ २९२।

३ पक्वबिम्बाधरोष्ठी—मेघदूत उत्तरमेघ २२।
बिम्बाफलाधरोष्ठे—कुमारसंभव (३।६७)।

उपयाग भी किया जाता था, जिस पर पृथक प्रकाश डाला जा रहा है। ओठों को लाल रग से रगा भी जाता था। बौद्धकाल मे भी ओठो पर लालिमा लान के लिए नन्दीचूर्ण[1] का प्रयोग किया जाता था। लाल रग अच्छी तरह स जम जाए तथा उसम चमक आ जाए, इसके लिए मोम का प्रयाग किया जाता था।

कालिदास के साहित्य स पता चलता है कि उस काल म भी होठ रगने का अधिक प्रचलन था। शाकुन्तलम म राजा दुष्यन्त शकुन्तला के उन होठों का वणन करत हैं—जो न रगन से पीले पड गए थे। कुमारसभवम के अनुसार, तपस्या काल म पावती अपने होठ रगना छोड चुकी थी फिर भी उनक होठ लाल थे। स्नान के समय यह राग धुल जाता था। रघुवश तथा विक्रमोवशीय म भी ओष्ठ राग का स्पष्ट उल्लेख है। इसका रग केवल लाल होता था।

कुमारसभव का एक चित्र उपस्थित है जिसम सुडौल आखावाली पावती का निचला ओठ ऊपर के ओठ स एक रेखा के द्वारा अलग हो गया था—जिस पर मोम के द्वारा और भी अधिक लाली आ चुकी थी—जिसके द्वारा फडकते हुए लाल ओठों की शोभा निराली हो उठी थी

रेखाविभक्ति सुविभक्तगात्रया किञ्चिन्मधूच्छिष्टविमष्टराग।
कामप्यभिख्या स्फुरितरपुष्यदासन्नलावण्य फलोधरोष्ठ॥

अजता के चित्रों म ओठो पर पीत श्वेत रग शायद इस प्रसाधन के कारण ही हैं। हो सकता है उस समय यह लाल रग रहा हो। आज तो ओष्ठयराग अनक रगों म मिलने लगा है जो वशभूषा तथा त्वचा के रग के अनुसार बदले जाते हैं फिर भी लाल तथा गुलाबी रग का ही आज भी अधिक प्रचलन है।

कपूरमजरी म होठों पर मोम लगाना व्यजित होता है विशष रूप स शीत म। मध्य काल म इसका पृथक कोई विशेष महत्त्व नही रहा क्योंकि ताम्बूल क सेवन स ओठ रगने की आवश्यकता ही नहा रहती थी और यही कारण है कि सोलह शृगारो म ताम्बूल सेवन को सम्मिलित कर लिया गया।

ताम्बूल सेवन

ताम्बूल भारत म प्राचीन काल से ही शृगार प्रसाधन के रूप म स्वीकार किया गया है। अधरा को प्राकृतिक रूप से लालिमायुक्त होना चाहिए अगर किसी कारण से न हो तो लाल रग से (अलक्तक) रँगने की प्राचीन प्रथा थी साथ ही चिकना करन के लिए उस पर मोम रगड दिया जाता था। तत्कालीन काव्या म आठा की उपमा कुन्दरी के पक्व लाल फल म दी गयी है (पक्व बिम्बा-धरोष्ठी)। ओठो पर लालिमा लाने के लिए पान का उपयोग भी किया जाता

---

1 नन्दिचूर्ण।

था। लालिमा के लिए लाक्षारस (लाख का रस) तथा मोम का विवरण प्रायः मिलता है। कालिदास के काव्य में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं।

ताम्बूल शृंगार-प्रसाधन में पूर्व पूजा की सामग्री थी। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार, इसका प्रयोग आर्यों ने नाग जाति से सीखा। यही कारण है कि इसका नाम 'नागवल्ली' भी मिलता है। पान और बीड़ा बनाने का कला भी बहुत प्राचीन है। वराहमिहिर ने पान खाने के गुण इस प्रकार बताए हैं—पान खाने से काम की वृद्धि होती है, रूप निखरता है, सौभाग्य बढ़ता है, मुख सुगंधित होता है, शरीर में तेज की वृद्धि होती है, कफ रोग नष्ट होता है। कक्कोल, सुपारी, लवली, पारिजात से युक्त पान मन को प्रसन्न करता है।[1] पर ऐसा प्रतीत होता है कि ताम्बूल का प्रयोग कालांतर में स्वास्थ्य की दृष्टि से कम, शोभा और लालिमा के लिए अधिक होने लगा।

ताम्बूल एक ऐसा सर्वगुणयुक्त शृंगार प्रसाधन है, जो स्वास्थ्यप्रद भी है और प्रकृति की देन भी।[2] माघ[3] ने भी इसका उल्लेख किया है (आताम्रताम्बूल-द्युति)। विदेशियों ने इसकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। ताम्बूल पिटारी का ले जानेवाली स्त्रियों को संस्कृत साहित्य में ताम्बूलकरंकवाहिनी कहा गया है।

और आजकल तो मुख की शुद्धि तथा सुंदरता हेतु पान सेवन शृंगार का मुख्य रूप बन गया।

ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि प्राचीन भारत में शत्रु की स्त्रियों का होठ लाल करना वर्जित था। इससे सिद्ध होता है कि समाज में नारियाँ ताम्बूल के सेवन से होठ लाल करती थीं। राजा के शत्रु की स्त्रियों के आँसुओं में ताम्बूल का रंग घुलमिल जाता था, ऐसा उल्लेख मिलता है।[4]

सोमेश्वरकृत मानसोल्लास (३।४०।६५६) में 'ताम्बूलोपभोग' पर विस्तार से चर्चा की गयी है। इससे पूर्व बृहत्संहिता (वराह मिहिर) कामसूत्र (वात्स्यायन) शुक्रनीतिसार 'विशुद्धिमग्ग' (बुद्धघोष) आदि अनेक ग्रंथों में इसका उल्लेख मिलता है। डा० पी० के० गोडे के अनुसार शिलालेखों में इसका प्रथम उल्लेख

---

१ अत्रिदेव विद्यालंकार—प्राचीन भारत के प्रसाधन पृष्ठ ८८ ८९ से उद्धृत।

२ इससे प्रभावित होकर ओरम महोदय ने कहा था
Nature seems to have showered beauty on their fairer sex throughout *Indostan* with a more lavish hand than in most other countries

३ शिशुपालवध ८।७ १।३ ।

४ ताम्बूलरागदोहृताधरभाजि' (धनिक का नगर शिलालेख ९८५ ई०)।
वासुदेव उपाध्याय—सोशियो रिलीजस कंडीशन्स ऑव नार्थ इंडिया १९६४ ई० पृष्ठ १६५।

५ ताम्बूल को मानावचविलेपन के साथ माना गया है
मानावच विलेपनताम्बूलानि

गुप्तकाल (४७३ ई०) का मिलता है (सुवणहार ताम्बूल पुष्पविधिना समल कृतोऽपि)।

ज्योतिरीश्वर कृत 'वण रत्नाकर'[1] म परपरा स चली आ रही प्रसाधन-पटु महिला सर ध्री के अतिरिक्त—ताम्बूल की पिटारी रखनवाली को माननायिका कहा है और अय दासियो को परिचारिका माना है।

११-१२वी शताब्दी की सास्कृतिक तथा सामाजिक परिस्थितिया पर प्रकाश डालत हुए सुप्रसिद्ध इतिहासकार प्रो० मोहम्मद हबीब[2] न स्पष्ट लिखा है कि पान खाना एक राष्टीय आन्न थी।

मध्यकाल मे आकर अमीर खुसरा[3] न तो इसका बड विस्तार स इजाज ए-खुशरवा (द्वितीय भाग) म वणन किया है। खुसरो क बाद हिदी साहित्य म ताम्बूल का बडा विस्तत वणन मिलता है पर इसमे पूव भी ११वी शताब्दी के अनतर राउलवल पृथ्वीराज रासा[5] सन्देश रासक[6] बसत विलास[7] और ढाला मारू रा दूहा[8] म ताम्बूल अथवा पान क उल्लख मिलत हैं।

वल्लभदव द्वारा सकलित सुभाषितावलि म (श्लोक स० २१३७) सोलह शृगारा म ताम्बूल का १५वा स्थान है। यहाँ ताम्बूल का उल्लेख मिलता है। उज्ज्वल नीलमणि म राधा प्रकरण (श्लोक स० ६) म भी ताम्बूल को प्रसाधनो म परिगणित किया गया है।

सूफी काव्यधारा म लगभग सभी कवियो न ताम्बूल का उल्लेख किया है—चदायन[9] मिरगावती[10] पद्मावत[11] मधुमालती,[12] चित्रावली,[13] रतनमजरी,

---

१ डा गुरुमता—वण रत्नाकर का सांस्कृतिक अध्ययन खण्ड २ पष्ठ ६६३। अप्रकाशित शोध प्रबध।

२ प्रो माहम्मद हबीब—इडियन कल्चर एड सोशल लाइफ एट द टाइम अव तुर्की इनवेज्न पष्ठ ६७।

३ प्रो एस एच अस्करी—लाफ एड कडीशज एज डिपिक्टड इन रिसाल—इजाज इ खुशरवी—हिस्टारिकल रिसच जनल रांची भाग १ ।

४ अन्न तबोलें मण मण रातउ (पक्ति ३)।

५ अधरनु अन्टिठ अ छइ तमोर (२ ५ १०)।

६ अमुराषणिहि (२।५०) अमुर=नागवल्ली=पान

७ बसतविलास—स० माताप्रसाद गुप्त छन्द ५७।

८ तत्रानाद तबोल रस (दूहा २२३)।

९ चादायन—स माताप्रसाद गप्त छन्द २४६ ३५ तथा ७० द्रष्टव्य हैं।

१० मिरगावती—स० परमश्वरी लाल गप्त छ द ६३ तथा ७७।

११ पुनि यात्रा मुख खाइ तमोला दोहा २६६। पीक का वणन दोहा २६०।

१२ मधमालती स० मानाप्रसाद गुप्त ५२।

१३ चित्रावली दोहा २८।

पानदीप आदि-आदि सभी।

मध्यकाल के यात्रियों ने भी इस विलक्षण पदार्थ को आश्चर्य भरी दृष्टि से देखा और विस्तार से वर्णन किया था। इनमें से फास्टर[१] टेरी[२] देला वेले विशेष उल्लेखनीय हैं। करिर[३] ने होठ का प्रसाधन पान को स्वीकार करते हुए लिखा है

The beteleira is a tender plant like Ivy which runs up a stick Its leaf is the delight of the Asiatics for Man and women from the prince to the peasant Delight is nothing more than chewing it all day in company and no visit begins or ends without this herb

The Betel makes the lips so fine red and beautiful that if the Italian ladies could they would purchase it for weight in gold

सूर ने ताम्बूल सेवन का उल्लेख अपने अनेक पदों में किया है। ताम्बूल का 'नागवल्ली' नाम भी प्रसिद्ध था अतएव साहित्य लहरी में इसके लिए प्रयोग हैं नागवल्ली के पर्यायवाची सप बेलि[४] करि की शोभा[५] सेसलता के पत्र[६] आदि।

सूरसागर में भी ताम्बूल का कई स्थानों पर विवरण मिलता है जिससे इस प्रसाधन के प्रचुर प्रचलन का ज्ञान होता है। ताम्बूल के तत्कालीन प्रचलित रूप तमोर तमोल का ही प्रयोग तत्कालीन रचनाओं में किया गया है। ताम्बूल को

---

१ It bytts in the mouth avoydes rume cooles the head strengthens the teeth and is all their phisiche it makes one unused to it giddy and makes a man s spittle redd and in tyme coullers the teeth wich is exteemed a beauty

S Sen—Indian Travels of Thevenot & Careri Page XIV

२ Pawne—preserves the teeth comforts the braine strengthen the *stomack cures and prevents breath*

३ S S n—Indian Travels of Thevenot & Careri Page 205

४ सारंग सुत नीचन तें बिछुरत सप बलि रम जाई।

—साहित्य लहरी स प्रभुदयाल मीतल पद सं० १६।

५ सुधा गेह में करि की शोभा—साहित्य लहरी वही पद सं ९७।

६ सेसलता के पत्र सुधा ग्रह गहत साहित्य लहरी वही पद सं० ९८।

७ अधरनि की छवि कहा कहौं सदा स्याम अनकार।
बिच पवारे सरजहीं हरषत बरखत फूल।
कांति पांति रसनावली रही तमोल रंग भीज।
× × ×
सदर सुधर कपोल हो रहे तमोर भरिपूर।

—सूरसागर पद सं ३२३१।

जिस रूप म प्रस्तुत किया जाता है वह बीरी[1] (बीडा) कहा जाता था। ताम्बूल की पीक[2] (लालिमा) स कपोल लाल रहते थ। जब कपोलो तक लालिमा थी, तो अधरो की लालिमा तो उसम ही समाहित हो जाती है।

इस काल के प्रसिद्ध सदभ ग्रथ आईन अकबरी म बीडा बनान का ढग भी बताया गया है। एक पान म सुपारी तथा कत्था और दूसर म चूना लगाकर अलग-अलग लपटन के बाद रेशम स बाध लेत थ। कभी कभी उसम कपूर कस्तूरी आदि भी डालत थ। इस प्रकार पान का प्रयोग ओष्ठरजन' क लिए ही अधिकतर किया जाता था। हरिव्यासदवाचाय कृत 'महावाणी' म राधा को (राधा-स्तोत्र म) बीरी चर्विता[3] कहकर सबोधित किया गया है।

परमानददास न तबाल[4] का उल्लेख किया है। बीरी[5] का तो कई स्थलो पर उल्लख मिलता है। यहाँ उल्लेखनीय है कि बीरी का प्रयोग श्रीकृष्ण के सदभ म किया गया है।

पृथ्वीराज न वेलि क्रिसन रुकमणी री म तबोल[6] शब्द का प्रयोग किया है जिस पर डिगल का प्रभाव है।

पुहकर न रस रतन' म तमोल[7] शब्द का व्यवहार किया है। तानसेन ने खडिता नायिका क सदभ म पीक[8] का उल्लख किया है।

आग चलकर रीतिकाल म तो इसका विस्तार स वणन प्रत्यक कवि न किया है।

---

१ बीरी मुख भरि चिबुक डिठौना निरखि कपोलनि लाजत।
—सूरसागर वहा पद स ३२४६।

२ पीक कपालनि लाग।
—सूरसागर प० स [illegible]२५।

कपोल पीक' लपटाने।
—सूरसागर प० स ३२५४।

'पीक' कपोलनि हरिदन कै डिग।
—सूरसागर प० स० ३२८१।

३ महावाणी श्रीकृष्ण वृन्दावन म ३८।

४ प्रफुल्लित वदन तबोल भरे मुख गावत मीठा गारी।
—परमानन्ददास परमानन्दसागर प० स० ६१६।२।

५ प० स० ८१४ ८१५ ८१६ द्रष्टव्य है।

६ मकरन्द तबोल बीवन्न मुख मझि (६६वाँ छन्द)।

७ मुख तमोल चातुरिय भनि (अष्टादि खण्ड ७६)।

८ अधरन अजन बहु पीक पलक लाग।
—डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल—अकबरी दरबार के हिन्दी कवि स० ११६।

मुस्कान

नारी के सौंदय पर मुस्कान का अनुकूल प्रभाव पडता है। नारी का आकपण निश्चित रूप से द्विगुणित हो जाता है, यदि उसम मुस्कराहट और बाँकी चितवन का याग हो जाए। मुस्कान का अथ है—इस प्रकार स हँसना कि न आवाज हा और न दाँत ही दिखाई दें। लालिमायुक्त सुकोमल अधरा पर मुस्कान की आभा अमत की वषा करती है। मुस्कान को नारी के सौदय प्रसाधन म स्थान दिया जाए अथवा नही यह विवादास्पद हा सकता है, पर मुस्कान का महत्त्व स्वयसिद्ध है। प्रसाधनो मे हम बाह्य उपकरणो को स्थान देते है और इसका सीधा सबध अन्त मन से है, अतएव इस प्रसाधन के अन्तगत नही रखा जा सकता, पर निश्चित रूप म मुस्कान नारी का सौन्दय है।

स्वास्थ्य और सौन्दय की वद्धि के लिए मुस्कराहट का अत्यधिक महत्त्व है। पूव मध्यकालीन कवियों ने इसके स्वाभाविक रूप का वणन किया है, पर प्रसाधनों मे इसे स्थान नही दिया है।

तुलसीदास न कविनावली म राम लक्ष्मण और सीता क वनगमन के अवसर पर ग्राम वधुएँ उनस प्रश्न करती हुई चित्रित की है। एक वधू सीताजी से राम और लक्ष्मण का परिचय पूछती है। सीता क लिए लक्ष्मण का परिचय देना तो सरल था पर राम का परिचय उन्हान कुछ मुस्काकर (समझाइ कछ मुसकाय चली) ही दिया।

अष्टछाप के प्रमुख कवि कृष्णदास ने कई स्थलों पर मुस्कान का उल्लेख किया है। राधा के रूप चित्रण म स्वामिनी स्वरूप म इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। कुछ उदाहरण यहा द्रष्टव्य हैं

मधुर ईषद हास।[1]

तथा

मदुल मुसिकान बढयो परम अनुराग री![2]

× × ×

मद मुसिक्यानि।[3]

कृष्णभक्ति शाखा के राधावल्लभी सम्प्रदाय क कवि हरीराम व्यास ने षोडश शृंगार के सभी पदा मे 'मदहास' को स्थान दिया है

'मदहास' बसि बलि दामिनि जलधर अधर कपोल सुढारी।

तथा,

---

१ कृष्णदास पदावली पद स ४ ।

२ वही पद स ५४।

३ वही पद म ६२४।

४ भक्त कवि व्यासजी—स वासुदेव गोस्वामी पद स० ३६८ पृष्ठ २८६।

अधर सिंधु-सर राधामोहन बिहँसत दसननि मनि उज्यारी।[1]

इन्होंने मुस्कान की उपमा शरद शशि से दी है

हँसत ज्यों-ज्यों हो री ! त्यों-त्यों दसन

लसत, मनहुँ सरद ससि कोटि उज्यारी।[2]

पद्मावत में भी नखशिख में जायसी ने मुस्कान को स्थान दिया है

जहँ जहँ बिहँसि सभावहिं हँसी

तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी।[3]

तथा

चमक चौक बिहँसु जौं नारी

बीज चमक जस निसि अँधियारी।[4]

केशवदास ने रसिकप्रिया में 'षोडश शृंगार-वर्णन' में इसे स्थान दिया है

बोलनि हँसनि मदु चातुरी चितौनी चारु।[5]

केशव के टीकाकारों[6] ने इसका भाष्य करते हुए मुस्कान (हँसन) को शृंगार में स्थान नहीं दिया है। टीकाकारों ने अंगराग को ही पांच भाग करके सोलह शृंगार की गिनती पूरी कर दी है।

आगे रीतिकाल के कवियों ने इसका स्पष्ट और मुक्त रूप से वर्णन किया है। मतिराम ने इसका चित्रात्मक वर्णन किया है। पद्माकर[7] ने तो इसका जो चित्रण किया है वह बेजोड़ है।

---

1 वही पद सं० ३७ पृष्ठ २८७।

2 वही पद सं० ३५२ पृष्ठ सं० २८१।

3 पद्मावत दोहा १०७।

4 वही दोहा ४७७।

5 रसिकप्रिया ४३।

—केशव ग्रंथावली भाग १ पृष्ठ १४।

6 टीकाकारों में लक्ष्मीनिधिजी का विचार है

इन सोलह शृंगारों को करके बोल हँसी और सुन्दर चाल से प्रतिक्षण पतिव्रत का पालन करना चाहिए।

दूसरे सुप्रसिद्ध टीकाकार लाला भगवान दीन ने प्रिया प्रकाश के पृष्ठ ५६ पर लिखा है 'बोलनि चलनि हँसनि हेरनि इत्यादि सिंगार नहीं हैं। ये हावभाव हैं जो सिंगार को चोखा कर देते हैं।

7 गुम मुसकानि के सुमन करि दामन को देखहु दुचन्द कला कंद की कमाई-सी।
कहै पद्माकर त्यों साहिबी सुधा की सब ब्रजवसुधा में धा कहाँ धौं परी पाई-सी॥
गारिक छरा की मधुर की माधुरी को सुभ सारद सिरी को मिसरी की लूटि लाई-सी।
साँवरी सलोना के सलोने अधरान हों में मन्द मुसकान भरी मंजुल मिठाई-सी॥

यही कारण है कि बाद मे आने वाले कवियो ने इस शृगार का विशेष ध्यान रखा जिसके फलस्वरूप व न्द ने शृगार शिक्षा म जो सोलह शृगारो का परिगणन किया है, उसम तेरहवा[1] स्थान इसे ही दिया गया

अथ हास्य सिगार।१३।
हास जु च्यार प्रकार को, हसि हसि सुखद सुभाइ।
इहि तेरह सिगार त नीज लाल रिझाइ॥४६।

मेहँदी रचना

भारतीय सस्कृति के अनुसार सौभाग्यवती नारी के जीवन म मेहँदी का महत्त्वपूण स्थान है। इसका प्रचलन मध्यएशिया के पूर्वी तथा पश्चिमी क्षत्रो से लेकर भारत तक है। मुस्लिम सस्कृति प्रधान दशो म इसका पर्याप्त प्रचार होन के कारण यह धारणा फल गई है कि इसका प्रारम्भ मुस्लिम सभ्यता के प्रभाव स हुआ पर यह सत्य नही है। अरब देशो मे इसक लिए हिना शब्द प्रयोग म आता है, जो अरबी भाषा का शब्द है। इसका प्रयोग भारत म भी इत्र विशेष के साथ होता है पर मेहदी शब्द पृथक चला आ रहा है। किसी भी विदेशी पदार्थ के साथ उस पदाथ विशेष का नाम भी चला ही आता है। इत्र क साथ हिना शब्द का प्रचार है हो सकता है कि यह इत्र मुसलमान काल से प्रयोग म आना प्रारम्भ हुआ हो इससे पूव भारतीय महँदी से इत्र बनाना न जानते हो।

इतना निश्चित है कि महँदी शब्द इसस अधिक प्राचीन और शुद्ध भारतीय है। अगरचन्द नाहटा[2] ने १२वी शताब्दी स भी पूव नित्यनाथ सिद्ध क 'रस रत्नाकर' नामक ग्र थ म इसका उल्लेख बताया है जिसम सिद्ध होता है कि यह शब्द ८५० वष पूव भारत म प्रचलित था।

डल्लण महाशय जिनका समय ११०० ई० है कहते है कि यह महदी (मेन्दी) स० ७१२ क आसपास फारसी घोडों क साथ साथ भारत म आई थी।[3] पर इसस पूव भी सुप्रसिद्ध वद्यक ग्रन्थ सुश्रुत सहिता[4] म मन्यन्तिका के नाम से तीन बार महँदी का उल्लेख हुआ है

१ मदर्यन्तिका 'मदी इति लोके यस्या पिष्ट पत्र नखाना राग स्त्रियाः उत्पादयन्ति।

---

१ वन्द—शृगार शिक्षा पष्ठ २०।
२ अगरचन्द नाहटा—राजस्थानी और गुजराती म महदी सबधी लोकगीत सरस्वती वष ६ खड २ स ४ पष्ठ २७२।
३ रामनिवास वर्मा—राजस्थानी माडणा सन १९६१ पष्ठ ६ १०।
४ भडारकर इस्टिटयूट (पूना) के क्यूरेटर स्व परशराम कृष्ण गाडे के अनुसार।

२ मदयन्ती मेंदिका नखरजनी

मदयन्तिका, नखादिरागरजनी महदी। महीन्द्री इति प्रसिद्धा।

वस्तुत मदयन्तिका का प्रचार था, पर कुछ भिन्न अर्थ म। महेंदी के लिए मेंदिका शब्द सस्कृत म मिलता है जिसके साथ अन्य रूप मेंधिका तथा 'मधी' भी प्रचलित थ जिसका अर्थ मोनियर विलियम के सस्कृत कोष म रगने के लिए प्रयुक्त होन वाला पौधा, दिया गया है। यही शब्द कालान्तर म मे धी मधी मदही म 'द्' और 'ह' के विपयय से मेहँदी बन गया जिसके हिन्दी म आज मेहन्दी महँदी मेहँदी' मेंदी महँदी मिहँदी आदि अनक उच्चारण प्राप्त होते हैं।

मेहँदी का वनस्पतिशास्त्रीय नाम Lawsonia Alba है जो एक लैटिन शब्द है और अंग्रेजी में इसके लिए अरबी के समान Henna[1] शब्द ही प्रयुक्त होता है। उत्तर प्रदेश के दुआब बुन्देलखड बनारस रुहेलखण्ड तथा अवध सभी क्षेत्रो में मेहँदी ही समान रूप स चलता है।

मेहँदी सामान्यत तरावट देनेवाला पदार्थ है जिसका प्रयोग फट तलुओ सिरदद आँखो में जलन, दिमागी चिडचिडापन आदि में लाभप्रद होता है। महदी लगान के लिए पत्तियो को बारीक पीस लिया जाता है अथवा पिसी हुई मेहँदी में पानी मिला लिया जाता है। इसे हाथ से म थन करके लेही-सी तयार कर ली जाती है फिर दियासलाई की सीक से स्त्रियाँ अपन हाथा परो के तलुओ पर इसके माध्यम स सुन्दर चित्र और फूल पत्तियाँ बनाया करती हैं। नीबू का रस मिला लने स इसमें अधिक रग तथा निखार आ जाता है।

मेहँन्दी लगाने की यह विधि सवसुलभ व इतनी सामान्य है कि इस नारी के सोलह शृगारो में मध्यकाल में आकर प्रमुख स्थान प्राप्त हो गया

मेहदी कर-पद रचना नव, दसम अरगजा अग।

नारी शृगार के सोलह प्रसाधनो में (नवसत शृगार में) इसको कब से स्थान मिला यह प्रश्न विचारणीय है। वल्लभदेव के सकलित श्लोक तथा उज्ज्वल नील-मणि क राधा प्रकरण में इसका उल्लेख नही है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि कृष्णभक्ति शाखा के वल्लभ सम्प्रदाय के अन्तगत अष्टछाप के सवश्रेष्ठ कवि सूरदास न इसका कही उल्लेख तक नही किया है। अष्टछाप क अन्य कवियो म केवल कुभनदास न इसका उल्लख मात्र किया है परतु परमानन्ददास इसका हाय

---

१ List of the synonymus of the field and market garden crops vide Govt of India Circular letter no 44/160 Dated 7 12 1892
Henna had timely come to their aid and its use soon become universal Raverty (Tabaqat i Nasiri) 1124 for the discovery of the Henna plant in Sistan
K M Ashraf—Life and conditions of the people of Hindustan 1959 page 181.

के आभूषणों के साथ अवश्य उल्लेख किया है

नयग्रह गजरा जगमग नव पोहोची चुरियन आगे।
अचल सुहाग भाग्य की लहर हस्त ह मेंहदी दाग।[1]

आईन अकबरी म भी जो शृंगार प्रसाधनों का परिगणन किया गया है, उनम महँदी का उल्लेख नहीं हैं यद्यपि प्राय अनुवादकों न मेहँदी का उल्लेख कर दिया है। उसम १३वाँ शृंगार प्रसाधन 'हाथों को अलकृत करना' है लेकिन मेहँदी छोड उस स्थान पर 'हिना' का भी प्रयोग नहीं किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि अकबर के समय तक नवसत म यह परिगणित नहीं था।

सवप्रथम केशव न कविप्रिया तथा रसिकप्रिया म षोडश शृंगार म इस सम्मिलित किया है पर केवल 'अगराग' कहकर—जिसे प्राय सभी टीकाकार हाथों म मेहँदी रचाना स्वीकार करत हैं, और इस स्वीकार भी किया जा सकता है, क्योंकि केशवदास न 'कविप्रिया' म मेंहदी सयुक्त पाणि का उल्लेख किया है

राधिका रूपनिधान के पानिनि आनि मनौं छिति की छवि छाई।
दीह अदीहन सूक्षम थूल नगहीं दग गोरी की दौरि गुराई।
मँहदीमय बिंदु बने तिनमे मनमोहन क मन मोहनी लाई।
इंदुवधू अरविंद के मंदिर इंदिरा कौं मनौं देखन आई॥[3]

शृंगार प्रसाधनों म मेहँदी रचाने का काय विशेष रूप स शुभ तथा मागलिक माना जाता है। विशेषकर पजाब राजस्थान गुजरात तथा उत्तर प्रदेश म—कुछ स्थानों में तो विवाह की पहली रात्रि को 'महँदी की रात' कहा जाता है।

मेहदी की लालिमा प्रेम का प्रतीक है। जिस प्रकार हरी-हरी पत्तियों में लालिमा व्याप्त रहती है पर अदृश्य रूप में—उसी प्रकार सच्चा प्रेम भी कसौटी

---

१ परमानन्दसागर पद स० ६१६।

२ मूल कृति पृष्ठ १९०। जरट ने अपने अनुवाद में स्टनिंग द हैंड्स लिखा है और अलरूप महोदय ने 'हिना फॉर हैन्ड्स' कर दिया है।

३ केशव ग्रन्थावली भाग १ पृष्ठ २ २ छन्द ३०।

४ All women in India are in the habit of scenting their hands and feet with a certain earth (in French text—Passe port pausso poco posso either a pond a marsh or else clay or mud) which they call Mendy (Mehndi) which colours the hand and feet red in such a way that they look as if they had on gloves They do this because they can wear neither gloves nor stockings on account of the great heat which prevail in India

Niccolao Manucci—Storia Do Mogor Vol II London 1907 (Irvine)

पर कसे जान पर ही स्पष्टत निखार पर आता है। इसके आधार पर ही वियोगी हरि न वीरो को प्रोत्साहन देते हुए—उनके वीरत्व का प्रकाशित किया

होत सूर सरनाम के चूर चूर निज अग।
पिसत पिसत ज्यों सिला प मेहँदी लावत रग॥

महन्दी में छिपी हुई अदश्य लालिमा का कबीर न अति सुन्दर वणन करते हुए, इसमें आध्यात्मिकता का पुट दिया है

ज्यों मेहँदी के पात मे लाली लखो न जाय।
त्यो कन-कन मे ईस बस दुनिया देखे नायें॥

मेहन्दी रचाय परा वाली तथा अनक प्रकार क आलखन युक्त हाथा वाली नारी को देखकर तथा उसके करतल की लालिमा पर कौन माहित न होगा।

कला विलास में षोडश शृगार कला में भी इसका स्थान नही दिया गला है।[1]

ऐसा प्रतीत होता है कि मेहँदी का उपयोग चलता रहा पर नखसत में इसका परिगणन बाद में हुआ। नयिका के शृगार के रूप में महँदी का वणन प्राय दो प्रयोजना स हुआ है

१ महँदीजन्य सौदय से प्रभावित नायिका के प्रति नायक का मन स्थिति का चित्रण।

२ नायिका के बढे हुए सौदय द्वारा नायक के प्रेमोददीपन के लिए।

रीतिकाल में मेहदी का उल्लेख प्राय सभी कवियो की रचना में हुआ है।[2] रीतिकाल में बिहारी, पद्माकर मतिराम, विक्रम रसलीन तथा देव आदि सभी कविया ने इसका चित्रापम वणन प्रस्तुत किया है। यहा कवल बिहारी तथा घनानद के कुछ उद्धरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं जिसस महँदी प्रसाधन की लोकप्रियता सिद्ध होती है

धनानन्द ने तो मेहँदीयुक्त परो की लालिमा का विशेष स्वाभाविक वणन किया है

मिहदी रग वायनि रगल है सुठि सोधौं सुअगनि सग बसे।
तरुनाई प कोक पढ सुघराई सिखावति है रसिकाय रस।
घनआनन्द रूप अनूप भरी हित फदन मे गुन ग्राम बस।
सब भाँति सुजान न आन समान कहा कहौं आपत आप लस।

बिहारी न महँदी का बडा ही हृदयहारी वणन अनुप्रासमयी भाषा में प्रस्तुत किया है

---

१ कला विलास १६६६ पृष्ठ ११८।

२ डा० बच्चनसिंह—रीतिकालीन कवियो की प्रमव्यजना स० २०१५ पष्ठ १३।

गडे बडे छवि छाक छकि छिगुनी छोर छुट न।
रहे सुरग रग रगि वही नह दी महँदी नन।

महदी रचाने क बाद यह आवश्यक है कि कुछ दर तक उसे लगा हुआ ही छोड देना चाहिए। अगर महदी सूख नही जाएगी तो उसकी सुदर मनमोहक लालिमा कर पद मे न आ सकगी। इस तथ्य की ओर ही बिहारी ने अपने दोहे म सकेत किया है।

बयालीस लीला ग्रथ मे भी मेहदी का वणन यत्र-तत्र मिलता है

मेहदी रँग अनुराग सुरगा।
कर अरु चरन रचे तेहि रगा ॥

तथा

महँदी को रग फबि रह्यो नखमणि झलक अपार।
मनो चद कमलनि मिले रही न और सभार।

सामायत महदी हाथ म लगान के बाद कोई काय नही किया जाता, क्योकि इसका दर तक लग रहना आवश्यक है इसी भाव को प्रकट करन के लिए निम्न लिखित मुहावर प्रयुक्त किए जान लग

परो स उठकर चलन म असमथ—आलस्य का द्योतक
—परो मे मेहँदी लगी होना।

हाथों स काम करने म असमथ—आलस्य का द्योतक
—हाथो म महँदी लगी है।

इस महँदी लगे हाथ की असमथता का भाव लकर ही नायिका अपन नायक से कहती है

मेरे कर मेहदी लगी है नदलाल प्यारे।
लट उलझी है नकँ बसरि सँभार दे॥

राजस्थान म मेहँदी का प्रचलन अधिक है। राजस्थानी रमणियाँ पिसी हुई मेहँदी मे पानी मिलाकर लेही सी तयार कर गनगौर पर चूनडी और गुणो' तीज पर लहरिया और घेवर दिवाली म हाथ पर पान और गलीचा होली पर चौपड और चार बीजणी एव अय प्रकार क माडणे माँडा करती हैं। इसके अलावा अय त्योहारो पर्वों तथा मागलिक अवसरो पर अपनी इच्छानुकूल फूल, पाच पचेटा साटया का फाड फुलडिया आदि माँड लेती हैं।

महदी का रग एसा होता है कि पीसनवाले तथा लगानवाले दोना के हाथो म स्वत लग जाता है इसी भाव को लेकर रहीम न सुदर दष्टात का प्रयोग किया है

यो रहीम सुख होत है उपकारी के सग।
बाटनवारे को लगे ज्यों महदी को रग॥

इन पंक्तियों में कवि ने कितने गंभीर भाव को सहज रूप में मेहँदी के माध्यम से व्यक्त किया है।

हाथों में मेहँदी रचाने की अनेक विधियाँ हैं। किसी महीन सलाई या सींक से बुंदकियों द्वारा मेहँदी रचाने की भी प्रथा है। इन बुंदकियों की अप्रस्तुत योजना महाकवि सेनापति की पंक्तियों में द्रष्टव्य हैं

> मेहदी की बिंदकी बिराजै तन बीच लाल
> सेनापति देखि पाइ उपमा बिचारि है।
> प्रात ही अनन्द सों अरुन अरबिंद मध्य
> बैठी इन्द्र गोपिन की मानो पतवारि है॥

प्रातःकाल के विकसित कमल पर इन्द्र-वधुओं की पंक्ति बैठी हुई प्रतीत होती हैं ये मेहँदी की बुंदकियाँ। यही भाव इन पंक्तियों में है

> छवि रंग सुरंग बनें लगें इन्द्रवधू लघु या तन मे
> चित जो चहें दी, चकि सी रहेंदी केहि दी मेहदी इन पाँयन मे।

मध्यकाल तक, नारी के शृंगार के साथ ही मेहदी का वर्णन विशेष रूप से किया गया है और रहीम, कबीर आदि कवियों ने दृष्टांत रूप में तथा बाद में केशव सेनापति आदि कवियों ने इसका यथातथ्य तथा प्रेम के प्रतीक रूप में वर्णन किया है।

उत्तर मध्यकाल में मेहँदी का पर्याप्त वर्णन प्राप्त होता है। वृन्द ने 'शृंगार-शिक्षा' में सोलह शृंगारों में इसका परिगणन नहीं किया पर दुलही वर्णन में मेहँदी लगे हाथों का विवरण दिया है

> कंकन हाथ दिये मेंहदी, गति देखत ही रति जगन मे।[1]

हाथ में दर्पण तथा आरसी

शृंगार की सहायक वस्तुओं में मुकुर (दर्पण) का उपयोग हर काल में किया जाता रहा है। इसके बिना शृंगार करना संभव नहीं। संभवतः इसी कारण मध्यकाल के प्रारम्भ में करदर्पण[2] षोडश शृंगार में उल्लिखित किया जाने लगा। प्राचीन प्रसाधनों में इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता पर कई प्राचीन मूर्तियों के हाथ में दर्पण है। खजुराहो की एक प्रसिद्ध मूर्ति है जिसमें एक नारी आकर्षक मुद्रा में हाथ में दर्पण लेकर अपने शृंगार को निहार रही है। पृथ्वीराज रासो में रूपवती के हाथ में दर्पण का उल्लेख है।

सूरसागर में मुकुर तथा दर्पण का उल्लेख कई स्थानों पर मिलता है

---

१ वृन्द—शृंगार शिक्षा पृष्ठ ७ छन्द ८।

२ वल्लभदेव की सुभाषितावली में संकलित एक श्लोक में उल्लेख है ताम्बूल करदर्पण।

दपण हाथ म लिए शृगार करती हुई नारी।
(खजुराहो शिल्प)

बार बार प्रतिबिंब निहारति नागरि मन-मन रही लुभाई।
कर त मुकुर दूरि नहि डारति, हृदय मांझ कछु मिस उपजाई।[1]

तथा

मुकुर छाह निरखि देह की दसा गँवाई।
बियकी अँग अँग निरखि बार-बार रहे परखि ललिता चद्रावलि
कहूँ इतनी छबि पाई।
मन में कछु कहन चहे, देखत हि ठठुकि रहे, सूरस्याम निरखत दुति
तन सुधि बिसराई।[2]

साथ म दपण भी

दरपन ल कजराहि सँवारत।
सीसफूल अति लसत नग जरयौ, तापर सेस सीस सनि बारत।[3]

तथा,

चद उदौ मुख दखि री दपन, पाक लोक नर्तनि छबि परि क।[4]

दपण म कसर का आड (टीका) दखकर मोहित होना वणित है

कबहूँ केसरि आड रचति दपन हेरि कबहू भ्रू व निरखि रिस करि सकार।
निरखि अपनो रूप आपु ही बिबस भई, सूर परछाँहि कौं नन जोर।।[5]

राधा अपना रूप देखकर स्वय ही रीझ जाती है

अपनो रूप देखि रीझति है नकहु दपन दूरि न करति।[6]

मुकुर हाथ म लकर शृगार करना

करति अग सिगार बठी, मुकुर लीन्हे हाथ।[7]

माँग निकालन के लिए भी दपण का उपयोग होता था

माग सुधो पारि निरखि दरपन रहति।[8]

दपण की आवश्यकता अनुभव करके ही सुदरियों का अपने हाथ म आरसी (आदर्शिका) पहनने का प्रचलन बढ़ा होगा। मध्य काल म विदेशी यात्रियों[9] ने

१ सूरसागर पद स २८ ६।
२ वही पद स २९१।
३ वही पद स २८०७।
४ वही पद स २६२६।
५ वही पद स० २८ ८१।
६ वही पद स २८१६।
७ वही पद स २८२६।
८ वही पद स ३३२४।
९ कई यात्रियों न इसका विस्तृत वणन प्रस्तुत किया है जिनम से थेवेनॉट और केरिरी उल्लेखनीय है

Rings also are the ornaments of their fingers as they are in other pla

भी इसका विशेष वणन किया है।

सूर न शृंगार वणन म 'आरसी' का भी उल्लेख किया है जस

नन रँगीले चिहुर छबीले, काजर पीक आरसी' देख।
मरगज बसन अधर दसननि छत, नीकी लागी सदन रेख॥[1]

नन्ददास ने दपण का उल्लख किया है। परमानददास न भी इसका विवरण दिया है।

दपन निरत मुदरिया धरनी तेज पुज की नगरी।

तुलसीदास ने सम्भवत इसे ही कक्न का नग[2] कहा है।

रीतिकाल के कविया म घनानन्द और बिहारी ने इसका विशेष काव्यात्मक वणन किया है। रसलीन तथा देव ने भी इस आभूषण की छवि का विशेष उल्लेख किया है। इस प्रकार स्पष्ट और प्रमाणित है कि आरसी अथवा दपण (आइना) बहुत पुरान जमान से शृंगार का अभिन्न अग रहा है—और आज भी है।

माला धारण करना

स्वण, मोती, रत्नादि के बहुमूल्य आभूषणा के अतिरिक्त सौंदय की दृष्टि से फूला क सुन्दर हारो का प्रचलन वदिक काल स ही है। वदिक साहित्य म स्रक[3] का उल्लख मिलता है जिसकी रचना म फूलो का उपयोग किया जाता था। महाभारत रामायण आदि म फूलो से निर्मित सुगंधित माला पहनन का विवरण मिलता है। सीता वन म रहत हुए कमल के फूला की माला पहनती थी। दीन व्यक्ति भी गुजा की माला पहन लते थे। ऋतुओ के अनुसार भी शृंगार के पुष्प बदल जात थ। ऋतुसहार म इस प्रकार का उल्लेख मिलता है कि शकुन्तला भी

---

ces They wear a great many and as they love to see themselves they have always one with a lookin glass set in it instead stone which is an inch in diametre

—Surendranath Sen—Indian Travels of Thevenot & Carerie 1949 Page 53

In their fingers were rich rings and on the right thumb there was al ways a ring where in place of stone there was little round mirror having pearls around it

—Dr N L Mathur—Red Fort and Mughal Life Page 45

१ सूरसागर पद स ३३४३।

२ राम को रूप निहारति जानकी कक्न के नग की परछाँही।
(कवितावली प १६ १७)

३ मध्य काल के सन्दर्भ ग्रन्थ—रूपगोस्वामी कृत उज्ज्वल नीलमणि म जिन सोलह शृंगारों का विवरण मिलता है उनमें स्रग्विणी का उल्लेख है

कुसुमितचिकुरा स्रग्विणी पद्महस्ता।

उज्ज्वल नीलमणि राधा प्रकरण श्लोक ६

अपने गले म कमल के ततुओ की माला पहना करती थी। माला के अतिरिक्त, कालिदास के साहित्य म केश और कण का शृगार भी प्राय पुष्पा से किया जाता था। काञ्ची भी फूलों से बनती थी, ऐसा विवरण भी कुमारसभव म मिलता है।

जन साहित्य के अनुसार हार बनाने के अय उपादानो म बेंत मयूर पिच्छ, सीग, सीप, हड्डी बीज आदि प्रयुक्त होते रहे हैं। प्रत्येक प्रसाधिता नारी माला अवश्य धारण करती थी।

बौद्ध साहित्य[1] मे भी इससे पूव शरीर को सुवासित करने तथा सुशोभित बनान क लिए माल्याभरण महत्त्वपूण समझा जाता था। पाराजिक क अनुसार एक ओर डठल(एकतोवण्टिक) दोनों ओर डठल(उभयतोवण्टिक) फूलों का समूह (मञ्जरीत्र) सिदुवार के फूलो स बनी माला(विधूतिक) ललाट पर पहनी जाने वाली माला (बटसक), कानो म आवेप तथा गल म पहनी जाने वाली 'उरच्छद' कहलाती थी।

चोटी म जब माला धारण कर ली जाती थी तो मालामिस्सा (मालामिश्रा) वणी कहलाती थी। केशपाश को पुष्पो से गूथा जाता था

पुप्फपूरो मम उत्तमङ्गजो—थेरगाथा

नाटयशास्त्र मे, यौवन की वय सधि की अवस्था म स्त्रियो म जिन आवश्यक तत्त्वा का उल्लख किया गया है उनम माल्याधारण भी है। इसम अनेक प्रकार की मालाओं का उल्लेख मिलता

सम्पूण शरीर को ढकन वाली—वेष्टित
शरीर के एक भाग मे विस्तत रहे—वितत
अनक पुष्पसमूहो से गुथी हुई—सघाटय
बीच-बीच मे विपम गाँठ ग्रथतम
जा स्पष्ट है—अवलम्बित
एक ही प्रकार के पुष्पो से गुथी—मुक्तक
अनेक पुष्पमयी लताओ की माला—मजरी
अनक पुष्पगुच्छ माला के रूप म—स्तवक।

सोमेश्वर के मानसोल्लास के माल्यापभोग[2] म मालती, मल्लिका आदि फूलो की माला 'सघाटय, वक्षस्थल तक ढक लेने वाली वेष्टित' तथा एक ही प्रकार के पुष्पों को 'मुक्तक का उल्लेख मिलता है।

---

१ डा० कोमलचद्र जन—बौद्ध और जन आगमों में नारी जीवन सन १९६७ पृ० २०६ १०।

२ सोमेश्वर कृत मानसोल्लास का साम्कृतिक अध्ययन १ ४२ ४५ (मानसोल्लास ३।७)।

यस तो सम्पूण भारत म फूलो का महत्त्व स्वयसिद्ध है पर विशेप रूप स व्रज मे तो फूला की बहार रहती है। फूल मडली नामक अनेक उत्सवा का आयोजन हाता है। ग्रीष्म म फूला की बहार और फूलो स सजे बँगल दशनीय होत हैं।

मर्यादावादी तुलसीदास न भी 'रामचरितमानस म ऐसा उल्लेख किया है कि एक बार श्रीरामचद्र न स्वय अपन करकमला स फूल तोडकर सीताजी का शृगार किया

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निजकर भूषन राम बनाए।[1]

अष्टछाप के लगभग समस्त कवियों ने फूलो के शृगार का विवरण दिया है। इनके कुछ पदा म तो सम्पूण शृगार ही फूलो स किया गया है

सूरदास

करि शृ गार सब फलन ही को, सुमन सुगध माल पहिराए।[2]

तथा

फूलन नख सिख सिंगार।[3]

तथा

करि सिंगार सब फूलनि ही कौ।

गोविन्दस्वामी

कुसुमनि के आभूषण, कुसुमनि के परदा।[5]

तथा

पिय प्यारी की बेनी बनावत, फूल के हार सिंगार करत।[6]

परमानन्ददास

फूलन की सेज फूलन गलमाला।[7]

सूर ने केश रचना क साथ भी फूला के शृगार का वणन किया है

अति सुदेस मदु चिकुर हरत चित गूथे सुमन रसालहि।[8]

---

१ तुलसीदास—रामचरितमानस गटका पष्ठ ४ ६।
२ सूरसागर पद स ३४४६।
३ वही पद स ३५३५ (पूरा पद फूलो पर ही है)
४ वही पद स ३५१।
५ गोविन्दस्वामी पद स १४६।
६ पद वही स० १४६।
७ परमानन्दसागर ६२८।
८ सूरसागर पद स १६७३।

परमानंददास ने फूलों की माला के साथ फूलों के गजरों का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार माला धारण करना भी शृंगार में स्थान पाता रहा है।

महावर

भारतीय संस्कृति के अनुसार, सौभाग्यवती नारी के शृंगार प्रसाधनों और सुहाग चिह्नों में पाँवों का शृंगार भी विशिष्ट स्थान रखता है। पावों को कई प्रकार के अलंकारों से भी सज्जित और अलंकृत किया जाता है। हाथों के साथ पावों में मेहँदी लगायी जाती है, किन्तु विशेष रूप से पाँवों का शृंगार प्रसाधन 'महावर' ही है। महावर को 'जावक (यावक) और अलता (अलक्तक) भी कहते हैं।

महावर एक प्रकार की लाख से बना हुआ लाल रंग होता है जिसे सौभाग्यवती स्त्रियाँ बड़े चाव से लगाती हैं। कलापूर्ण रीति से महावर लगाने से पैरों की शोभा द्विगुणित हो उठती है। पैरों को स्वच्छ करके सुन्दर ढंग से महावर लगाया जाता है। इस प्रकार महावर लगे गोरे-गोरे पाँव देखते ही बनते हैं। श्याम वर्ण के पाँवों पर भी महावर अपनी शोभा छिटका देता है।

महावर की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए नागरी प्रचारिणी सभा के कोश[1] में संस्कृत (महावर्ण?) से इस शब्द को व्युत्पन्न किया गया है। यह शब्द कब अस्तित्व में आया यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता पर प्राकृत काल में इसके लिए 'जावय'[2] (सं० यावक) तथा अलत अलत्तय[3] शब्द प्रचलित थे। अलता' या अलक्तक से ही विकसित हुआ है। लाख से बना लाल रंग जो पैरों को रंगने के काम में आता था जावक या अलक्तक कहलाता था। इसके प्रयोग से शरीर के स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव होता है यह स्पष्ट नहीं। कुछ लोगों ने लाक्षारस का संबंध इसके स्तम्भक गुण के कारण स्त्रियों की शरीर शुद्धि से जोड़ा है। परन्तु इतना जरूर है कि पैरों पर तेल लगाने का विधान आयुर्वेद में भी है। चरक के अनुसार पैरों में तेल लगाने से रूक्षता स्तब्धता थकान पैरों का सो जाना आदि शीघ्र दूर हो जाता है। पैरों में सुकुमारता बल और स्थिरता आती है, दृष्टि बढ़ती है वायु शान्त होती है।

पाँवों के शृंगार हेतु प्रयुक्त शब्द निरंतर बदलते रहे पर इस शृंगार का प्रचलन भारत में काफी प्राचीन है। प्राचीन भरहुत शिल्प में महावर से भरे हुए

---

१ संक्षिप्त शब्दसागर, पृ० ८६१।
२ पाइअ सद्द महण्णवो पृ० ३५५।
३ वही पृ० ७३।
४ वेदिदेव विद्यालंकार—प्राचीन भारत के प्रसाधन १९५८ ई० पृष्ठ ८८।

आम्रफल जस पात्र हैं।[1] प्राचीन युग तथा जनपद युग म भी पैरो क तलव तथा एडी म लालिमा लान क लिए इसका प्रयोग होता था। इसक प्रमाण मिलत हैं।

जैन और बुद्ध के समय के साहित्य म भी सौ दय प्रसाधना क विवरण म लाक्षारस (अलक्तकवता पादा[2]—थर १६।४) लगाया जाता था। धूतविट सम्वाद"[3] म इसका उल्लेख मिलता है। पादताडितक[4] म आलेख्यवणक पात्र स मयूरसेना क पर रँगन का विवरण है। लाक्षारस[5] स पर म पल्लव की आकृति बनाई जाती थी और अगूठे पर तिलक बनाया जाता था। नाट्यशास्त्र के अनुसार, परा म अशोक के पल्लव की आकृति बनाई जाती थी।

स्त्रिया क चार प्रकार क मण्डन[6]—परिधय कचधाय, देहधाय तथा विलपन मान गय हैं। चित्रवास (परिधय) पुष्पादुभेदम (कचधाय) विकल्पात् (देहधाय) लाक्षाराराम (विलेपन) क अनुसार महावर विलेपन के अ तगत आता है जिसे कालिदास ने लाक्षाराग कहा है। कालिदास न अलता के लिए कभी रागलखा, कभी पादराग', कभी लाक्षारस कभी अलक्तक, कभी 'राग रखा वि यास', कभी 'चरणराग कभी द्रवराग कभी निर्मितराग आदि शब्दों का प्रयोग किया है। 'राग रखा-वि यास श द से ऐसा प्रतीत होता है कि अलता लगान की भी कला विकसित हो चुकी थी। मालविका क चरणा को अलक्तक से सज्जित किया गया था। स्त्रियाँ तो इस कला म प्रवीण हुआ ही करती थी, पुरुष भी इस कला मे दक्ष होत थ।[8]

कुमारसभव' म कवल रजयित्वा (७।१६) का उल्लख किया गया है। पावती के चरणा म जब सखी महावर लगा चुकी तब ठिठोली करत हुए उसने आशीर्वाद दिया कि तुम इन परो स अपने पति के सिर की च द्रकला का छुओ। कालिदास ने अनेक स्थलो पर इसका बडा ही चित्रमय वणन प्रस्तुत किया है। मेघदूत म उ हान यक्ष द्वारा मघ स कहलाया है कि वह फूलो स सुगन्धित तथा सु दरिया के परो म लगाये गये लाक्षारस से (पादराग) चिह्नित महलो म इस उज्जयिनी की शोभा दखते हुए माग की थकावट मिटाए।

---

१ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल—भारतीय कला सन १९६६ पष्ठ १८७।
२ डा कोमलच द जन—बौद्धकालीन और जन आगमों म नारी-जीवन १९६७ पृ०२ ९।
३ डा० मोतीचन्द्र—शृंगार हाट १९६ ।
४ वही।
५ अमरकोष के अनुसार लाक्षाराक्षा लतु क्लीव यायोऽलक्तो द्रमामय ।
६ कचधाय देहधार्यं परिधर्य विलेपनम्। चतुर्धा भूषणं प्राहु स्त्रीणामन्यच्च दशिकम।
७ लाक्षाराग चरणकमलन्यासयोग्य —मेघदूत उत्तर मेघ १२।
८ डा० गायत्री वर्मा—कालिदास के ग्रथों पर आधारित तत्कालीन भारतीय सस्कृति १९६३ पृ० २३६ २३७।

बाण ने हर्षचरित तथा कादम्बरी में इस चरणराग का चित्रमय वर्णन किया है। बाण साहित्य में 'अलक्तक' शब्द का प्रयोग ही विशेष है। कादम्बरी में तो इसके प्रयोग भरे पड़े हैं। अलता लगे चरण कमलों के पड़ने से सारी भूमि ही मानो पल्लवमय हो गई—सालक्तकपदकमलविन्यासैश्च पल्लवमयमिव क्षितितलम।[1] महावर लगे पैरों के लिए एक से एक नवीन उपमान जुटाये गये हैं। बाण उसे कमल के ऊपर पड़ती नई धूपवाली कमललता के समान समझता है तो श्रीहर्ष सूर्य की कान्ति के तुल्य।

मध्यकाल में आकर जब शृंगारों की संख्या 'सोलह' निश्चित हो गई उसमें इसका उल्लेख मिलता है। वल्लभदेव के सकलित श्लोक में इसे 'चरणराग'[2] कहा गया है तो उज्ज्वल नीलमणि में 'अलक्तक'[2] का उल्लेख है। मध्य युग में मेहँदी का प्रचलन भी मुसलमानों के प्रभाव से बढ़ गया अतएव हाथ पैर दोनों में मेहँदी से ही शृंगार किया जाता था जिसके फलस्वरूप आईन अकबरी में अलकरण को ही लिया गया है।

कुतुबन की मिरगावती में इसका सर्वप्रथम स्पष्ट उल्लेख मिलता है

चलत अन्त तरुवह क पावा। जानहु घोर महावर लागा।[3]

जायसी ने पद्मावती के नखशिख में चरणों के विशिष्ट आभूषणों का तो वर्णन किया है पर पैरों के तलुओं की लालिमा का वर्णन कर इस शृंगार को सम्पूर्ण कर दिया है

कँवल चरन अतिरात बिसेखे। रहहिं पाठ पर पुहुमि न बखे।
देवता हाथ हाथ पगु लेहीं। पगु पर जहा सीस तहँ देहीं॥[4]

नानदीप में जावक का विवरण है

पायन जावक सोभा दीहा।
जावक जग सोभा कहँ लीहा॥

सूरदास ने महावर के अनेक चित्रमय वर्णन प्रस्तुत किये हैं। सूरसागर में 'महावर' के लिए दो शब्द आये हैं

१ जावक[5]

नखनि रग जावक की सोभा, देखत पिय-मन भावत।[6]

---

१ चरणयो रागोरण मवला।
२ राधालक्तोज्ज्वलाग्नि स्फुरित।
३ मिरगावती (स० परमेश्वरी लाल गुप्त)—७३।
४ पद्मावत दोहा ११८।
५ करहला के उत्तर में खदिरवन के समीप ब्रज में जाव वन है जहाँ यह माना जाता है कि श्रीकृष्ण ने लाडिलीजी के चरणों में जावक लगाया था।
६ सूरसागर पद स १६७२।
अन्य प्रयोगों के लिए द्रष्टव्य—पद स ३२६४।

२ महावर[1]

सूर ने महावर का विशेष उल्लेख किया है। महावर के साथ 'महुवरि' शब्द रूप भी मिलता है। विवाह के समय प्राय वधू अपने पैरों में मेंहँदी और महावर लगाती है—आज भी इसका प्रचलन है। सूरदास ने कृष्ण के जन्म महोत्सव पर भी इसका उल्लेख किया है। महावर लगाना उस अवसर के उल्लास का सूचक है

नाइन बोलहु नवरंगी हो ल्याउ महावर बेग।
लाख टका अरु झूमका देहु, सारी दाइ कौं नग॥[2]

उपमान रूप से भी महावर का प्रयोग किया गया है

मानहुँ मीन महाउर धोयें।[3]

विशेष रूप से नखों का प्रसाधन

नारी बदन सूयन जघन। पाइन नूपुर बाजत सघन।
नखनि महावर खुलि रह्यौ।[4]

महावर का रंग सुन्दर होने के कारण उसमें ही पाग रंगी है।

व्यंग्य के साथ कृष्ण के संदर्भ में

अंजन अधर, ललाट महाउर, नैन तमोर लवाए।[5]

'महावर' विशेष रूप से पाँव रँगने के ही काम में आता था पर श्रीकृष्ण की पाग के साथ भी इसका उल्लेख मिलता है

पिय छबि निरखि हँसति तिय भारी।
कहा महाउर पाग रँगाई यह शोभा इक न्यारी।[6]

ब्रज की वनिताओं के इस आभूषण की प्राय चर्चा है

चरन महावर नूपुर मनिमय, बाजत भाँति भली।[7]

साहित्यलहरी में 'जावक' का चमत्कारपूर्ण वर्णन है

---

१ चित्रकला के अन्तर्गत स्त्री चित्रों में हाथ में मेंहदी पैर में महावर आदि लगाकर शृंगार करना या अलंकृत करना— मोठी महावर कहलाता है।
—रायकृष्णदास—भारत की चित्रकला सं० २० ३ पृ० ८३।

२ सूरसागर पद सं० ६६८। अन्य पदों में उल्लेखनीय हैं—२२६२ २१२१ ११११ ११२४ ३११० ३११२ ३११२ ११३७ ११४० ३११२ ३१३१ १२४६ ३२२१ १२६० १२६२ आदि।

३ सूरसागर पद सं० ३२८१।

४ वही पद सं० १३६८।

५ वही पद सं० ३१२१।

६ वही पद सं० ३१३८। पद सं० ३२२२ भी द्रष्टव्य है।

७ वही पद सं० ३१२५। पद सं० १२६३ भी द्रष्टव्य है।

८ वही पद सं० ३२१२।

बिन दिय बिपरीत कवजा, पगन लाली भार।[1]

परमानददास ने केवल 'जावक' का ही प्रयोग किया है

पीन पिडुरिया तसोई चरनन जावक दीनो ललिता।[2]

छीत स्वामी ने जावक (पद स० १७३) और नन्ददास न 'महाउर' का उल्लेख किया है

अरी प्यारी क लाल लागे देन महाउर पाय।
जब भरि सींकहि चहत स्यामघन दीज चित्र विचित्र बनाय।
रहत लुभाय चरन लखि इकटक बिबस होत रग भरयो न जाय॥[3]

कृष्णदास के पद म महावर का विवरण इस प्रकार है

चरन महावर मनिमय नूपुर सुबन बनी जु जडाउ की जेहरि।[4]

ध्रुवदास ने 'बयालीस लीला तथा शृगार सत म जावक का चित्रमय वर्णन किया है

जावक सुरग रग मनहि हरत है।
नूपुर यतन खचे दीप से बरत है।[5]

हरिराम व्यास ने नखो म महावर तथा तलुओ म कुमकुम का उल्लेख किया है

तरुवनि कुमकुम नखनि महावर
पद मगमद चूरा चौधारो।[6]

चतन्यमत के कवि रामराय न भी मजु महावर' का ही प्रयोग किया है

कटि किंकिनि पद मजु महावर रामराय पीवत पयवारी।[7]

रहीम न ता रखा मे जावक को अवक्वा के रूप म वर्णित किया है।

महाकवि केशव ने अलक्तक महावर तथा जावक तीनो शब्दो का प्रयोग किया है और इनको सोलह शृगारो म स्थान दिया है

---

१ साहित्य लहरी पद ३२।
  कवजा का उल्टा जावक'—महावर।
२ परमानददास र पद स० ६१६।११।
३ नन्ददास ग्रथावली प ३४७ पद स ६२।
४ कृष्णदास पद स० ८ ।
  वही पद स ६० ललित महावर के लिए द्रष्टव्य है।
५ शृगार सत (१८)।
६ भक्त कवि व्यास जी (स० वासुदेव गोस्वामी), स० २००६ पृ० २८७।
  निम्बार्क सम्प्रदाय के हरिव्यासदेवाचाय ने भी महावाणी (पद स० १६८) में महावर का ही उल्लेख किया है।
७ चतन्यमत और ब्रज-साहित्य (स० प्रभुदयाल मीतल) प० १४७।

रामचन्द्रिका मे नखो के साथ

बिसुद्ध पाद-पद्म चारु अगुली नखावली।
'अलक्तजुत' मित्र की सुचित्त-बठकी भली ॥[1]

पावो के साथ 'जावक'

कठिन भूमि, अति कोवरे, जावकयुत' सुभ पाइ।[2]

सोलह शृंगारो के वणन मे

जावक सुदेश केस पास को सुधारिबो।[3]

नखशिख वणन' म कविवर केशवदास न जावक का पूरा विवरण प्रस्तुत किया है। रसिकप्रिया म प्रच्छन्न स्वाधीनपतिका क लक्षण म

महावर पाइ इवाइ विवाव।[5]

रीतिकाल म 'जावक' का उल्लेख बिहारी पद्माकर, मतिराम भिखारीदास, बेनी देव आलम आदि और 'महावर का बिहारी, देव मतिराम, बेनी, घनानद, सेवक आदि कवियों न किया है।

बिहारी क वणन तो हृदयहारी हैं। नायिका के पाँव की एडी की स्वाभाविक लालिमा का चित्रमय वणन द्रष्टव्य है

पाय महावर देन को नाइन बठी आय।
फिरि फिरि जानि महावरी एडी मीडत जाय॥

सूयमल ने पर मंडिने' का कितना स्वाभाविक वणन किया है

नायण आज न मौड पग', काल सुणीन जग।
धारां लागीज धणी तौ दीज घण रग॥[6]

१ केशव—रामचन्द्र चद्रिका—३१।१३४।
२ वही ३१।३४।
३ रसिकप्रिया ४३।
कविप्रिया १७।
४ वही ७ ८।
५ रसिकप्रिया ७।५।
अन्य उल्लेखो के लिए द्रष्टव्य है
प्रकाश खडिता—केशव ग्रथावली भाग १ प ४२।
राधिका को शृगार—केशव ग्रथावली भाग १ प ७८।
६ हे नाइन आज मेरे पाँवों को मत रग। कल यद्ध सुना जाता है। यदि पति धारा तीथ में स्नान करें तो फिर खूब रग देना।
—डिंगल मे वीर रस, पृ० ८७।१७।

डिंगल म मांडना—चित्रित करना महावर आदि से रगने के अथ म प्रचलित है। यह स० मे 'मड' है और प्राकृत म मडावण' सजाना।

रीतिकालीन कवियो ने नायिका की सुकुमारता को भी महावर के माध्यम से 'यजित किया है। माग म पाँव धरन मात्र से एडी पर जो ईपत भार पडता है उससे लगता है मानो जावक का रग ढरक रहा हो। ऐसी नायिका के सुकोमल पांवा म नाइन भी महावर लगाने से झिझकती प्रतीत होती है।

कविवर व न शृगार शिक्षा[1] म जावक को चौथा महत्त्वपूण शृगार-प्रसाधन स्वीकार किया है।

इस प्रकार स्पष्ट और प्रमाणित है कि नारी के कोमल पावा की देखभाल और सुदरता क लिए यह शृगार आवश्यक ही नही, स्वास्थ्यवद्धक भी है।

आभूपण

अलकारो का प्रयोग भारत म सिंधु सभ्यता क युग से ही चला आ रहा है। पहले पहल मूल रूप से अलकारों के दो विभाग किए गए

१ सम्भार—जो ऊपर स पहन जात थे।

२ बध—य बधनीय भी कहलाए। शरीर पर बाधे जान के कारण बधनीय' नाम दिया गया।

भरत के नाटयशास्त्र (२३) म चार प्रकार के अलकारा का उल्लेख है

१ आवध्यम—जो छिद्र द्वारा पहना जाए जस कणफूल बाली आदि।

२ बधनीयम्—जो बाँधकर पहना जाए जसे बाजूबद, पहुची, शीशफूल आदि।

३ प्रक्षेप्य—जिसम कोई अग डालकर पहना जाए जसे कडा चूडा, मुदरी।

४ आरोप्य—जो किसी अग म लटकाकर पहना जाए, जसे हार कण्ठमाला, चम्पाकली आदि।

अगविज्जा' मे आभूपण के तीन प्रकार बताए गए हैं पर यह विभाजन पदाथ धातु आदि के आधार पर है

१ पाणजोणिय—प्राणिया क शरीर के किसी भाग स बन हुए—जसे शख मुक्ता हाथी-दाँत, सीग आदि।

२ मूलजोणिय—काप्ठ, पुप्प फल पत्रादि क बन हुए।

३ धातुयोनिगत—सुवण, रूपा, तावा, लाहा त्रपु राँगा आदि स निर्मित।

---

१ शृगार शिक्षा ३६ तथा ३७।
दोजत पाइ प्रवान्कैं महा महाउर रग।
इहि चौथे सिंगार तें पिय सग उपजत रग॥३६॥

विभिन्न काल में आभूषणों की संख्या घटती बढ़ती रही। मध्य काल में आकर १२ आभरण शृंगार की रूढ़ि बन गए। जायसी ने भी इसकी ओर पद्मावत में संकेत किया है

बारह अभरन एइ बखाने। ते पहिर बरहो असथाने।[1]

रूपगोस्वामी ने 'उज्ज्वल नीलमणि'[2] में ये आभूषण इस प्रकार गिनाए हैं

दिव्यश्चूडामणीन्द्र पुरटविरचिता कुण्डलद्वन्द्वकाञ्ची
निष्काश्चक्रीशलाकायुग वलयघटा कण्ठभूषोर्मिकाश्च
हारास्तारानुकारा भुजकटकतुलाकोटयो रत्नक्लृप्ता
स्तुङ्गा पादांगुलीयच्छविरिति रविभिर्भूषणैर्भाति।

इनसे मिलते जुलते बारह आभरणों का उल्लेख अन्य कवियों की रचनाओं में भी मिलता है जिनमें से पद्मावत तथा सूरसागर उल्लेखनीय है।

आगे चलकर आईने अकबरी[3] में तो यह संख्या ३६ हो गयी।

शीश के आभूषण

सिन्धुघाटी सभ्यता के युग से ही सिर को आभूषणों से सज्जित करने की परम्परा चली आ रही है। शीर्षभाग होने के नाते मानव ने आदि युग से ही इसकी ओर विशेष ध्यान दिया है। केश प्रसाधन तथा शिरोभूषण की प्रक्रिया साथ साथ चलती आ रही हैं। केश प्रसाधन पर विस्तार से चर्चा की जा चुकी है अतएव यहाँ तत्सम्बन्धी आभूषणों का ही विवरण देना अभीष्ट है।

प्रागैतिहासिक काल की सभ्यता—मोहन जो-दड़ो और हड़प्पा की खुदाई से जो सामग्री प्राप्त हुई है उसके आधार पर निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उस युग में भी केशों को आकर्षक बनाने के लिए आभूषणों से सजाया जाता था। इन स्थानों से प्राप्त सामग्री में केशों के नीचे बाँधने के 'पत्रक' मिले हैं, जिनका

---

१ जायसी—पद्मावत दोहा २९६।
तथा दोहा ३०० भी द्रष्टव्य है— अस बारह-सोरह धनि साज।

२ उज्ज्वल नीलमणि राधा प्रकरण १०।
(१) चूडामणि (२) कुण्डल युगल (३) निष्क (हार की तरह का आभूषण) (४) काँची (करधनी) (५) चक्री शलाका (कानों के ऊपरी भाग में चक्र की आकृति का) (६) कण्ठभूषा (७) ऊर्मिका (अंगुली की अंगूठी) (८) तारों जैसी आकृति का हार (९) कंकण युगल (१०) अंगद (११) पैरों की अंगुलियों के रत्नजटित आभूषण (१२) नूपुर।
शब्दकल्पद्रुम में (पृ २१७६ पर) चार प्रकार के आभूषण वर्णित हैं
तच्चतुर्विधं आवेध्यं बन्धनीयं क्षेप्यं आरोप्यं चेति।

३ आईने अकबरी जरेट का अनुवाद पृ० १४३।

विवरण इस प्रकार है

माथे पर गोलाई मे बाधने के लवे सुनहरे पात मिले हैं जो पतल फीते की भाति हैं। इनके दोनो सिरा पर बाधने के लिए महीन सुराख हैं (लबाई १६ इंच और चौडाई १।२ इच)।

जूडा बाँधने की प्रथा भी उस युग म थी क्योकि उसमे प्रयुक्त विभि न कांटे खुदाई म मिले हैं—जिनका विवरण डा० वासुदेवशरण अग्रवाल[1] ने इस प्रकार दिया है

१ दो कृष्ण मग पीठ फरे हुए दिखाए गए हैं। २ सिरे के आमने सामन दो घिरारे दिखाए गए हैं। ३ हाथी-दाँत के बन एक नमून के सिरे पर एक लवे सीग वाली पहाडी बकरी बनी है। ४ तीन ब दर गलबहियाँ की मुद्रा म हैं। ५ कमल के फुल्ले की कणिका। ६ कत्ते जसा सिर दिखाया गया है। ७ अ य प्रकार। इन विभि न प्रकार क काटो स जूडा बनान की प्रथा सिद्ध होती है, साथ ही यह ज्ञात होता है कि आदियुग की स्त्री भी कितनी प्रसाधन प्रिय थी।

व सिर पर पंखों जसी कोई चीज पहनती थी। नारिया अपन बाल कई प्रकार से बनाती थीं। बाल बनाने म हाथीदाँत की कघी का भी प्रयोग होना था।[2]

वदिक काल मे भी केशो के प्रसाधन का उल्लेख मिलता है। ऋग्वद म विविध प्रकार के केश प्रसाधन तथा अथववेद म कघे[3] का उल्लेख मिलता है। उस काल म स्त्रिया के सिर के दो आभूषण विशिष्ट थे—१ कुरीर २ ओपश। कुरीर[4] वस्तुत स्त्रियो का मुकुट था। डा० राय गोवि दच द्र इसको हडप्पा के मोरपख की भाँति मस्तक पर सीधा खडा आभूषण स्वीकार करते हैं। ओपश[5] आभूषण आज के बेन्दी की भाँति कदाचित् मस्तक के चारों ओर लपेटकर पहना जाता था। यह केश का वेष्टन जान पडता है। कुम्ब नामक अलकार भी सिर पर धारण किया जाता था। पाणिनि काल म स्त्रिया के केश क अलकार कुम्बा' कहा गया है। फूला की माला—जो मस्तक पर धारण की जाती थी—स्रग कही गयी। माँग का टीका 'ललाटिका कहलाया। भरत के नाटयशास्त्र म चूडामणि शीषजाल मुक्ताजाल वणीकज्ज, शिखापाश शिखाजाल शिखिपात्र आदि कई प्रकार के आभूषणा का उल्लेख मिलता है। मथुरा मे शुग और कुषाण-

---

१ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल भारतीय कला सन् १९६६ प ३६।

२ डा० सत्यप्रकाश—मोहन जो दडो की नारी सा हिन्दुस्तान १६ फरवरी १९६४।

३ अथववेद १४।१।५५ तथा १४।२।६८।

—डा प्रशान्त कुम र वेगालकार—व दिक साहित्य मे नारी पृ० १३६।

कुरीर—एक प्रकार का सिर का वस्त्र। आप्टे।

५ डा० राय गोवि दच द्र—व दिक युग के भारतीय आभूषण १९६५।

काल[1] की उपलब्ध कलाकृतियों में केशों का अपूर्व शृंगार किया हुआ है। 'कपिशा' से मिले एक फलक पर अंकित युवती का केशपाश विशेष प्रकार का है—जिसमें ऊँचे घेरदार जूड़े के ऊपर एक रेशमी उत्तरीय बाँधा गया है। भारी भारी फूलों की मालाओं से सिर को गूँथा जाना 'पुष्पशेखर' कहलाता था। 'अंगविज्जा'[2] में ओचूलक, यादिविणद्धक, अपलोकणिका, सीसापक—चार आभूषणों का विवरण मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि जन समाज में जूड़े में फूल खोंसा जाता था, अथवा फूलों की वेणी या कस्तूरी बनाकर लगायी जाती थी। जिस ऋतु में जो पुष्प होते थे, उन्हीं से केश शृंगार किया जाता था। श्रीमद्भागवत (१०।५।११) में भी ऐसा उल्लेख आया है कि इतने अधिक पुष्पों से शृंगार किया जाता था कि मार्ग में चलते समय उनके केशपाश से फूलों की वर्षा-सी होती जाती थी।

कालिदास के साहित्य में अनेक स्थलों पर पुष्पधारण का उल्लेख मिलता है। उस काल में सिर पर अनेक प्रकार के पुष्पों की मालाएँ धारण की जाती थीं, जिनका विवरण पृथक् दिया गया है।

बाण-साहित्य में ऐसा उल्लेख मिलता है कि सीमन्त में एक मणि पहनी जाती थी—जिसका नाम चूडामणि था यही सीमन्तचुम्बी भी कहलाता था। इसे ही 'चूडामणिमकरिका' भी कहा गया है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल[3] ने इसे ही चटुलामणि कहा है। स्त्रियाँ सीमन्त में 'शशिकला'[4] नामक मुक्तामय अलंकार भी धारण करती थीं।

हेमचन्द्र[5] ने दो अलंकारों का उल्लेख किया है

टिप्पी टिक्क तिलए टिक्क (टिप्पी—टिक्क तिलकम्)

यही कारण है कि प्राकृतकोश[6] में टिक्क के दो अर्थ दिए गए हैं

१ टीका तिलक।

२ सिर का स्तबक, मस्तक पर रखा हुआ गुच्छा।

इनके अतिरिक्त एक और 'चूला' या शिरोमणि, नामक आभूषण का भी उल्लेख मिलता है। इससे ही चूडामणि बना होगा। वर्ण रत्नाकर[8] में वर्णित

---

१ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल—भारतीय कला १९६६ ई० पृ० २७२ २७३।
२ अंगविज्जा १९५७ ई० प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी।
३ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन १९५३ ई० पृ० ३९४।
४ (हरविजय २८।३) डा० रामजी उपाध्याय—प्राचीन साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका।
५ देशीनाममाला ४।३।
६ पाइअ सद्द महण्णवो पृ० ३९९।
७ वही पृ० ३३ यही चूडा है।
८ डा० भुवनेश्वर प्रसाद गुरुमैता—वर्णरत्नाकर का सांस्कृतिक अध्ययन १९६५ पृ० ९८४।

"शखर भी यही है। इस सब विवरण स यही सिद्ध होता है कि चूडामणि, शिखा मणि, किरीट मुकुट, मौलि आदि पर्यायवाची ही हैं। चूडामणि मे मणि' के अस्तित्व का बाध होता है। माँग के टीके के लिए 'सुन्दरी' का उल्लेख भी मिलता है।

राउलवल म अम्बअल'[1] तथा बनवार'[2] का उल्लेख मिलता है।

'मानसोल्लास'[3] म हस तिलक, दण्डक, 'चूडामण्डन', पद्म', 'चूडिभूपण' नामक सिर के आभूषणा का विवरण मिलता है। वणक समुच्चय'[4] म किरीट चूडामणि के अतिरिक्त गोफणा, चाक', 'त्रिसथिउ 'सउयउ' (सीथो), 'राखडी' तथा 'शीशफूल' का उल्लेख है। पृथ्वीराजरासो म क्वक शीशफूल' तथा 'मणिबन्ध पुष्प का विवरण मिलता है

कनक्क सा बिपञ्चया, सुराग सीस विट्टया।[5]

तथा

मणिबन्ध पुष्प सु दीसये, जनु क ह कालीय सीसये।[6]

सुन्दरियों के घुघराल बालो म श्रेष्ठ मोतिया की सुदर लडी गुही रहती थी, और पुष्पो से शृगार किया जाता था

कुटिल केस सुदेश पोहप रचियत पिक्कसद।[7]

'उज्वल नीनमणि'[8] मे 'चूणामणि का उल्लेख है इसे ही जीवगोस्वामी ने अपनी टीका म शीषफूल कहा है। यही शीषफूल' आईने-अक्बरी'[9] म शीश-

---

१ खोंपहि ऊपर अम्बेअल कइसे।
रविजण राहू धवले जइसे॥६॥
डा मालाप्रसाद गुप्त ने इसे आपीड कहा है।

२ विणु वनवारा अछण ना वारसि ॥६७॥
डा० माताप्रसाद गप्त ने वण्णवाल (पणमाना) से वनवार शब्द को व्युत्पन्न किया है।

३ मानसोल्लास—३।८। ११ २।

४ डा० भोगीलाल ज सांडसरा—वणक समुच्चय भाग २ १९५९ ई०।

५ पृथ्वीराज रासो—स० माताप्रसाद गुप्त ३ १७।२५ २६।

६ वही १० ११।४५ ४६।

७ पदमावती समय (१२)।

८ राधाप्रकरण १ ।

९ आईने-अकबरी मूल प्रति पृ १८५। सर सय्यद खां की प्रति पृ १८०।
३६ प्रकार के गहनो म से ५ सिर के आभूषण हैं। दूसरा आभूषण 'माँग' है और तीसरा कोत बिलान्र (worn on the forehead consisting of five bands and a long centre drop) Sekra seven or more strings of pearls linked of studs and hung from the forehead in such a manner as to conceal the face सभवत यह सेहरा का ही एक रूप है—जिसे डॉ० चोपडा ने शिखर' कहा है। कोत बिलान्र को आधुनिक चन्द्रमणि' माना गया है। मनची ने इस सम्बन्ध म लिखा है।

फूल' है।

सूफी काव्यधारा में जायसी ने केशों के वर्णन के साथ आभूषण का प्रयोग भी किया है, जैसे—मोतीमानिक।[1]

कृष्ण काव्यधारा में सिर के अनेक आभूषणों का विवरण मिलता है। *निम्बार्क सम्प्रदाय के श्री हरिव्यासदेवाचार्य कृत महावाणी* में रत्नजटित टीका इस प्रकार वर्णित है

सिर टीको जटित जराय।[2]

इसके ही आधार पर राधा को सेवासुख में 'सीस सुफूलनी' भी कहा है। सीसफूल के साथ सीमंत में चंद्रिका पहनने का उल्लेख भी मिलता है

सीसफूल सीमंत चंद्रिका चिकुर चतुर चित हार।[3]

सीसफूल को मुकुट' भी कहा है

मुकुट मंजुल चिकुर चंद्रिका।[4]

अलकावली में मुक्ता की मालाएँ भी लगाई जाती थी

मुक्तावलि सौं हिलि जु मिली है अलकावली अनूप।[5]

सूरसागर में तो ऐसे स्थल अनेक हैं जहाँ सिर के आभूषणों का विवरण मिलता है—जिनमें 'शीशफूल' का उल्लेख सर्वत्र मिलता है

बेनी गूंथि, माँग मोतिनि की, सीसफूल सिर धरति।[6]

तथा

जराइ कौ टीकौ।[7]

शीशफूल के रूप में कमलों का छत्र धारण करने का साहित्यलहरी में उल्लेख मिलता है

देव क को छत्र छावत, सकल सोभा रूप।[8]

---

upon the middle of the head is a bunch of pearls which hangs down as far as the centre of the forehead with a valuable ornament of costly stones formed into the shape of the sun or moon or some star or at times imitating different flowers This suits them exceedingly well

—Niccolao Manucci—Storia Do Mogor (Irvine) Vol II 1907 Page 339

१ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इसके संबंध में लिखा है— माँग के पीछे की ओर मोती भरकर पुस्तक पर माणिक का बार लटकाया जाता था। —पद्मावत पृ २८६।

२ महावाणी उत्साह सुख पद सं० २३।

३ वही सेवा सुख पद स ५।

४ वही पद स० ५६।

५ वही उत्साह सुख पद स २३।

६ सूरसागर पद स २११६।

७ वही पद स २१५८।

८ साहित्यलहरी पद स १ ५।

चम्पा का पुष्प भी सिर पर धारण करने की प्रथा थी

सारग रिपु सीस बनहू।[1]

रतनजटित 'सीसफूल' का उल्लेख परमानन्ददास ने भी किया है

मोतिन माँग सीसफूल मध्य रतनजटित फूलकारी।[2]

एक और स्थान पर सिर का फूल[3] खिसकने का उल्लेख है। ऐसा ही वर्णन गोविन्दस्वामी ने भी किया है

बेनी गुही बिच माग सँवारी सीसफूल लटकारी।[4]

तथा

प्यारी के सीसफूल सिर सोहै।[5]

मध्यकालीन रमणियो के सिर पर फूलों का शृंगार होता था जो खिसकते रहते थे। इसका बड़ा स्वाभाविक वर्णन नन्ददास ने किया है

खसि-खसि परत सुमन] सीसन त उपमा कहा बखानों।
चरन चलन प रीझि चिकुर बर बरजत फूलन मानों॥[6]

पुहुकर के रसरतन के अप्सरि खड म (दोहा ७७) सीसफूल' का उल्लेख मिलता है।

केशवदास ने भी शीशफूल का उल्लेख किया है

केसोदास फलि रही फूलि सीसफूल दुति, फूल्यो तनु-मनु मेरो
न्याय हरि मोहिय।[7]

शीशफूल के अतिरिक्त परम्परा से प्राप्त आभूषणो म 'बदिया' मडी बदी (बेंदाबेंदी) लर, अलकावली, चन्द्रमा चोटी पानडी, झूमर और चाक—शीश के शृंगार हैं।[8]

कर्णाभूषण

आभूषणो म कान के गहनों का विशेष महत्त्व रहा है। प्राचीन काल स ही कान म आभूषण पहनने की प्रथा की जानकारी मिलती है। अनेक आभूषण तो स्त्री पुरुष समान रूप से धारण करते थे, और कुछ आभूषण केवल स्त्रियाँ ही

---

१ साहित्यलहरी पद स ६८।
२ परमानन्दसागर पद स ६१६।३।
३ वही पद स० ३३१।
४ गोविन्दस्वामी पद स २०४।
५ वही पद स १३५।
६ नन्ददास ग्रथावली पद स २६।
७ केशवदास—कविप्रिया छन्द ८२।
८ जवाहरलाल चतुर्वेदी की सम्पादकीय टिप्पणी पोद्दार अभिनन्दन ग्रथ पृ० ७३५।

पहनती थीं। वैदिक काल में 'कर्णशोभना' पुरुष पहनते थे तथा 'कुण्डल' स्त्रियाँ पहनती थीं। प्राकार का उल्लेख भी मिलता है जो कर्णफूल की भाँति रहा होगा। ब्राह्मण काल में पाम तथा पवकवाशारा कुण्डल की भाँति आभूषण — 'प्राकाश' तथा हाटकार डामन्कार प्रयोग मिलता है। 'कुण्डल' तो प्राय सभी पहनते थे। गृह्यसूत्रों के अनुसार जो आभरण कान को पूरी तरह ढक लेता था—उसे कर्णवेष्टक कहा गया। पाणिनि काल में कर्णिका तथा बौद्धकाल में कर्णोत्पल 'मणिकुण्डल' आदि आभरणों के उल्लेख मिलते हैं। भरत के नाट्यशास्त्र में कुण्डल और कर्णिका के अतिरिक्त—कर्णवलय, पत्रकर्णिका, कर्णमुद्रा, डमरू के आकार का 'कर्णोत्कीलक' 'कर्णपूर' आदि मिलते हैं। 'अमीता वज्रभूषण'[1] के अनुसार—इनके अतिरिक्त मुकुटाकार द्विराजिक वयगम भृगला, कर्णेन्दु तलनिर पत्रनाशय आदि तत्कालीन अन्य आभूषण हैं।

इन आभूषणों में 'अमरकोश' में केवल चार ही मुख्य आभूषण संकलित किए गये हैं

कर्णिका तालपत्रं स्यात्कुण्डलं कर्णवेष्टनम्।[2]

मोहन जो-दड़ो की खुदाई में कानों के नुकीले कर्णफूल मिले हैं। ये सोने के, कुलफीनुमा नुकीले-गोल आभूषण हैं—जिनके भीतर एक पत्थर जड़ा हुआ है। शुंगकाल (१८४-७२ ई० पू०) में परकोटे के समान चौड़े भारी प्राकार (कुण्डल) तथा त्रिरत्न की आकृति के कर्णाभूषण प्राप्त हुए हैं। भरहुत शिल्प में तो कानों के फूल्रे तथा ऐसे कुण्डल मिलते हैं जिनका ऊपरी भाग चौड़ा चपटा और नीचे गरेरीनुमा है। तक्षशिला से एक भारी भरकम झुमका प्राप्त हुआ है जो आधुनिक झुमकों से किसी दृष्टि से कम नहीं है।[3]

अंगविज्जा[4] में तालपत्र, आबद्धक कुण्डल जनक, ओकासक (डमरू के आकार का), कण्णेपुरक, कण्णुप्पीलक नामक कानों के आभूषण गिनाये गये हैं।

श्रीमद्भागवत में मुमृष्टमणिकुण्डल (१०।५।११), जवलालकुण्डला (१०।२६।४) कपोलों के पास हिलते हुए कुण्डल (१०।३३।८), कर्णोत्पल (१०।३०।१९), पुरटकुण्डल (१०।३३।२२) आदि कान के आभूषणों का विवरण मिलता है। कर्णोत्पल तथा कर्णपाश का उल्लेख तो धूर्तविटसंवाद तथा कर्णिका का पादताडितक में भी है। कालिदास ने कर्णपूर कुण्डल कनक कमल, अवतंस—केवल चार आभूषणों का उल्लेख किया है।

---

१ अमीता वज्रभूषण—इंडियन ज्वेलरी, आर्नामेंट्स एण्ड डेकोरेटिव डिजायन, परिशिष्ट अ।
२ अमरकोश मनुष्य वर्ग १०४।
३ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल—भारतीय कला १९६६ ई० फलक १२४,१२५।
४ अंगविज्जा १९५७ पृ० ७२।

बाण ने 'कणपाश' नामक अलकार की चर्चा की है। यह हो सकता है कि यह कर्णोत्पल के नीचे पहना जाता हो। कादम्बरी म ऐसा उल्लेख है कि कान मे मरक्त मणि क जो कुण्डल पहने जाते थे, उनम लग सोने के पत्ते हिलते थ। दन्तपत्र नामक आभूषण हाथीदाँत का बनता था। हर्षचरित क अनुसार, कानो म कण पल्लव[1] (कणपल्लवा) पहनने की प्रथा थी। इसम त्रिकटक नामक आभूषण का उल्लेख भी है—जिसम दो मोतियो के बीच पन्न लगे होते थे। कणपूर कर्णोत्पल तथा पत्राकुर की आकृतिया म क्या भिन्नता थी इसका स्पष्टीकरण डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने किया है। कानो म अशोक के किसलय का अवतस पहना जाता था। राजशेखर की कर्पूरमजरी म कणपूर को 'कणऊर' (१।१४) कहा गया है।

सोमश्वर न 'मानसोल्लास म इन आभूषणा के अतिरिक्त ताटक (ताडङ्क) का उल्लख भी किया है। इन्होने एक और आभूषण—पिचुमन्द के आकारवाला माणिक्य गारुड हीरक आदि मणिया से जटित मुकुल[2] का विवरण दिया है। राजशेखर ने ताटङ्कवल्गनतरङ्गितगण्ड[3] का उल्लख कर ताटक की शोभा का वणन ही किया है।

११वी शताब्दी के शिलाकित काव्य 'राउलवल म कान के कई आभूपणो का उल्लेख मिलता है

करडिम्ब[4] (आरे के समान दाँत वाला एक आभूषण) काचडिअउ (काचडी), कर्प्यडि ताडरपात (पत्त के आकार का कर्णाभरण) तथा कनवास (कनपार), कन्नायस (कर्णावतस या कण + पाश्व)।[5]

ज्योतिरीश्वर ने कान के नये आभूपणा का विवरण दिया है

कालिजा—हीरा लगे हुए लवग के चार फूलो स निर्मित।

त्रिवा (तुका)—इस आभूषण मे दो बड़े मोतिया क बीच एक पन्ने का जडाव किया जाता था।

वीर—कुण्डल के अतिरिक्त वीर का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि 'कणफूल' को ही वीर कहा गया होगा।

रूपगोस्वामी ने उज्ज्वलनीलमणि के राधा प्रकरण म, द्वादशाभरणो म

---

१ डा वासुदेवशरण अग्रवाल—हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन १६५३ पृ १४७ ८३ तथा ६१ द्रष्टव्य हैं।

२ मानसोल्लास (३।८।११०७)।

३ काव्यमीमासा अध्याय ३।

४ डा माताप्रसाद गुप्त ने इसे (करट + इमा) मानकर गण्डस्थल पर लटकते रहने के कारण यह नाम पडा होगा — सभावना प्रकट की है (राउलवेल पृ० ११)।

५ वही पृ ११।

कुण्डल तथा चक्रीशलाका[1] का उल्लेख किया है।

वर्णक समुच्चय की सूची में अनेक नये कर्णाभूषणों का विवरण आया है—अकूटा उगनिया, कडी कर्णकुण्डल कर्णपत्रिका, कर्णपाली, कर्णपीठ, कुंडल, कर्णाभरण खीटली (ढाल जैसा गोलाकार) झालि, त्रोटी, वला श्रवणपाल, श्रवणपीठ सुवर्ण कुंडलिया। मध्यकाल के प्रसिद्ध ग्रंथ आईने-अकबरी[2] में खुंतिला, कर्णफूल दुरबच्छ, पीपलपत्ती, बाली चम्पाकली, मोरभवर—सात आभूषणों का उल्लेख मिलता है।

'छिताई वार्ता' में कानों में तरिवन (तरिका) और खूटी का उल्लेख मिलता है

रतन जरित तरिका जे ताक
मनहु मदन रथ के चाक।
मूठ पेच अनु खूटी अनूप।
मनहु छत्र सिर दीन्हो भूप।[3]

'चंदायन' में कई आभूषणों का विवरण मिलता है—कीलक कुंडल बीरा तथा खूट

कुण्डर सुवन' जर ले हीरा। चहुँ दिसि बैठ बिदारथ बीरा'॥
अउ दुइ 'खूट सरग जनु तारा। टूटि परहि निसि होइ उजियारा॥[4]

मधुमालती[5] में कान के कई आभूषण एक साथ वर्णित हैं

सुभर सीप दुइ स्रवन सुहाए। सरग नखत जनु बीरि जराए।
तरिवन हीर रतन नग जरे। उदित सुक्र दुइ खुटिला धरे।
दुहुँ दिसि दुवौ चक्र अनियारे। ससि सघ जनु उए दुइ तारे।

चित्रावली में केवल दो आभूषणों का उल्लेख है खुटिला और तरिवन। पद्मावत में खुटिला (खूटी) को बडा आभूषण नही माना है (कर्णफूल और उससे छोटा खूटी)। वर्णरत्नाकर में यही खूटी—खुंति है। 'खुंभी'—कुकुरमुत्ते की टोपी के आकार का, कान में पहनने का आभूषण था। बारी[6] (बल्ली) का प्रयोग भी प्रमाणित होता है।

---

१ विश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका में इसे इस प्रकार स्पष्ट किया गया है
चक्रीशलाका सूक्ष्मचक्राकार सबद्धकर्णार्धि छिद्रविष्टशलाकारूपाभरणविशेष॥
२ अबुल फज्ल—आईने-अकबरी पृ० १८५ व सर सय्यद की प्रति पृ० १८०।
३ छिताई वार्ता—सं० माताप्रसाद गुप्त छन्द १७२।
४ चन्दायन—सं० डा० गुप्त।
५ मधुमालती—सं० डा० माताप्रसाद गुप्त दोहा ६१।
६ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने बाली को वल्ली से व्युत्पन्न किया है—इन्होंने कुण्डल हिरण्य तथा वल्ली हिरण्य दो प्राचीन प्रयोग दिये हैं।

कृष्ण काव्यधारा मे अनेक आभूषणो का विवरण प्राप्त होता है। अष्टछाप के कवियो म सूर ने अनेक आभूषणा का प्रयोग किया है। साहित्य लहरी मे केवल कर्णफूल' का उल्लेख है

भानु रूप मे—बदन अक विभूषित सोभा।[1]

तथा

चक्र रूप मे—दो बने चक्र अनूप।[2]

उस काल की सुदरियाँ अपने काना म तरकी बीरा और कानफूल (कर्णफूल)[3] कुण्डलादि पहना करती थी।

अवतस—मिलि राजत अवतस।[4]

खुभी—जिन स्रवननि खुभी औ करनफूल खुटलाऊ।[5]

कुडल—कुडल लोल कपोलनि ढिग मनु रबि परकास करावनो।[6]

तरौना—कर कपोल बिच सुभग तरयौना शोभा बडी सुभाइ।

ताटक—कबु कठ ताटक गड पर।[8]

बीर—काननि की बीर (लर) अति राजति मनहुँ मदन रथ चक्र चढायो।[9]

तरिवन—की मनमय रयचक्र कि तरिवन रवा रचित सहसाज।[1]

कर्णाभूषणो के सबध में मध्यकाल के यात्रियो ने भी पर्याप्त प्रकाश डाला है

Terry— round about their ear are holes made for pendant s

Thevenot— They wear a little flat ring of gold or silver in their ears with engraving upon it (Travels—Page 53)

Pietra Della Velle— adorn themselves with many gold works and jewels especially their ears with pendants sufficiently enormous wearing a circle of gold or silver at their ears the diameter where of is oftentimes above half a span —Vol I Page 45

Hamilton— They wear gold or silver rings according to their ability several of small ones in holes bored round the run of the ear with one large and heavy in each lappet —Vol I Page 163

१ साहित्य लहरी पद स १२। पद स ६८ भी द्रष्टव्य है।
२ वही पद स १५।
३ सूरसागर पद स० २८७ ३२२८ ४२१६ ४२९३ ४४३३ द्रष्टव्य हैं।
४ वही पद स० २२३०।
५ वही पद स ४४३३।
६ वही पद स ३४५।
७ वही पद स २८२३।
८ वही पद स ३२३।
९ वही पद स० ३२२९। बीरे के लिए पद स ३४४६ भी द्रष्टव्य है।
१ वही पद स ३ ६३। जवाहरलाल चतुर्वेदी के आभूषणों की सूची म बारी झाला कर्णफूल दरकी पीपलपत्ती झुमका झुमकी पत चौकड़ा ईट लरकटे बौरा आदि नाम दिए हैं।

परमानन्दसागर मे सुन्दरियो के काना म जडावदार कुसुम लगाने का उल्लेख है

स्रवनन कुसुम जराउ राजे लर द्व द्व दुहुँ ओर।[1]

चतुर्भुजदास के का य म करनफूल, खुटिला, खुभी, झूमका[2] आदि का प्रयोग मिलता है।

कुभनदास के का य म 'खुभी तथा 'ताटक' का प्रयोग मिलता है।

कृष्णन्दास के का य म कवल ताटक' का प्रयाग हुआ है

ताटक मन जटित ।[3]

तथा

श्रवण पास ताटक सोहत मानो रवि समि जुगल परे मनफद।[4]

गोवि दस्वामी ने 'ताटक के अतिरिक्त 'कुण्डल' और खुभी का प्रयोग किया है।

राधावल्लभीय सम्प्रदाय के हरिराम व्यास ने खुटिला और खुभी के साथ मनि ताटक का उल्लेख किया है।

रामका यधारा के कवि तुलसी न भी प्राय इन्ही आभूषणो का उल्लेख किया है।

केशव न रामचद्रिका मे कानो म ताटक का प्रयोग विशेष रूप से किया है

ताटक जटित मनि श्रुति बसत। सब एक चक्र रथ से लसत।[5]

कविप्रिया म (नखशिखवणन म) ताटक के अतिरिक्त कुण्डल कणफूल, खुटिला का भी विवरण मिलता है

किधौं श्रुति कुडल - मकर - सर।[6]

पहिर करनफूल देखी है कवरि एक।

रीतिकाल म कर्णाभूषणो की सख्या मे वद्धि हो गई और अनेक नय नाम

---

१ परमानन्दसागर प स० ६१६।४।

२ आज भी ब्रज के लोकजीवन म बारी (बाली) गूज गच्छी बाज बीर दो मोना की बाली तरकी (टाप्स) झमकी खटका झाले बिजली करनफूल बाला गोमा आदि आभपणों का उपयोग होना है।

३ कृष्णदास प स ५४।

४ वही पद स० ६७।

५ रामचन्द्रिका ३१।१४।

६ कविप्रिया छद ५१।

७ वही छन्द ६४।

जुड गए—जस कुण्डल, बीर बाली, वीरवली, झुलझुली, कणफूल तरौना, खुभी, खटिला गोशमच, अवतस, श्रवणमुक्ता, श्रवण माग, श्रुतिवोर, लुरकी बिजली आदि।

नाक के आभूषण

नाक म आभूषण पहनने की परम्परा बहुत प्राचीन नही है। न ता प्राचीन सस्कृत-पालि प्राकृत साहित्य म कही किसी ऐसे आभूषण का उल्लेख मिलता है और न किसी मूर्ति म। इस आभूषण का स्पष्ट रूप १०वी शताब्दी तक उभरकर आया है। यहाँ उल्लेखनीय है कि १० ११वी शताब्दी म लिखित सदभ ग्रथ सोमेश्वर कृत मानसोल्लास म इसका विवरण नही मिलता। ११वी शताब्दी के शिलाकिन काव्य (राउलवेल) म भी इसका उल्लेख नही है तथा न अब्दुल रहमान के सदेश रासक (१२-१३वी शताब्दी) और न वसत विलास या कुतुबशतक म।

प्राचीन ग्रथा मे ढोला मारू रा दूहा[1] तथा पृथ्वीराज रासो[2] म इनका उल्लेख मिलता है जिसस इन ग्रथा की प्राचीनता सदिग्ध हा जाती है।

सस्कृत-साहित्य म सर्वाधिक खोज डॉ० पी० के० गोडे[3] महोदय ने की है। गोडे महोदय के अनुसार, नाक के आभूषणों के प्राचीनतम प्रयोग ११वी शताब्दी स मिलने आरम्भ हो जाते हैं। कुछ प्राचीन प्रमाण इस प्रकार हैं

बिल्हण — ११वी शताब्दी	— नासावशाविनिमुक्तमुक्ताफल
लक्ष्मणदेशिक — ११वी,	— नासा अगूरी (शारदा तिलक)
वद्यनाथ १३वीं,	— नासाग्रमुक्ताफलक
लीलाचरित	— नाकी मोती

वल्लभदेव की सुभाषितावली म प्राप्त श्लोकों म

नासामौक्तिक	—	श्लोक स० २१३७
नासाग्रवर्तिनवमौक्तिकम्	—	,, १५०५
मुक्ताफल	—	,, १५०४
नासाग्रमौक्तिकम्	—	,, १५०६
नासाग्रे नवमौक्तिकम्	—	,, १५२७

सुभाषित रत्नभांडागार म प्राप्त श्लोका म भी इन आभरणा के निम्न-

---

१ सुन्दरी चोर सब्रही सब मीया सिणगार नाक फूनी लाधी नहीं (ढोला छन्द ५७१)।

२ सुभाय मुत्ति सोभये (४ ७४ २७)।

३ पी के गोडे—"एण्टीक्विटी आफ द हिन्दू नोज-आर्नामेंट काल्ड नथ'। भंडारकर जनल कमाई १९३८ पृ० ३१ ३४।
एन० एन० दास—नोज-आर्नामेंट इन इडिया कलकत्ता रिव्यू मई १९ ७ प० १४२ ४४।

लिखित विवरण मिलते हैं

नासामौक्तिक, नासाग्रमुक्ताफलक, मौक्तिकम् नासाभूषण।

इस सबध म डा० अल्तेकर[1] न काफी खोजबीन के बाद जो निष्कर्ष निकाले वे इस प्रकार है

१ नथ जब सौभाग्य सूचक होने की दृष्टि से विवाहित स्त्रियों के लिए पहनना परमावश्यक समझा गया तो फिर नाटयशास्त्र म वर्णित आभूषणों की सूची म इसे क्यों नहीं सम्मिलित किया गया ?

२ संस्कृत कवियों तथा नाटककारों को इसका बिल्कुल ज्ञान नहीं।

३ संस्कृत म इसके लिए कोई शब्द नहीं। अमरकोष म वर्णित आभूषणों म भी कहीं इसका उल्लेख नहीं है।

४ नथ नथिया नथनी नत्था, नथग्ग आदि सभी शब्द भारतीय भाषाओं म नत्था[2] से आए हैं, जो पशुओं को नियंत्रण में रखने के लिए उनकी नाक म नाथने के लिए प्रयुक्त होते थे, जैसे जानवरों की नाक म नकेल डालकर नाथना।

५ बोधगया, भरहुत साँची, मथुरा, अजंता एलोरा भुवनेश्वर तथा उदयगिरि से प्राप्त मूर्तियों म कहीं इसका सकेत नहीं मिलता।

६ हिन्दू काल तक भारतवासियों को नाक के आभूषण का कोई ज्ञान नहीं था।

७ पुरी तथा राजपूताना क स्थापत्य म मुसलमानों न प्रथम बार इसका प्रयोग किया।

८ नथ' का प्रचलन भारत म मुसलमानों के प्रभाव स प्रारम्भ हुआ होगा।

भारत मे सबसे पहला प्रयोग शंकराचार्य न सौंदर्यलहरी यमुनाष्टक (मौक्तिकनासिकभूषण) तथा त्रिपुरसुंदरीमानसपूजा (मध्यस्थारुणरत्नकाति रुचिर) म किया है। इसके आधार पर डा० अल्तेकर[3] न यह सभावना प्रकट की है कि या तो य श्लोक बाद म लिखे गए और शंकराचार्य के नाम स जोड दिए गए अथवा भारत के दक्षिणी पश्चिमी तट पर अरबों के प्रभाव स इसका सब

---

१ डा ए० एस अल्तेकर—ड्रेस एंड आर्नामेंट अव द हिन्दू वीमन जनल अव बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी १९३८ ई।
निष्कर्ष रूप में आपने लिखा—इट इज ए मिस्ट्री हाउ दिस आर्नामेंट अव फारेन ओरिजिन शुड हैव कम ट बी रिगार्डेड टुडे द मोस्ट इम्पोर्टेंट इनसीनिया अव सौभाग्य।

२ पाइय सद्द महण्णवो में णत्था' का उल्लेख है। नासा रज्जु पृ ३८।
देशीनाममाला (४।१७ णत्था णासारज्जू।)

३ डा ए एस अल्तेकर—पोज़ीशन अव वीमेन इन हिन्दू सिविलाइज़ेशन १९५६ पृ० १३०४।

प्रथम प्रचलन यहीं प्रारम्भ हुआ। अलबरूनी के विवरण के आधार पर सुप्रसिद्ध इतिहासकार प्रो० माहम्मद हबीब[1] ने भी इसका प्रचलन मुसलमानो के प्रभाव से ही स्वीकार किया है। यही बात डा० चोपडा[2] ने अपने शोधप्रबन्ध मे स्वीकार की है।

ऐसा प्रतीत होता है कि खुसरो के समय तक इस आभूषण का प्रचलन काफी हो गया था क्योंकि अमीर खुसरो[3] ने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है। मध्य काल के प्रारम्भ मे तो इसका स्पष्ट उल्लेख मिलने लगता है, जिसके फलस्वरूप यह भी सोलह शृंगारो मे एक महत्त्वपूर्ण शृंगार माना जाने लगा। वल्लभदेव के नाम से प्राप्त श्लोक मे नासामौक्तिक का स्पष्ट उल्लेख है। इस काल मे लिखे गए सभी यात्रा विवरणो मे इसका उल्लेख मिलता है। फ्रेंच यात्री टेवार्नियर ने इसका उल्लेख किया है। टेवार्नियर और हैनवे की फारस यात्रा के विवरणो मे भी इसका उल्लेख है जिससे इसके अरब अथवा फारस से भारत आने की पुष्टि होती है। अन्य यात्रियो मे से स्टवोरिनस[4], एडवर्ड मूर[5] थेवनाट[6], करिरी[7], टेरी[8] आदि उल्लेखनीय हैं—जिन्होंने इसका प्रमाण दिया है।

इसके अत्यधिक प्रचलन के फलस्वरूप मध्य काल के प्रसिद्ध सदर्भ ग्रथ 'आइन अकबरी'[9] मे नाक के कई आभूषणो[10] का विवरण मिलता है

---

१ Nose rings (Nath bulaq) are not referred to in old books possible these ornaments have been borrowed from the Mussalmans
—Indian Culture & Social Life at the Time of the Turkish Invasions
—Journal of Aligarh Historical Research Vol I

२ Dr Chopra Page 27

३ On one side of her nose a pearl was suspended from the nostrils while on the other the snot having frozen on account of cold breeze looked like a hanging pearl superior to and better than pearls
—S H Askari—Risailul Izaz of Amir Khusaro—Dr Zakir Hussain presentation Vol I Page 1 6

४ Gold or silver rings and cartilage of the nose
—Stavorinus J S—Voyages of the East Indies Vol I Page 415

५ In common with most of the sects of Hindoos the women wear an ornamental ring or jewel in their nose called in Hindvi Nutt

६ Adorn their no es with rings which they put through their nostrils
—Thevenot—Travels (Introduction) Page 53

७ Many of them bore their noses to wear a gold ring set with stones
Careric—Travels Page 248

८ Every woman hath one of her nostrils pierced and their when as shee please shee may weare a ring
—Terry—Travels Page 308 309

९ आईने अकबरी जर० का अनुवाद पृ० ३४३।

१० इन आभूषणों के चित्र आईने-अकबरी की मूल प्रति से फोटोचित्र के रूप में सलग्न हैं। यह प्रति सर सयद खाँ साहब ने विशेष परिश्रम से अनेक हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर तयार की थी। बेसर का चित्र विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

बेसर फूली, लौंग, नथ।

नथ भरतुल तथा खोखली दोनों प्रकार की बनती है। कभी-कभी इसका आकार इतना अधिक होता है कि भार को सँभालने के लिए कलाव या डोर की जरूरत होती है। अथवा इस मोती की लड़ी से बाँधकर एक ओर कपाल पर ले जाकर बालों से बाँध देते हैं।

वाली नाक का गहना है, जो गुजराती 'वाली' तथा मराठी 'वाली' से मिलता है। हरिवल्लभ भायाणी के अनुसार 'ल्ल—ल होता है सं० वालिका'—मुद्रिका के अर्थ में हर्षचरित में भी है। इससे ही यह शब्द निष्पन्न हुआ है जो गुजराती मराठी में वाली हो गया है। कणफूल, बेसर और नथ के अतिरिक्त निमाड़ी में 'लोलक' (झूलता हुआ मोती का आभूषण) भी प्रसिद्ध है।

छिताई वार्ता में नकफूली का प्रयोग है

नाक नकफूली रतन जराइ

रह्यो मदन जानु मनसों लाइ।[1]

सूफी प्रेम काव्य धारा के ग्रंथ चन्दायन में नाकफूल का उल्लेख है

आवइ उगसत नाक क फूलो। नखत बार सूरज गा भूलो॥[2]

जायसी ने सोलह शृंगारों के अंतर्गत इसका प्रयोग कानों में कुंडल पहनने के बाद किया है।

पुनि नासिक भल फूल अमोला।[3]

जायसी ने 'नाक' रूप में भी नथ का उल्लेख किया है

परी नाथ कोई छुअइ न पारा।

मारग मानुस सोन उछारा॥[4]

मध्य काल के प्रसिद्ध आभूषण 'बेसर' का उल्लेख भी जायसी के काव्य में मिल जाता है

नासिक देखि लजानेउ सुआ।

सूक आइ बेसरि होइ उआ॥[5]

यहाँ उल्लेखनीय है कि मंझन कृत मधुमालती में सुघड़ सुन्दर नासिका का विस्तृत वर्णन होते हुए भी नाक के किसी आभूषण का उल्लेख नहीं है पर उसमान की चित्रावली में 'बेसरि' का उल्लेख मिलता है

बेसरि सरि न काहु कँह छाजा।[6]

---

१ छिताईवार्ता—सं० माताप्रसाद गुप्त छन्द १७३।
२ चन्दायन—सं० परमेश्वरीलाल गुप्त छन्द ६५।
३ पदमावत—जायसी दोहा २९६।
४ वही दोहा ११।४।
५ जायसी—पदमावत दोहा १ ५।
६ चित्रावली दोहा २८।

कृष्ण काव्यधारा म तो नाक के आभूषणो का विशेष विवरण मिलता है। अष्टछापी कवियो ने नाक के आभूषणों म 'नय', बेसरि' बुलाक आदि आभूषणो का उल्लेख किया है

नय नासा नय मुकुता के भारहिं, रह्यो अधर तट जाइ।[1]

× × ×

नासा नय अति हीं छवि राजति, अधरन बीरा रग।[2]

× × ×

करम 'नय' नव जोति सगम, जोर भूप अनग।[3]

नय-मुक्ता नासा 'नय-मुक्ता बिंबाधर प्रतिबिंबित असमूच।[4]

नक-बेसरि डुलति ग्रीव, लटकति 'नक बेसरि', मद मद गति आव।[5]

× × ×

बनी बेसरि नासिका मिलि, मिले दोउ अधरग।[6]

× × ×

नासा सुभग निपट सुढारी बेसर सिखी आकारी।[7]

पन्नाकर चूनी बहुवरनी छांह सिखर परकारो॥

तथा,

काहू की नकबेसरि' पकरी काहू की चोली।[8]

× × ×

नकबेसरि अति जगमगे दूरि करें नव जोती हो।[9]

× × ×

बेसरि लटकि रही कामरस आगरी।[10]

× × ×

बेसर कौन की अति नीकी।[11]

× × ×

---

१ सूरसागर प० स २११६।

२ वही प० सं २६४५।

३ वही पद स २७४६। नन्ददास की रूपमजरी (१२३) में 'नासिक नय अनु मनमथ पासी द्रष्टव्य है।

४ वही प० स १०६३ तथा मोती सहित नथनी के लिए प० स० ७२३।

५ वही पद सं० २ ५५। अन्य प्रयागों के लिए पद स० २ ६१ २१५८ २७३२ २८०१ ३२०५ ३३८२ ३५१६ तथा ४४३१ द्रष्टव्य है।

साहित्य लहरी—प० सं० ६८ में बेसरि के लिए नाम शब्द का प्रयोग किया गया है।

६ सूरसागर, पद सं २७४६।

७ परमानन्दसागर, पद सं ६१६६।

८ कुम्भनदास पद स० ७४।

९ गोविन्दस्वामी प० सं ११५।

१० कृष्णदास प० सं० ३४।

११ नन्ददास प० स० ६६।

लट लुरि लटकि छबीली छबि सों, बेसरि रही अरुझाइ ।[1]

× × ×

नासा मुक्ता झटकि लई कर मुद्रिका नासा-मुक्ता गोल ।[2]

× × ×

नासिका के मोती देखी उडुगन सकुचाय ।[3]

× × ×

नासिका मोती जगमग मोती ।[4]

बेसरि मुक्ता सुंदर बर नासिका देस पर, बसरि मुक्ता रुर ॥[5]

बेसर मुली झुलाय ।[6]

राम काव्यधारा मे केशव ने बेसरि तथा 'नकमोती' का विशेष वणन किया है

बेसरि केसरि सो मांडि लई बेसरि उतारि क ।[7]

नकमोती चमकत तसो नकमोती चल चाल को ।[8]

× × ×

नीकोई नकीव सम नीको नकमोती नाक ।[9]

× × ×

मन-पतग को दीपु गनि नकमोती जगबदु ।[10]

तथा

नकमोती दीपक दुति जानि ।[11]

रीतिकालीन साहित्य म तो नायिका की शोभा के वणन म नथ का प्रचुर प्रयोग किया गया है। वत्ताकार नथ नायिका के रग से होड करती हुई, उसके अत्यधिक मादक अधरों को घेरे रहती है। नथ के साथ बेसर को और बेसर के मोती को भी दरबारी रीतिकालीन काव्य म स्थान मिला है।

नथ का बिहारी देव पद्माकर भिखारीदास न नथुनी का मतिराम

---

१ वही पद स १८३।
२ सूरसागर पद स २२३६।
३ नन्ददास पद स १३७।
४ नन्ददास—रूप मजरी २४५।
५ सूरसागर पद स ३२८६।
६ नन्ददास—रूपमजरी ५१४ ग्रथावली पृ स १४२।
७ केशव ग्रथावली भाग १ ३ ।३४।
८ वही भाग १ ८२।१३।
९ वही भाग १ ९ ।५।
१० वही भाग १ २ ६।५३।
अन्य प्रयोगो के लिए २ ६।५२ २ ७।५४ २१३।८६ द्रष्टव्य हैं।
११ केशव ग्रंथावली भाग २ ३८४।१८।

वेसर' का विहारी, देव, मतिराम, विक्रम, मुबारक, आलम पद्माकर, भिखारीदास आदि अनेक कवियो ने उल्लेख किया है। 'भूलनी' तथा 'नकमोती' का भी विवरण मिलता है। इन आभूषणो के अतिरिक्त लोग, लुरकी तथा लटकन को भी मध्य-कालीन साहित्य म भरपूर स्थान दिया गया है।

कठ के आभूषण

कठ के आभूषणो की परम्परा भारत म बहुत प्राचीन है। सिंधुघाटी सभ्यता की खुदाई के आधार पर कहा जा सकता है कि इस युग म भी कठ के आभूषण पहनने की प्रथा थी। हडप्पा[1] की खुदाई म सोने और मनको के हारों के कई टुकडे मिले। इस प्रकार ज्ञात हुआ कि इस काल म सोने, चादी, नगो और रगो से बने मनके या गुरिया बहुत सी लडिया म पिरोकर नाना प्रकार के हार बनते थे। हारो का विशेष प्रचलन था, वशन (मध्य एशिया से प्राप्त हरी घास के रग का मसार) के मोटे मनकों को पिरोकर बनाया जाता था। सोने के मटर जसे दाना की लडियाँ, सोने की चौकोर पत्तियों के साथ, मटरमाला कहलाती थी।[2] शुग काल म कण्ठे तथा हार का प्रचलन था। भरहुत शिल्प म तो मोतियो का तिलडा हार, छह लडी का हार दोहरे सिरानो का हार पदक, चौडा जडाऊ कठा आदि अनेक आभूषण मिलते हैं।

वदिक काल म मला[3], निष्क, हिरण्यद्रवशी और रुक्म का व्यवहार किया जाता था। रत्नो को छेदकर मणिया बनती थी जिनको माला के रूप म पिरो लिया जाता था। पाणिनि-काल म 'ग्रवेयक'[4] का उल्लेख मिलता है।

महाभारतकालीन समाज[5] म गले म सुवण हार, निष्क (सुवण मुद्राए), पुष्प, रत्न मोती के हार और अनेक प्रकार की बहुमूल्य मालाएँ (महार्ह माल्य) पहनने का प्रचलन था। पुष्पमालाओ का विशेष प्रचलन था, गले म सफेद फूल ही श्रेष्ठ समझे जाते थे, पर कमल या कुमुद की माला निषिद्ध थी। श्रीमद्भागवत म उल्लेख आया है कि गोपियो क गले म निष्क[6] (पदक सहित हार) सुशोभित थे।

---

१ हडप्पा की खुदाई म कठ आभूषण से सम्बन्धित निम्नलिखित सामग्री प्राप्त हुई
240 Gold beads in four strings
A heart shaped pendant inlaid with blue faience
K K Ganguly—The Harappa Hoard of Jewellery Indian Culture, Vol 6 No 4 pp 415 419

२ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल—भारतीय कला १९६६ ई० पृ० ३८ तथा ४९।

३ यह मला ही स० माल्य है जो हिन्दी म माला है।

४ ग्रवेयक कण्ठभूषानम्बन स्यात्ललन्तिका।—अमरकोष
डा० पनमाला भुपाकर—महाभारत में नारी स २०२१।

६ निष्कण्ठयश्चित्रग्रीवा (१ ५।११)।

परवर्ती काल म कण्ठसूत्र कण्ठविधिक, हार, विलम्ब हार (बहुत लम्बा हार), विविक्त हार (मोतियो की बडी माला), योक्त्र हार (बँटा हुआ हार), हार मणिना, रत्नावली माल्य आदि कठ के आभूषणा के प्रयोग मिलन लगे। भरत ने नाट्यशास्त्र मे त्रिवणी मुक्तावली, रत्नमालिका रत्नावली सूत्र शृखलिका, हार मणिजाल नामक आभूषणो का उल्लेख किया है। अगविज्जा[1] के अनुसार सुवण्णसूत्र (सुवणसूत्र) तिपिसायक (त्रिपिशाचक) विज्जाधारक (विद्याधरो की आकृतियो स मुक्त टिकरा) असीमालिका (गुजिस की गुरियो से खड्ग की आकृति बनी हो) पुच्छलक आवलिका (एकावली), मणि सोमाणक, अट्ठमगलक वायुमुत्ता (मोतियो की माला) पुप्प सुत्त (सूत्र जिसमे पुष्प गुथ हो)।

जन-आगम साहित्य[2] म हार (अठारह लडी वाला), अघहार (नौ लडी वाला), एकावलि (एक लडी का हार) कनकावलि, रत्नावलि मुक्तावलि आदि कठाभूषणो का उल्लेख मिलता है।

अमरकोप म हार क आठ नाम प्राप्त होते हैं

हार मेदा यष्टिमेदादगुच्छगुच्छाधगोस्तना ॥ १०६॥
अधहारो माणवक एकावल्येक्यष्टिका।
सव नक्षत्रमाला स्यात्सप्तविंशतिमौक्तिक ॥१०७॥

कालिदास साहित्य[3] मे मुक्तावली[4] तार हार हार शेखर, हारयष्टि, हार लम्बहार, निधौत हार, इन्द्रनील मुक्तामयी मुक्ताकलाप निपक, रत्नानुविद्ध प्रालम्ब[5] आदि अनेक प्रकार के हारा का उल्लेख हुआ है जो आधुनिक हार के विभिन्न प्राचीन स्वरूप कहे जा सकते हैं।

प्राचीन काल मे मोती अधिक मिलते थे, अतएव मोतियो से विविध प्रकार के हार बनाने का प्रचलन था। हारो मे सहस्रा मोती गुथ रहते थे। इनमे १००८ ५०४ १००, ६४ ५४ ३२ या १० लडियाँ होती थी और इनके भिन्न भिन्न नाम होते थे। मोती के साथ मणि भी गुथी हो तो वह 'यष्टि कहलाती थी, यदि मणिया स्वण जटित हो तो वह यष्टि रत्नावली' बन जाती थी, और स्वण-जटित मणियो के बीच बीच मे मोती पिरोये हो तो वह अपवतक यष्टि और स्वण के

---

१ अगविज्जा—१६५७।
२ डा० जगदीशचन्द्र जन—जन आगम साहित्य में भारतीय समाज १६६५ ई पृ १४३।
३ डा० गायत्री वर्मा—कवि कालिदास के ग्रथों पर आधारित तत्कालीन भारतीय सस्कृति पृ २२२ २२५।
४ अमरकोप के अनुसार—हारो मक्तावली देवच्छन्दोऽसौ ॥
५ अमरकोप के अनुसार सोने की कण्ठी ही प्रालम्बिका है—स्वर्णे प्रालम्बिकाऽथोर. । हप चरित' में प्रलम्बमाला का उल्लेख है—ग्रीवाया लम्बित प्राज्ञ प्रालम्बकमिति स्मतम्। वस्तुत यह हरे तथा लाल रत्नो से जटित हार था।

मोती पिरोये हो तो सोपानक यष्टि हो जाती थी।[1] अत्यधिक लम्बे, पूरे शरीर की शोभा बढ़ाने वाले हारो को दह भूषण' कहा गया। ये हार नाभि तक लटका हुआ होता था।[2]

मानसोल्लास म एकावली हार वणसर (नील माणिक्य) और ब्रह्मसूत्र के अतिरिक्त, गले मे नील स निर्मित लटकने वाली लडी—जो नौ या दस स्थूल मुक्ताओ का डाल कर गले के बराबर के आकार की बनायी जाती थी— सारिका' कहलाती थी। ११वी शती के शिलांकित काव्य 'राउलवल म जालाकठी (३।४), काठी (७।१५, १२।६), सोनाजालउ (२३।१६), गठिआ तागउ (२३।२५) चद-हाइ (पाच लडी का तागा—सूत्र का हार—२५।१६) जाधताह (४२।८), जवाघ (जौ के आकार की सोने की गुरियों की माला—जो गले म सामन की ओर रहती है) का उल्लेख है।

वण रत्नाकर म कण्ठ के आभपणों म एकावली, सूता', सिंकला (शृखला) हार, दवनीयारी तथा पताका का उल्लेख मिलता है।

११वीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक प्राप्त ग्रथा म भी कठ के आभूषणा का पयाप्त उल्लेख मिलता है। सदेश रासक म णवसर हारलय, हार क्सवि, ढोला मारू रा दूहा म 'नवलखा हार मोतियो का हार 'बसत विलास मे मुत्ताउलि माल रायण हार पृथ्वीराज रासो मे मोतिया के हार, विद्यापति की पदावली म मनमाहन हार मोतियाहार, मनिमयहार गजमौक्तिक हार, नील मणि की माला, 'छिताइ वार्ता' म कुठश्री नउग्रही आदि उल्लेखनीय हैं। 'उज्ज्वल नीलमणि' क राधा प्रकरण म द्वादश आभूषणा म— निष्क' (पदकाख्य हृदय भूषण) तथा हार (हारास्तारानुकारा) का उल्लेख मिलता है।

सूफी काव्यधारा मे भी इसके उल्लेख सभी प्रमुख काव्यो म प्राप्त होते हैं। जसे—चन्दायन म हार तथा सकरियों का उल्लेख मिलता है

हार डोर और सिहडी पूरे।[3]

मगावती म गले की माला का उल्लेख है

तीर रेख जहाँ कण्ठमाला। वह अमरन मों कहसि जिय लाना॥[4]

पद्मावत' म जायसी न कठ के आभूषणा म कठसिरी (कठ-श्री) तथा मोतियो की माला का ही उल्लेख किया है

---

१ डा० रामजी उपाध्याय—प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका।

२ डा गरुमता ने सांस्कृतिक अध्ययन में इसे चाँदी या सोने से बनी गदन से चिपकी हसली माना है।

३ चन्दायन स परमेश्वरीलाल गुप्त छन्द २८७।

४ मिरगावती छद ६६।

कंठ सिरी मुक्ताहल माला सोहै अभरन गीँव।
को होइ हार कंठ ओहि लागे केइँ तपु साधु जीवँ॥[1]

इस प्रकार सिद्ध है कि भारत में मध्यकाल तक मोतियों की माला का ही विशेष प्रचलन था। 'चित्रावली' में भी केवल मोतियों की माला का ही उल्लेख मिलता है

गीँव माल मुक्ता मनि बसी।
सुरसरि जनु सुमेरु हुत धँसी॥

'ज्ञानदीप' में हार के साथ 'गुलूबन्द' का उल्लेख भी है

गले गुलबन्द जलजसुत माला, जल सुन चाहि अधिक उजियाला॥

यही कारण है कि मध्य काल के संदर्भ-ग्रंथ 'आईन अकबरी'[2] में, कंठ के आभूषणों में सर्वप्रथम 'गुलूबन्द'[3] का उल्लेख है इसमें पाँच या सात गुलाब की आकृति के फूल सोने के तार से सिल्क पर कसे रहते थे। इसके अतिरिक्त हार तथा हास (हमली-तौक) का उल्लेख भी मिलता है। इस काल में विदेशियों के सम्पर्क में आने के कारण गले के आभूषणों में वृद्धि होती गई जिसके फलस्वरूप मोहनमाला चम्पाकली जुगनू मोहरन होलदिल दुलड़ी आदि आभूषणों[4] की वृद्धि हो गई।

इस प्रकार तत्कालीन साहित्य के प्रमाणों से स्पष्ट है कि भारत में मुस्लिम प्रभाव से गुलूबन्द हमेल तथा तौकी[5] का प्रचलन बढ़ गया अन्यथा पहले हार

---

१ पद्मावत दोहा १११।

२. मूल पृ० १७६ १८ जरट का अनुवाद ३४३।

३ कण्ठाभरणों की सबसे बड़ी सूची वर्णक समुच्चय में मिलती है
अग्गारसर अष्टसर अष्टाष्टशसरक अर्धहार उरस्त्रीव एकावली कनकावली कंठिका, कंठसिरी ग्रीवाभरण ग्रैवेयक चतुसरक चतुसर चम्पाकली टसर पटसर त्रिसर दोर दोरो नक्षत्रावली नक्षत्रमाला नवसर नवसरक नवसिरगार नगोदर पत्रावली प्रलम्ब प्रवालावली मणिमाला मुक्तावली मोतीसार मोतीसरी मौक्तिक मौक्तिक हार रत्नावली वज्रावली वर्णसर सूर्यावली हार हारावली हांस।
—वर्णक समुच्चय भाग ७ स० भोगीलाल ज० सांडेसरा १९५६ ई०।

४ It consisted of five or seven rose shaped buttons of gold strings of silk (Rekha Mishra)
They wear these necklaces of jewels like scarves on both shoulders, added to three strings of pearls on each side
Usually they have also three to five rows of pearls hanging from their neck coming down as the lower part of the stomach
—Storia Do Mogor (Niccolao Marucci) Vol II 1907 pp 339

५ अरबी हमायल एक डोरे में पुरी चाँदी के रुपये या सोने की मोहर बीच में पान या चौकी। गर हमेल कुच जग उतग की—सूरसागर पद स० २०६३।

६ गले में पहना जाने वाला तावीज—सूर पद ३१५८।

के ही विभिन्न रूप यहाँ प्रचलित थे। देखिए, सूर ने माला का विशेष वर्णन किया है

सोभित हार हिए।[1]
सुमन-सुगंध-माल पहिराउ ॥[2]

नये-नये आभूषणों के प्रचलन के बावजूद, मध्यकाल में मोतियों की माला का विशेष प्रचलन था।

मोतिविमाल (१२५४) मानिनि माला (१२४३) मोति निहार (२२६६) कंठमनिभूषन (४०७)। कंठ के अन्य आभूषणों के उल्लेख निम्नलिखित हैं

हृदय चौकी चमकि बैठी सुभग मोतिन हार।
कंठश्री दुलरी विराजति, चिबुक स्यामल बिंद।[3]
कंठसिरी, दुलरी, तिलरी उर, मानिक-मोती हार रंग की ॥२०६३
हार रतन (६३६)—उठी रोहिनी परम अनंदित, हार रतन ले आइ।[4]
हारावलि (३३२५)—उर हारावलि मलति कमलनि ॥[5]
हमेल (२१५८, २०६३)—कंठसिरी उर पदिक विराजत ॥[6]

'साहित्य लहरी' में मोतियों की माला के अतिरिक्त नौलखाहार का प्रयोग मिलता है। इस ही कंठलच्छ कहा है (लाखों का हार)।

कंठलच्छ राखी सुकंठ में, बाम अवास प्रकासित न्यारी ॥[7]

इसी काव्य में एक स्थान पर खगवारो का प्रयोग भी मिलता है

रतन जटित खगवारो गर कौ जसुमति लै पहिरायो ॥[8]

नन्ददास ने केवल 'सकल आभूषण' का प्रयोग कई स्थलों पर कर दिया है। रासपंचाध्यायी में चंचल हार पदिक, मोतिन माल आदि शब्दों के प्रयोग मिलते हैं। परमानन्ददास ने मात्र 'हारावलि' का उल्लेख किया है

राधे जू हारावली टूटी ॥[9]

---

१ सूरसागर पद सं० ६४२।
२ वही पद सं० ३४४६।
३ सूरसागर, पद सं० १६६१। दुलरी के साथ एक लड़ी (२५१६) तिनरा (२०६३) चौसर (२५८७) मोतिसरि (२५८७ २५८८) नौसरि (२१०५) आदि द्रष्टव्य हैं।
४ वही पद सं० ६३६।
५ पद सं० ३३२५।
६ पद सं० ३२२८।
७ साहित्यलहरी पद सं० ९८।
८ सूरसागर-परिशिष्ट पद सं० ८।
९ परमानन्दसागर ४०६।

कुभनदास ने मुक्तामाल[1], कुसुमा के हार[2], हार[3], छीतस्वामी ने हमेल कठसिरी और चौकी चतुर्भुजदास ने भी (चौकी बनी जराइ ढुरि करत रवि काति) चौकी का उल्लेख किया है।

गोविन्दस्वामी ने एक साथ कई कठाभूषणो की चर्चा की है।

कठसिरी मोतिसिरी बीच जगाली पाती हो।
चौकी हेम जराय की रतन खचित निरमोला हो।[5]

कृष्णदास ने कठ में मुक्ता और वज्र-खचित हारो का वणन किया है

कठ मुक्ता वज्र खचित हारावली॥[6]

चतन्य मत के कवि रामराय ने पोत और मोतिया स बनी माला और मलजी माल कठ के आभूषण क रूप में वर्णित की है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय के हरिराम व्यास ने हार के साथ पोत का उल्लेख किया है

कठपोति उर हार चारु कुच। पद ३६८

'वेलि क्रिसन रुक्मणी री' म कठी (काले रेशमी डोरे वाली) मोतिया की माला और मोतियों के हार का उलेख है।

कशव न रामचन्द्रिका म कठश्री[8] नामक कठमाला का वणन किया है

कलहसनि कठनि कठसिरी।[9]

कशवदास कविप्रिया म ग्रीवा भूषण वणन म लिखत हैं

स्याम सेत पीत लाल कबु-कठ कठमाल
जाति नाहिं नेकहौं रहो जु जोति जागिक॥[10]

कविप्रिया म ही समस्त भूषण वणन[11] के अन्तगत कठमाल तथा हार का उल्लेख है

कठ कठमाल हार पहिरे गुपालिका।

रीतिकालीन साहित्य म कठाभरणा का बहुविध वणन हुआ है। हार का

---

१ कुभनदास पदावली स ३२।
२ स० ३८७।
३ स० ७४।
४ छीतस्वामी पद स ८६।
५ गोविन्दस्वामी १३५।
६ कृष्णदास पद स ४८।
७ वेलि (कवि पृथ्वीराज) छन्द ८४ ९१ तथा ९४।
८ रामचन्द्रिका (२।३३१)।
९ (२।२८६।२६)।
१ कविप्रिया ३३।
११ ८६।

उल्लेख बिहारी केशव, दव (मोतिन नग हीरन हार चन्द्रहार हार घुघचीन), पद्माकर (गजमुक्तान गुज, सीप हीरन क हार) तथा भिखारीदास ने (गुलिक हार, मुक्ताहल के हार कचन पचलरा) 'माला का अनेक कवियो न, हमल' का रसलीन भिखारीदास और बेनी न, चपाकली' का रसलीन ने, उरवसी' का बिहारी तथा भिखारीदास ने, तावीज का तोप और भिखारीदास न, चौकी का रसलीन ने, धुकधुकी' का तोप और केशव न, 'गुलूबद' का बिहारी न तथा 'कठश्री का भिखारीदास न चित्रमय वणन किया है।

बाहु तथा हाथ के आभूषण

भारतीय नारियाँ सुहाग की चूडियो का व्यवहार शताब्दियो स करती आ रही हैं। मोहेन जा-दडो अमरावती एव मथुरा की कुषाणकालीन मूर्तियो के हाथों मे प्रकोष्ठ तक चूडियाँ सुशोभित हैं। मोहन जो दडो स प्राप्त अवशेषो मे एक पोला बाजूबद तथा नारी के हाथों म चूडी' जस आभूषण मिले हैं। हडप्पा से प्राप्त अवशेषो म एक पोला बाजूबद, सोन की चूडी एक चाँदी की चूडी तथा दो ब्रेसलेट हैं।

वदिक काल म नारी और पुरुष दोना ही समान रूप से हाथ तथा पर म चूडिया अथवा कडे-कगन धारण करते थे एसा उल्लेख मिलता है। 'खादि' सभवत कडा था। परिहस्त' स प्रतीत होता है कि पति अपनी पत्नी के हाथ म ककण बाधता था। अश्वघोष के ग्रथो म वलय तथा कनक-वलय' का प्रयोग मिलता है। भरत के नाट्यशास्त्र मे वलय, बजुर स्वच्छितीवय आदि मणिबध (कलाई) के आभूषण रूप म प्रयुक्त हुए हैं। श्री टी० एन० मुकर्जी न अपनी पुस्तक आट एड इडस्ट्री अव इडिया' म केयूर अगद पचक कटक भुजा के तथा वलय, चूर तथा ककण कलाई के आभूषण स्वीकार किय हैं। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने अगद को सिंगल रौड लाइक आमलटस' कहा है 'हस्तकटक को ब्रेसलेट तथा 'रुचक को निष्क स निर्मित ब्रेसलेट माना है। सूचिका' को चूहेदन्ती (सुई की तरह नुकील ब्रसलेट) कहा गया है।

सोन चाँदी के अतिरिक्त शख के वलय भी प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री म मिले हैं। बौद्ध एव जैन साहित्य म रागा सीसा साना चादी लोहा, ताँबा, हस्तिदन्त आदि के कगन तथा वलय का उल्लेख मिलता है। थेरीगाथा' म कगन वलय और मुद्रिका का वणन मिलता है।

रामायण-काल म नारियो के हाथ मणि-मुक्ताओ से सुसज्जित रहते थ। महाभारत-काल मे बाहा मे अगद, केयूर तथा वलय और शख की चूडियाँ पहनन का सकेत मिलता है। मौय, शुग तथा सातवाहन-काल की महिलाएँ चूडियाँ धारण करती थी भरहुत से प्राप्त नारी प्रतिमाओं के 'मणिबधो म कगन तथा
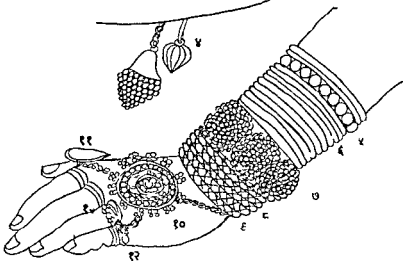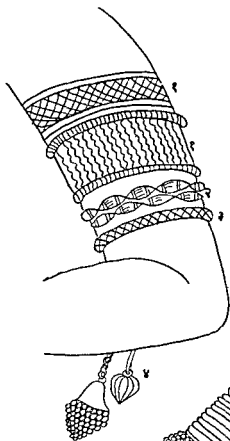
१ बाजूबद २ बाट (थट्टा) ३ टडडा ४ सर घुडी (फुंदी) ५ बगडी ६ चूरी, ७ नोगरी ८ पोहचो, ९ कडा १० हथफूल ११ अगूठी, १२ आरसी, १३ छल्ला।

अनक चूडियाँ हैं। मनकेदार पाँच पाच चूडियाँ कगन के साथ तीन लडियावाले फीता से वधी है। मथुरा तथा कौशाम्बी से प्राप्त मूर्तिया की कलाइयो म अनेक प्रकार की चूडियाँ (अलकरणयुक्त कगन) हैं। मथुरा की मूर्तियो म घुडीदार कडे या मनकेदार कगन के साथ, पतली पतली चूडियो से भरे हाथ मिलत हैं। खजुराहा भुवनेश्वर क मदिरो से प्राप्त मूर्तियो म रत्नजटित चूडिया तथा कगन हैं। खजुराहो की लक्ष्मी की मूर्ति म मोटे मोटे कडे हैं।

अजन्ता तथा बाघ की दीवारा पर अकित भित्तिचित्रो' म नारियो के हाथा मे वलय हैं। अजन्ता के चित्रो म रत्नजटित वलय हैं और कलाई म कडे के साथ अनक चूडियाँ हैं। अजता की एक नतकी दाना कलाइया म कोहनी तक भर भरकर चूडिया पहने है।

परवर्ती युग म बाहु तथा भुजा के निम्नलिखित अलकार परिगणित किए गए हैं

बाहुमूल—केयूर अगद आदि।

बाहुनाली—वजुर खजर स्वच्छितीक्य, कटक सुपूरक अस्तपत्र आदि।

मणिबन्ध—रुचक उच्चितक।

अगुली—मुद्रा।

कालिदास-काल म अगद वलय, केयूर कटक तथा अगूठी आदि कराभूषण थे जो स्त्री पुरुष समान रूप से पहनते थ। *स्त्रियो के आभूषण म विशेषता यह* थी कि इन्ही आभूषणों मे घुघरू बढ जाते थे। अगद और केयूर तो एक प्रकार क भुजबन्ध थ। कटक प्राय पुरुष ही पहनते थ। वलय का आज की चूडी का समानार्थक समझा जाता है। ऋतुसहार म वलय का प्रकोष्ठस्थित कहा गया है

न बाहुयुग्मेषु विलासिनीमा प्रयान्ति सङ्गम वलयाङ्गदानि।[1]

अक्षमाला को भी वलय की तरह लपेटा जाता था। वलय कई प्रकार के होते थे। काचनवलय लडकियो क हाथो म पहनाये जात थे, जो कगन की तरह नाक-दार हाते थ। नगजडे कगना की नोक का उल्लेख मघदूत[2] म हुआ है। 'शिञ्जावलय घुघरूदार होत थे और मदुल ध्वनि करते थे।'[3] स्पष्ट है कि वलय ढील होत थ और चूडी की तरह ही पहन जात थ क्योकि कई स्थानो पर उल्लेख है कि नायिका के वलय प्रकोष्ठ पर आकर रुक गये। काच की चूडियाँ भी प्रचलित थी या नही—इसका इस समय तक कोई स्पष्ट उल्लेख नही मिलता। सभवत शिञ्जावलय के स्थान पर ही आग चलकर काँच की चूडिया का प्रचलन

---

१ ऋतुसहार—४।३।

२ पूर्वमेघ—६५।

३ ताल शिञ्जावलयसुभग।

बढ़ा होगा, क्योकि दोनो ही गुण धम म एक-से है।

शिशुपालवध' म शख की चूडिया का विवरण मिलता है[1] जिसम यह वर्णित है कि वगपूण आलिगन करने से रमणी के शख से बने हुए ककण भी दबकर टूट गए। बाण न कादम्बरी मे वलय का बडा विस्मय वणन प्रस्तुत किया है। इनकी रचनाओ म रत्नजटित चूडियो का भी उल्लख मिलता है।

हेमचन्द्र न अपभ्रश व्याकरण म कई एस उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, जिनम 'चूडी' का सरस वणन मिलता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि यह प्रथम अवसर है जब एक ही उदाहरण म 'वलय' और चुड्डिल्लउ का प्रयोग एक साथ मिलता है

वायसु उड्डावतिअए पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्टतडत्ति॥[2]

(कौव को उडाती हुई विरहिणी ने सहसा प्रिय को देखा। इतने म उसकी आधी चूडियाँ विरह कृशता स ढीली होने के कारण पृथ्वी पर गिर गया और प्रिय को देखने स जो हष हुआ उसके कारण कृशता जाती रही और आधी चूडियाँ कडी होकर तड तड टूट गयी।)

तथा—

चूडुल्लउ चुण्णी होइ सइ मुद्धि कवलि निहित्तउ।
सासानल जाल-पलक्किअउ बाह सलिल-ससित्तउ॥[3]

(हे मुग्धे तरा ककण गम साँसो की आग स तपकर और आँसुओ की धारा से भीगकर स्वय ही टूट रहा है।)

यहाँ ककण के स्थान पर चूडुल्लउ का प्रयोग हुआ है। हेमचन्द्र के उदाहरणो मे जहा चूडुल्लउ के सवप्रथम दशन होते हैं, वहा यह भी ध्वनि निकलती है कि ये चूडिया निश्चित रूप से काँच की थी अथवा काँच-जसे पदाथ स निर्मित थी जो सहसा टूट सकती थी। सामदेव सूरि कृत 'यशस्तिलक म ककण और वलय दोनो का उल्लख मिलता है। ये वलय भस के सीग मणाल तथा दाँत से बनाये जाते थे। सोमेश्वर कृत मानसोल्लास म स्वणनिर्मित, रत्न मुक्ता, नील, माणिक्य से जटित—सिंह क मुख के आकार के हाथ के आभूषण का बाहुवलय सूक्ष्म काच की शलाका स पूण अनक प्रकार के बहुमूल्य वज्र (हीर) और मुक्ता आदि से जटित को चूडक कहा गया है।

वण रत्नाकर म भुजा और हाथ क आभूषणा म 'कराओ, चूलि, वलय',

---

१ शिशपालवध १।४३।

२ हेमचन्द्र अपभ्रश व्याकरण ४।३५२।

३ वही दोहा ३९५।

कंकण का विवरण मिलता है। सोने के तार से खचित कंगन ही आधुनिक 'कड़ा है' जो कि पूर्ववर्ती साहित्य में 'कटक' है। वलय चाँदी तथा सोने दोनों धातुओं के बनते थे। 'कंकण' ही आगे चलकर 'कँगना' बन गया जो कच्चे डोरी में गुथा रहता है। हेमचन्द्र पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने 'कंकण' के स्थान पर 'चूड़' का प्रयोग किया है। चुलि (चूली) 'वर्ण रत्नाकर' में चाँदी या सोने की चूरी ही है, जो नायिका, चित्रिणी और गायिका का समान रूप से आभूषण था। यह चुलि (चूली) ही प्राकृत अपभ्रंश के 'चूड़' का विकसित रूप है।

'सभाशृंगार' में स्त्री आभूषणों के वर्णन में चूड़ा, कांकण, वहिरखा, पहुचीया आदि हाथ के आभूषणों का उल्लेख मिलता है। निम्बार्क-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध ग्रंथ 'महावाणी' में पहुँची, बलय-केयूर, कंचन-कंकन, गजरा तथा चूरा चूरी के उल्लेख मिलते हैं :

> कबहूँ बाहु निहारि वारिके बाजूबंद सुधार जू।
> कबहुँक चूरा चूरी पहुँची ह्वै करि है रस सार जू।।[2]

तथा

> स्याम चुरी, कंकन पहुची करपद्म प्रभा भरपूर।[3]

काँच की रंग बिरंगी या हाथीदाँत की लाल रंग की चूड़ियों के चित्रमय वर्णन से मध्यकालीन साहित्य भरा पड़ा है। सूरसागर में इसके अनेक सुंदर प्रयोग द्रष्टव्य हैं :

> नूपुर किंकिनि कंकन चूरी।[4]

चार चार के जोड़े में :

> डारनि चार-चार चुरी बिराजति।

'वलय' के अनेक रूप सूरसागर में मिलते हैं :

> हस्त-वलय पटनील न धारौ।[5]

तथा,

> भुजा बहूँटनि वलय सग कौं।[6]

अष्टछाप के कवियों ने बाहु के आभूषणों में 'टाड', 'बहूँटा' और 'बाजूबंद'[7]

---

१ वर्ण रत्नाकर ४।४६ ५ १

२ महावाणी उत्साह सुख पद सं० १५०।

३ वही पद सं० २३।

४ सूरसागर पद सं० १०६८।

५ वही पद सं० ३४४६।

६ वही, पद सं० २ ६३।

७ बाजूबंद के संबंध में मनूची का कथन : Rich armlets two inches wide enriched on the su face with stones and having small bunches of pearls

का प्रयोग किया है

बहुँटा, कर-कंकन, बाजूबंद, एते पर है तोकी ।[1]

तथा,

कर कंकन तें भुज टाड भई ।[2]

मध्यकालीन कलाइ के आभूषणों में कंकन, कड़ा, चूरा चूरी पहुंचिया पाहांची वलय आदि प्रमुख हैं। सूरसागर में 'कंकन' का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। एक स्थान पर 'कंकना' का तथा अन्य स्थान पर 'कंगन' का प्रयोग भी मिलता है। कंकन काँच के बने होते थे, इसका स्पष्ट उल्लेख सूरसागर में है

कंकन कांच, कपूर करर सम।[3]

परमानन्ददास ने भी इन आभूषणों के विवरण दिए हैं

गई री गिराइ करहु तें कंकन द्वारे जाइ सभारयौ।

तथा

दधि मथति ग्वालिन गरबीली री।

रुनुक झुनुक कर कंगन बाजत बाहं हलावति ढीली री।

स्पष्ट रूप में 'चूरी' का प्रयोग द्रष्टव्य है

टूटत हार कंचुकी फाटत फूटत 'चूरी' खिसत सरफूल।[5]

तथा

अब ही नइ परि हौं आई 'चुरियाँ' गइ सब फूट।[6]

चूरियों के साथ गजरा और पोहोंची का प्रयोग द्रष्टव्य है

नवग्रह गजरा जगमग, नव पोहोंची चरियन आगे।[7]

कृष्णदास के साहित्य में कंकन बाजूबंद चूरी तथा वलय[8]—चारों आभूषणों का प्रयोग मिलता है। गोविन्दस्वामी ने कंकन, नौग्रही, पाहोचिन[9] का प्रयोग

---

depending from them and rich bracelets on wrist —Stori 340

Hand is covered with bracelets of gold or silver or ivory or such other things according to the ability of the persons

—Pietra Della Valle—Travels Translation by Havers 1892 Page 45

१ सूरसागर पद सं० २१५८।
२ वही पद स ४६७७।
३ वही पद स ४१३३।
४ परमानन्दसागर पद स १८ ।
५ वही पद स २३३।
६ वही पद सं० ६३५।
७ वही पद स ६५६।८।
८ कृष्णदास पद स ५४ तथा ४८।
९ गोविन्दस्वामी पद स १ ५ तथा १३२।

अच्छा हुआ, आपका भी चूडिया का खच खत्म हुआ।

यो गहणो यो बेस, अब कीज धारण कत।
हूँ जोगण किण काम री, चूडा खरच मिटत॥

डिंगल साहित्य म चूडा सुहाग का ही नही वरन वीरता शौय तथा साहस का भी प्रतीक है—जो अब हाथी-दाँत की चूडियो के अथ म ही सीमित हो गया है।

भुजा के आभूषणो म ए० पी० चाल्स ने निम्नलिखित नाम सम्मिलित किए हैं।

बाजू या बाजूबद बाक जोशन नौ नगा अनन्त, टाँड
पछेली छन या छतरी, बगलो, चूडी, पहुँची कगन गुजरी,
कडा, परिबद नौगिरी खूहादन्ती, जहागिरी या पतरी।

आजकल जहाँ चूडिया भारतीय नारी के सौभाग्य का प्रतीक बन गयी है, वहा नारीत्व की कोमलता का प्रतीक भी। जो पुरुष किसी कारणवश अकमण्य हो जाते हैं नारिया उन्हे अपने कर्त्तव्य का भान कराने के लिए उपहारस्वरूप चूडिया भेजती हैं। अबला नारी के इस आभूषण न प्रतीक बनकर कई आदोलनो को आगे बढाया और उनम नयी चेतना डाली है।

कटि के आभूषण

कटि प्रदेश म पहन जाने वाले आभूषणो की परपरा भी अपने देश म बहुत प्राचीन है। सिन्धुघाटी-सभ्यता म ही ३ फुट ४ इच लम्बी छह लडियाँ मिली है जिनम लम्बोतरे मनको के दोनो सिरो पर एक पोला तावीजनुमा अद्धचन्द्र है। ये लडियाँ प्राचीन मेखला ही है। शुगकाल के उत्कीण चित्रो तथा भरहुत शिल्प म कई लडो की मेखला के स्पष्ट दशन होते हैं।

वदिक काल म सुदरियो की पतली कटि म नीवीबध वरुणपाश, हिरण्यवतनी तथा रशना का प्रयोग मिलता है। अथववद के अनुसार वरुणपाश मूज को गथकर चोटी की भाँति बनाया जाता था मेखला को ऋषि धारण करते थे। न्याचनी का उल्लेख भी मिलता है। गह्यसूत्रो म किंकिणि कटि का आभूषण ही माना जाता है आगे चलकर यही पर का आभूषण भी बन गया।[1] भरत ने आठ लडियो की करधनी को मेखला और सोलह लडियो को रशना कहा है। भरत न इनके अतिरिक्त काची मौक्तिकजाल कुलक और कलाप का भी उल्लेख किया है।

अगविज्जा म काची कलाप और मेखला केवल दो ही आभूषणो का

---

१ डा राय गोविन्दचन्द्र—वदिक युग के भारतीय आभूषण १९६५।

विवरण मिलता है। जन आगमो में 'मेखला' का प्रयोग है। मेखला म लटकने वाले दाने मणियों के होते थे। कालिदास ने बजनेवाली 'रशना' और सामान्यत सादा सोने की तथा रत्नजटित हेम मेखला, मणि-मेखला के अतिरिक्त 'काञ्ची' का उल्लेख किया है। यह पतली न होकर चौडी पट्टी-सी होती होगी। यह घुघरूदार भी होती थी। रशना के साथ काञ्ची धारण की जा सकती थी। परवर्ती युग म यही 'करधनी' कही जाने लगी।

सोमेश्वर ने मानसोल्लास[2] म काञ्चीदाम' का उल्लेख किया है। यह सुवर्ण से बना रत्नजटित, लटकते हुए सूत्रों से आबद्ध, सुवर्ण की बनी क्षुद्र घंटिकाओं के शब्द से युक्त, चार अगुल के बराबर प्रमाणवाला, कटि प्रदेश म पहननेवाला आभूषण है। वर्णरत्नाकर म केवल मेखला' (मेखला) का ही विवरण मिलता है। एक लडी की 'काची, आठ लडी की मेखला, सोलह लडी की रशना पच्चीस लडी की कलाप' कहलाती है। घुघरूवाली ही 'रशना' कहलायी। अब्दुल रहमान के सदेशरासक म रसणावलि', 'ढोला मारू रा दूहा मे मेखला विद्यापति की पदावली म मुखर मेखला' तथा 'छिताईवार्ता म क्षुद्रघटिका का प्रयोग मिलता है।

आईने अकबरी म क्षुद्रघटिका के साथ कटिमेखला का भी उल्लेख है जिससे यह प्रतीत होता है कि दोनो पृथक थी। 'रशना' ही सभवत आगे चलकर क्षुद्रघटिका' बन गयी।

मुल्ला दाउद के 'चदायन' तथा कुतुबन की मृगावती म कटि के आभूषण का कोई विवरण नहीं मिलता, जबकि जायसी कृत पद्मावत में 'छुद्रावलि अभरन' का प्रयोग मिलता है। उस्मान की 'चित्रावली' म (वियोग वर्णन में) कटि के आभूषण 'किंकिणी' का उल्लेख है जिसका विपरीत प्रभाव पडता है

कटि किंकिन काट तन दाधा।[5]

शेखनबी कृत ज्ञानदीप में छुद्रावलि' का प्रयोग द्रष्टव्य है

छुद्रावलि बाँध मधि लका।[6]

मध्य काल के अनन्तर मेखला के साथ करधनी, तगडी तथा जजीर शब्द

---

१ अमरकोष म पाँच नाम हैं स्त्रीकट्या मेखला काञ्ची सप्तकी रशना तथा। १ ६।
२ मानसोल्लास भूपोपभोग (३।८)।
३ सदेशरासक २।२६।
४ कटि छुद्रावलि अभरन पूरा। (दोहा २९६)।
छुद्रघटि कटि कचन तागा। (दोहा २९९)।
भीजी अनत भई कटि मडन। (दोहा ६२)।
५ चित्रावली पृ ५६।
६ ज्ञानदीप स उदयशकर शास्त्री।

भी प्रचलित हुए। वर्णरत्नसमुच्चय[1] में मेखला के साथ कटिसूत्र करधनी 'कण दोरा तथा 'श्रोणिसूत भी मिलते हैं।

कृष्णकाव्य में कटि के आभूषणों का विशेष उल्लेख मिलता है

*मेखला—सूर ने मेखला[2] का प्रयोग प्राय श्रीकृष्ण के संदर्भ में किया है। पर कुम्भनदास ने मेखला का वर्णन राधा के संदर्भ में किया है

नूपुर रनझुनात कटि-मेखल।[3]

किंकनी—कटि किंकिनि की दाम जु लहीं।[4]

किंकिनि नूपुर बाजहीं।[5]

कटि किंकिनी रुनझुन कर।[6]

केहरि कटि किंकिनी।[7]

*छुद्रघटिका—कृष्णदास के अनुसार किंकिनी पोत और मुक्ताओं की भी बनती थी।[8] चतुर्भुजदास[9] तथा सूरदास[10] ने भी इसका उल्लेख किया है।

इन आभूषणों का प्रयोग प्राय सभी कवियों ने प्रमाणित किया है। तुलसीदास ने भी किंकिनी का उल्लेख किया है।

केशवदास ने रामचन्द्रिका में किंकिनी[11] तथा कविप्रिया[12] में छुद्रघटिका का उल्लेख किया है।

कवि पृथ्वीराज कृत वेलि में करधनी का व्याख्यात्मक चित्रण मिलता है

स्यामा कटि कटिमेखला समरपित

किसा अंग मापित करल।[13]

मियां नूर ने प्रकाश नाममाला में छुद्रघटिका के कई नाम दिये हैं

---

१ वर्णरत्नसमुच्चय भाग २ स भोगीलाल साडेसरा १९५६ ई०।

२ सूरसागर में मेखला के लिए पद स १ ६६ २२५२ १९८६ २ ०२ २३६३ २४१६ २४४३ २४५२ ४३११ ४४३५ ४५११ और अलंकृत मेखला के लिए पद स २४१६ द्रष्टव्य है।

३ कुम्भनदास पद स ३१६।

४ सूरसागर पद स २०६३। पद स ३४६१ भी द्रष्टव्य है।

५ पद स ६१६ परमानन्दसागर।

६ गोविन्दस्वामी पद स १ ५ तथा २६७।

७ चतुर्भुजदास पद स ७ तथा कुम्भनदास पद स० ३३।

८ कृष्णदास पद स ५४।

९ चतुर्भुजदास पद स १४६।

१० सूरसागर पद स २११।

११ रामचन्द्रिका १९३०।

१२ कविप्रिया छन्द ८६।

१३ वेलि क्रिसन रुकमणी री—छन्द ९६।

किङ्किनि रसना, मेषला, काची सोई कटि जाल।
हेमसूत्रिका सप्त की सारसन छुद्राल॥[1]

रीतिकालीन साहित्य म 'किंकनी' का वणन प्राय सभी कवियों न किया है। विहारी, देव मतिराम, रसलीन, सनक, पद्माकर, भिखारीदास आदि कवि उल्लखनीय हैं।

घुघरी (घुघरिया) का ताप न विशेष रूप से बडे विस्तार से वणन किया है। 'मेखला का देव न, और रशना का देव, ताप, आलम तथा भिखारीदास न उल्लख किया है।

आभूपणों की जो सूची जाफर शरीफ न ई० १८३२ म तयार की थी, उसम कटि क आभूपणा म कमरपट्टा, कमरसाल तथा जर-कमर भी महत्त्वपूण मान गए हैं।

पैरो के आभूपण

पर के आभूपण भी अति प्राचीन काल से भारत म लोकप्रिय होते चले आ रहे हैं। वदिक काल म ही 'खादि' नाई कडे जसा आभूपण था, यही लाक म आज भी शायद खडुआ के रूप म प्रचलित है। दूसरा आभूपण हिरण्यपाश' सभवत पायजेब है जा उस समय स्वर्ण की बनती होगी। पायजेब क ही अय नाम भी वदिक साहित्य म मिलत हैं। दूसरा तत्कालीन प्रसिद्ध आभूपण 'नूपुर' है। अश्वघोप न रस्सी की भाति बट हुए नूपुर का यावत्रनूपुर' तथा सामान्य को नूपुर कहा है। भरत न नाटयशास्त्र म नूपुर क साथ 'रत्नजालक' का भी उल्लेख किया है।

भरहुत के शिल्प मे कई घेरवाले नूपुर 'बलेवडा नूपुर मिलत हैं। श्रीमद्-भागवत म तो नूपुर के अनक उल्लख मिलते हैं

ता क्वणचरणाम्भोजा ॥३।२०।२६॥
खणखणायमान रुचिरचरणाभरणस्वनम ॥५।२।५॥
वाय पर चरणपञ्जरतित्तिरीणां ॥५।२।१०॥

रासमण्डल के प्रसग म स्पष्टत नूपुराणा (१०।३३।६) (१३।३३।१६) इत्यादि उल्लख मिलता है।

अगविज्जा म नूपुर क अतिरिक्त 'गड्डूपदक' पि[illegible] खिखिणि (किङ्किणी), पाद मुद्रिका आदि आभूपणा का विव[illegible] स्वण के भी बनत थ (सण्हनूपुरसुवण्णमण्डिता—धरीगाम)।

---

१ प्रकाश नाममाला—ग्रन्थ वीथिका—क० मु० हिन्दी [illegible] १८८१

कालिदास ने भी अधिकांशत 'नूपुर' का ही उल्लेख लगभग अपने सभी ग्रंथो म किया है उनके रसमय वणन की विशेषता यही है कि यह सन्नद्ध ध्वनि करता है अतएव इसम घुघरू का अस्तित्व सिद्ध होता है। यही कारण है कि इसके क्लनूपुर, शिञ्जित नूपुर, मणिनूपुर, भास्वत नूपुर' आदि नाम भी मिलते हैं।

नूपुर ही प्राकृत साहित्य म णेउर[2] रूप म मिलता है।

हषचरित म 'पादहसक' नूपुर का उल्लेख मिलता है। ये हसाकृति के होते थे अर्थात इनका आकृति गोल न होकर बाँकी मुडी हुई होती थी। यही आज कल 'बाँक' कहलाते हैं जो गुल्फ तक चढ़ जाते थे। इनके चित्र डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने सकलित किये हैं। वे चित्र आगे सलग्न हैं।

सोमेश्वर ने मानसोल्लास म, नाना रत्नों से खचित पादचूडक, सुवण के बने तीन भागो म बटे हुए कटक मधुर नाद करने वाले अत्यन्त शोभायुक्त —।३।४। शृखलाओं से युक्त रत्न जटित पादघघरिका, ध्वनिहीन राढाका', वक्र आकार वाले अदुका तथा काचन से निर्मित स्थूल तथा सुमधुर ध्वनि करने वाले परो की तजनी म पहन जाने वाले यमला का वणन किया है।

अपभ्रश म राजशेखर सूरि ने इस आभूषण का पर्याप्त वणन किया है

पाद-नूपुर झझनक्क, हस शब्द सुसोहना
थोर थोर थनाग्र नच्च मोति-दाम मनोहरा।[5]

११वी शताब्दी के शिलांकित काव्य राउलवेल[6] म भी पाहसिया (पाद हसिका) का उल्लेख मिलता है। ज्योतिरीश्वर ने वर्णरत्नाकर मे नायिका,

---

१ अमरकोष मे इसके छह नाम मिलते हैं
पादांगद तुलाकोटिमञ्जीरो नपुरो स्त्रियाम् हसक पादकटक ।।११ १११।।

२ णउर झझणक्कइ हससदसुसाहणा ।।
—प्राकृतपैंगलम २।१८५।

३ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल—हषचरित सास्कृतिक अध्ययन १९५३ पृ० ३८७ ३८८।

४ त्रिपचशृखलाक्लृप्तौ नानारत्नशत कृतौ।
कीलकाहितसधीतौ पादपालापितीरितौ ।।११२२।।
किंकिण्य स्वणरचिता गणागम्भितविग्रहा ।
नाम्वत्य सुरम्यास्ता पादघघरिका त्रिधा ।।
—मानसोल्लास श्लोक ११२३।

५ राहुल साकृत्यायन—हिंदी काव्यधारा प ४८३।

६ राउरवेल ६।३।

७ वणरत्नाकर—७।

चित्रिणी (गायिका), नतकी—तीनो के आभूषणा में नूपुर की चर्चा की है, "उसके दोना परो से नूपर के शब्द एस गूज रहे थे, मानो त्रिभुवन मोहिनी लोगा को मोहित करन के लिए मत्र (गूज) जाप कर रही हो।'
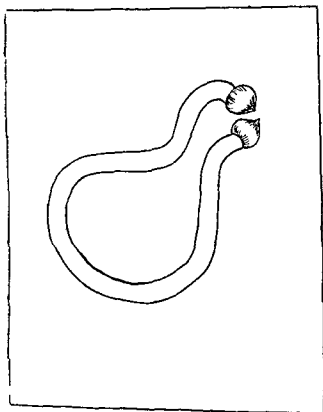
हसाकृति नूपुर

अपभ्रश की परम्परानुमार 'राउलवेल' में भी नेउर शब्द ही प्रयुक्त है और सन्देशरासक[1] में णेवर । नाल्ह के बीसलदेवरासो में परों में रुनझुन करती 'स्वण पायल' तथा ढोला मारू रा दूहा में पाँवा में झनकार करती हुई झाँझर' का उल्लेख है। बसत विलास में 'नउर' (६७), पथ्वीराज रासो[2] में 'नुप्पुर' विद्यापति पदावली में भी 'नूपुर', लक्ष्मणसेन पद्मावती में 'नेऊर' (५५) तथा छिताइ वार्ता में भी

१ सदेश रासक २ २७ तथा २ ५२।

२ पथ्वीराज रासो स माताप्रसाद गुप्त ३ १७ ३७।

'नवर' का उल्लेख मिलता है।

उज्ज्वल नीलमणि में नूपुर के लिए 'तुलकोटयो'[1] का प्रयोग किया गया है। आईने अकबरी[2] में पर के सर्वाधिक आभूषणों का विवरण मिलता है।

जेहर—तीन स्वर्ण की बालियाँ, पर के टखन का आभूषण यही चूड़ा, ढुढनी और मसूरी का विवरण भी मिलता है।

गुल्फ तक चढ़े हुए नूपुर

घुघरू—जेहर तथा 'खलखाल' के बीच में पहनी जाती थी, जिसमें सिल्क पर छह स्वर्ण घंटियाँ जड़ी रहती थी।

---

१ उज्ज्वल नीलमणि राधा प्रकरण १०।
जीव गोस्वामी ने लिखा है—तुलाकोटि नपुरी।

२ आईने-अकबरी मूल प्रति पृ १८१ ८२। सर स यद खां की प्रति पृ १८०।

बांक—यही 'भाक' भी कही जाती थी, जो त्रिकोणात्मक तथा वर्गाकार होती थी।

बिछुवा—अँगुलियों में पहनने का आभूषण।

अनवट—बडा, अँगूठे के लिए।

मध्यकालीन साहित्य के रचना-काल में इन सभी आभूषणो का व्यापक प्रयोग होन लगा था। चन्दायन में 'पायल तथा 'नूपुर' के साथ एक स्थान पर 'बेडी' का उल्लेख भी मिलता है

सोनें बेडि गढ़ाए॥

परो में अगुष्ठ और बिछुए का भी प्रयोग इस समय से ही प्रारम्भ हो गया[1] था।

पद्मावत' में पायल (औ पायल पायन्ह भल चूरा)[2] के साथ अन्य आभूषणो का विवरण भी मिलता हैं

चूरा पायल अनवट बिछिया पायन्ह परे वियोग।
हिए लाइ टुक हम कहँ समुदहु तुम्ह जानहु अउ भोगु॥[3]

तथा,

चूरा चाद सुरुज उजियारा। पायल बीच करहिं झनकारा।
अनवट बिछिया नखत तराई। पहुँची सक को पावन्हि ताई॥[4]

चित्रावली में, सयोग तथा वियाग दानो स्थितियों में परों के आभूषणों का वर्णन है।

सयोगावस्था

परसिहि बिछिया होइ मकु चित्रावलि के पाइ।[5]

वियोगावस्था

चूरा चूर देह दुहेली। पायल मानहुँ पावरि मेली॥
अनवट मँह जनु विष औ रसा। बिछिया बीछु होइ पग डसा॥[6]

मध्य काल से ही 'बिछुआ' शब्द का प्रयोग प्रारम्भ हो गया था। ज्ञानदीप में कृष्णाभिसारिका के चित्र में 'बिछिया' खोलकर रख लेने का उल्लेख मिलता है। अन्य आभूषणो की अप्रस्तुत योजना भी द्रष्टव्य है।

---

१ चन्दायन सं० माताप्रसाद गुप्त पृ० ३२६।
२ वही दोहा ११८।
३ चित्रावली दोहा २६।
४ पद्मावत दोहा २९६।
५ वही दोहा २६६।
६ वही पृ० ५१।

पाएन पायल चूरा सोहै। बरनत बरन सरस्वति मोहै।
चन्द्र सूर मानहु मनियारी। बिछुआ उडगन निसि उजियारी ॥

उस काल के पर के आभूषणों को भी दो भागा में विभाजित किया जा सकता है।

टखना—पायल। पाजेब—पहजेब। झाझर खलखल जजरी छागल।
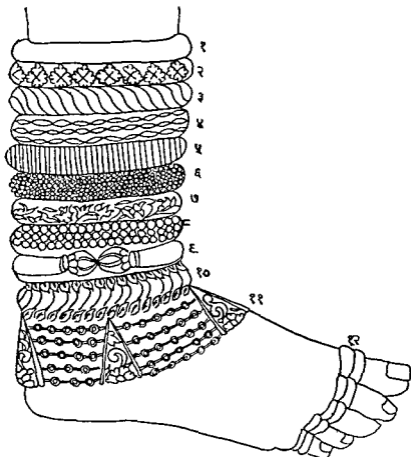
१ सादा कडा २ चौदाने की नवरी ३ बलकन कडा ४ हीरानुमा कडा ५ ऊघावट ६ झाड भात नवरी ७ फूलनवरी ८ भुवार भात नेवरी ९ भूधर कडा १० मेरठी ११ छडा (पायजेबनुमा) १२ छल्ले।

(जनल अव इडियन अ ट एड इडस्ट्री स उद्धत)

घुंघरू घट घुमाइ, ग्वालि मदमाती हो।[1]

नूपुर की ध्वनि का तो क्या कहना

पग जेहरि बिछियन की झमकनि, चलत परस्पर बाजति।[2]

तथा,

चरन रुनित नुपुर रन-तूरा सुनत स्रवन काँपहिंगे थरथर।[3]

चादी के बिछुओं पर फूल, मोर मछली या कोई पक्षी आदि बन रहते हैं। जेहरि को ही पायल पायजेब या रुशम-पट्टी कहा जान लगा।

घुघरूदार बजने वाली 'पजनी' का उल्लेख भी सूर न किया है

कंकन चुरी, किंकिनी नूपुर प जनि बिछिया सोहति।[4]

पुष्टिमार्गीय अन्य कवियो म परमानददास ने 'नूपुर' तथा जहरि का प्रयोग एक साथ किया है

झकृति कोकिल रव मदन करि नूपुर बिछिया बोल।

जहर तेहर पायन सो अनवट कुदन हीरा वलिता।[5]

गोविन्दस्वामी न 'नूपुर' (पद स० १३५ तथा ४६२) चतुर्भुजदास ने जेहरि (पद स० ७८) नूपुर (पद स० १४६) छीतस्वामी ने नूपुर[6], कुंभनदास ने रुन-झुनात नूपुर (पद स० ३१९) नन्ददास न मनिमय नूपुर (कृष्ण सिद्धान्त ४६), तथा कृष्णदास ने जेहरि और नूपुर का प्रयोग एक साथ किया है।

अन्य सम्प्रदायो के कवियो न भी नूपुर का व्यापक रूप से प्रयोग किया है विशेष रूप से रास के प्रसग म। बेलि[8] म पायजब ही नूपुरों स सजी है।

रामचन्द्रिका मे तो केशवदास ने नूपुर को विशिष्ट स्थान दिया ही है पर मर्यादावादी कवि तुलसीदास ने भी रामचरितमानस म नूपुर की ध्वनि का *विशेष वणन किया है। केशवदास ने नूपुर के साथ अन्य आभूषणों का विवरण* भी दिया है

---

१ वही ३४८।

२ सूरसागर पद स २७७४।

३ वही पद स ३७३।

४ वही पद स १६७६।

जडावदार जहरि के लिए पद स ३२२८ और १७६८ द्रष्टव्य हैं।

५ परमानन्दसागर पद स ९१९।१।

६ हमगति नूपुर छीतस्वामी पद स ८८।

७ मनिमय नूपुर सुवन बनी ज जराउ की जहरि—कृष्णदास पद स ८।

तुलाकोटि नूपर बहुरि पादागद मजीर।

पाद कटक मोई हसक बिछिया घरन धीर।।४४६।।

८ नूपुर घघरा सजि—बलि छद म ६७।

नूपुर

> हाटक घटित मनि स्यामल जटित पग
> नूपुर जुगल किधौं बाजे हैं विजय के।[1]

जेहरी

> अमिल सुमिल सीढ़ी मदन सदन की कि
> जगमग पग जुग जेहरी जराइ की।[2]

पैर के सभी आभूषण एक साथ

> बिछिया अनौट बाँक घुँघरी जराइ कै जरी।
> जेहरी छबीली क्षुद्रघंटिका की जालिका।

रीतिकालीन कवियों में 'नूपुर' का देव, आलम, मतिराम, रसलीन, बेनी, पद्माकर, भिखारीदास आदि ने, 'मंजीर' का बिहारी, मतिराम तथा भिखारीदास ने, 'पायजेब' का बिहारी, रसलीन, ब्रजनिधि, पद्माकर, भिखारीदास आदि ने, 'पैजनी' का तोष, रहीम, पद्माकर, 'घुंघरू' का ब्रजनिधि, पद्माकर आदि ने, 'बाजनूं (झाँझर) का भिखारीदास ने, 'चूरा' का बिहारी, भिखारीदास आदि ने और 'गूजरी' का भिखारीदास, देव, रसलीन आदि कवियों ने प्रचुर प्रयोग प्रमाणित किया है।

अतः यह सिद्ध करने की जरूरत शायद नहीं रही कि भारतीय नारियाँ अनादिकाल से शृंगार प्रसाधन की शौकीन रही हैं, और सिर से लेकर पाँव तक के विभिन्न आभूषण धारण करने तथा सोलह शृंगार की ललित कला यहाँ हमेशा फलती फूलती रही है। और आधुनिक युग में तो यह कला एक सुगठित व्यवसाय का रूप ले चुकी है।

---

१ कवित्त १२ तथा १३ का उद्धरण है।
२ वही छं० १७ तथा १६ की उद्धरण है।
३ वही छन्द ८६।
[illegible] जड़ी तथा [illegible]—[illegible] गहने और दोनों की बनी हुई। पायल, [illegible] बिछिया, [illegible] [illegible] [illegible] विशिष्ट आभूषण [illegible] हैं।

परिशिष्ट

आधारग्रंथ-सूची

१ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि—ब्रह्म, तानसेन गंग —डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल, प्र सं० लखनऊ वि० वि०।

२ अष्टछाप परिचय —सं० प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, मथुरा।

३ अष्टयाम —वृन्दावनचन्द्रदास, सं० २०१७, बाबा कृष्णदास।

४ इन्द्रावती —नूर मुहम्मद। हिन्दी प्रेमगाथाकाव्य संग्रह' से।

५ कबीर —डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, सं० १९६०, हिन्दी ग्रंथरत्नाकर बम्बई।

६ कबीर ग्रंथावली —सं० डा० श्यामसुन्दर दास, सन् १९४७ ना० प्र० सभा।

७ कवितावली —तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर।

८ कीर्तिलता और अवहट्ट —डा० शिवप्रसाद सिंह, सन् १९५५ साहित्य भवन लि०।

९ कुंभनदास —सं० गो० व्रजभूषण शर्मा, सन् १९५४ विद्या विभाग कांकरोली।

१० कुतुबशतक —डॉ० माताप्रसाद गुप्त, सन १९६७, भारतीय ज्ञानपीठ।

११ कृष्णदास —सं० गो० व्रजभूषण शर्मा, सं० २०१९।

१२ केलिमाल —सं० राजेन्द्र रंजन स्वामी हरिदास संगीत समिति।

१३ गीतावली —तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर।

१४ गोविन्दस्वामी —सं० गो० व्रजभूषण शर्मा सं० २०००

१५ चन्दायन। मुल्ला दाउद। —डॉ० माताप्रसाद गुप्त १६६७।
डा० परमेश्वरी लाल गुप्त, १६६४।
१६ चित्रावली —उस्मान।
१७ चतन्य मत और ब्रजसाहित्य —स० प्रभुदयाल मीतल, सन् १६६२।
१८ छिताईवार्ता —स० माताप्रसाद गुप्त २०१५ स०।
१६ छीतस्वामी —स० ब्रजभूषण शर्मा स० २०१२।
२० जानकीमगल (तुलसीदास) —गीताप्रेस, गोरखपुर।
२१ नानदीप (शेख नबी) —डॉ० सरला शुक्ला के शोध प्रबध से तथा श्री उदय शकर शास्त्री के सौजन्य स।
२२ ढोला मारू रा दूहा —डा० कृष्ण कुमार शर्मा सन् १६६८।
२३ दादू दयाल की बानी भाग २—बलविडियर प्रिंटिंग प्रेस इलाहाबाद।
२४ नन्ददास ग्रथावली —स० ब्रजरत्नदास ना० प्र० सभा, काशी।
२५ पदमावत (जायसी) —स० वासुदेव शरण अग्रवाल स० २०१२।
२६ परमानन्दसागर —स० गोवर्द्धननाथ शुक्ल भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ।
२७ पार्वतीमगल—तुलसीदास —गीता प्रेस गोरखपुर।
२८ पृथ्वीराज रासो —स० माताप्रसाद गुप्त साहित्य सदन, झासी।
२६ बरव रामायण (तुलसीदास)—स० डा० रामकुमार वर्मा सन् १६६७।
३० बीसलदव रासो —स० डा० तारकनाथ अग्रवाल, सन् १६६२।
३१ भक्त कवि व्यास जी —स० प्रभुदयाल मीतल स० २००६।
३२ भारतेन्दु ग्रथावली दूसरा खड —ना० प्र० सभा काशी स० १६६१।
३३ मधुमालती (मझन) —स० माताप्रसाद गुप्त, सन् १६६१।
३४ महावाणी—हरिव्यासदवाचाय। —स० ब्रजवल्लभशरण स० २०१६।
३५ माधुरीवाणी (माधुरी) —बाबा कृष्णदास, १६३६ ई०।
३६ मिरगावती (कुतुबन) —स० डा० परमेश्वरीलाल गुप्त सन १६६७।
३७ मुबारक—अलकशतक तथा तिलशतक —डा० शलेश जदी के सौजन्य स।
३८ युगलशतक (श्रीभट्ट) —श्री कृज वन्दावन।
३६ रत्नमजरी (जान) —डा० सरला शुक्ल के शोध ग्रथ से।
४० रससार (रसिकदव) —सिद्धान्तरत्नाकर (स० विश्वेश्वर शरण से।)
४१ रहीम —डॉ० समरबहादुर सिंह स० २०१८ साहित्य सदन झासी।

४२ राउलवल—मूलपाठ —डॉ० कलाशचन्द्र भाटिया, भारतीय साहित्य वप ६, अव ४।

४३ राधारमण रससागर —मनोहरदास स० २००८ बाबा कष्णदास, मथुरा।

४४ राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धात-साहित्य —विजयेन्द्र स्नातक, स० २०१४ नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।

४५ रामचरितमानस —तुलसीदास। गुटका। गीता प्रेस गोरखपुर।

४६ रामललानहछू —तुलसीदास। तिलक श्रीकान्तशरण स० २०१३।

४७ वसतविलास और उसकी भाषा —डा० माताप्रसाद गुप्त १६६६ ई०।

४८ विद्यापति पदावली —स० कुमुद विद्यालकार रीगल बुकडिपो दिल्ली।

४९ शृगार शिक्षा —कवि वन्द सन १६१३ राजस्थान यत्रालय, अजमेर।

५० सक्षिप्त सतसुधासार —वियोगी हरि, सन् १६५८ ई०।

५१ सतसुधासार —वियोगी हरि सन् १६५३ सस्ता साहित्य मडल।

५२ सदेशरासक (अब्दुल रहमान) —स० हजारी प्रसाद द्विवेदी सन १६६० ई०।

५३ साहित्यलहरी (सूर) —स० प्रभुदयाल मीतल, सन १६६१ साहित्य सस्थान मथुरा।

५४ सुन्दर विलास (सुदरदास) —बेलविडियर प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद।

५५ सूरसागर, भाग १ तथा २ —स० नन्ददुलारे वाजपेयी स० २०१५ ना० प्र० सभा, काशी।

५६ हस जवाहिर (कासिमशाह)

५७ हिन्दी प्रेमगाथा काव्य सग्रह —स० गणेशप्रसाद द्विवेदी। प्र० स०।

५८ हिन्दी का यधारा —स० राहुल साकत्यायन १६४५ ई० किताब महल इलाहाबाद।

अन्य ग्रथ

५९ कालिदास ग्रथावली —सीताराम चतुर्वेदी, भारत प्रकाशन मदिर अलीगढ।

६० गाथासप्तशती —डा० परमानन्द शास्त्री, सन १६६५।

६१ देशीनाममाला —हेमचन्द्र, सन् १९३२।
६२ पाइअ-सद्द महण्णवो —प्राकृत टेक्सट सोसायटी, भाग ७।
६३ पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ —सं० वासुदेव शरण अग्रवाल, डा० सत्येन्द्र आदि।
६४ ब्रजभाषा शब्दावली —डा०अम्बा प्रसाद सुमन, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।

सदर्भ-ग्रथ सूची (हिन्दी)

१ अत्रिदेव विद्यालकार —प्राचीन भारत के प्रसाधन, १६५८ ई०, भारतीय ज्ञानपीठ काशी।

२ डा० उषा पाण्डेय —मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य म नारी भावना १६५६ ई०, हिन्दी साहित्य ससार, दिल्ली।

३ प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी —व्रज की कला, १६५६ ई०, देशबन्धु पुस्तकालय मथुरा।

४ डॉ० कोमलचन्द्र जन —बौद्ध और जन आगमो मे नारी जीवन १६६७ ई०, सोहनलाल जन धम प्रचारक, अमतसर।

५ डा० गायत्री वर्मा —कवि कालिदास के ग्रथो पर आधारित तत्कालीन भारतीय सस्कति, १६६३ ई०।

६ डा० गोकुलचन्द्र जैन —प्राचीन भारतीय वस्त्राभरण सस्कृति २४।

७ डा० जयसिंह नीरज —राजस्थानी चित्रकला के परिपाश्व म हिन्दी कष्णकाव्य का अध्ययन, १६६, अप्र० शोध प्रबन्ध।

८ श्री दिनेशचन्द्र गुप्त —कौशाम्बी की ये जीवन्त मूर्तिया सा० हिन्दुस्तान २६।११।६४।
भारतीय शिल्प मे नारी भाव भगिमा सस्कति, वष १०।

६ डॉ० निमला वर्मा —सूरसागर की शब्दावली, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद।

१० श्री परशुराम चतुर्वेदी —मध्यकालीन शृगारिक प्रवत्तिया १६६१ई०, साहित्य भवन लि० इलाहाबाद।
हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानक, १६६२ ई०, हिन्दी ग्रथ रत्नाकर बबई।

११ डॉ० बच्चन सिंह —रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना, स० २०१५, ना० प्र० सभा, काशी।

१२ डॉ० बनारसीप्रसाद —मुगलकालीन पहनावा, हिन्दुस्तानी १९४४, पृष्ठ १२५ १३३।

१३ डॉ० भगवतशरण उपाध्याय —कालिदास का भारत, भाग २, १९५५, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।
तन और तूलिका, सा० हिन्दुस्तान, १६।१।६६।

१४ डा० भुवनेश्वर प्रसाद गुरमैता —वर्णरत्नाकर का सांस्कृतिक अध्ययन, १९६५ ई०, अप्र० शोध प्रबन्ध पंजाब वि० वि०

१५ डॉ० भोगीलाल ज० साडेसरा—वर्णक समुच्चय, भाग १ तथा २ १९५६ तथा १९५९ ई०, म० स० वि० वि०, बडोदरा।

१६ डॉ० मदनगोपाल —मध्यकालीन भारतीय संस्कृति १९६८ ई०, नेशनल पब्लि० हाउस, दिल्ली।

१७ डॉ० मायारानी टंडन —अष्टछाप के कवियों का सांस्कृतिक मूल्यांकन, हिन्दी संसार लखनऊ।

१८ डा० मालती देवी माहेश्वरी—मध्यकालीन हिन्दी काव्य में शृंगार सामग्री, १९६४ ई०, अप्र० शोध प्रबंध, जोधपुर वि० वि०।

१९ श्रीमती मालती बिसेन —जैन और बुद्धकालीन सौंदर्य प्रसाधन, सा० हिन्दु० १९।६।१९६६।

२० डॉ० मोतीचन्द्र —प्राचीन भारतीय वेशभूषा, स० २००७ भारती भंडार, प्रयाग।

२१ रतनचन्द अग्रवाल —राजस्थान की प्राचीन मूर्तिकला में शृंगार दुर्गा आकृति अक्टूबर १९६७।

२२ डॉ० राघवेन्द्र वाजपेयी —शिल्प से झांकता जीवन—खजुराहो, सा० हिंदु० १६।३।१९६६
—वही—खजुराहो २३।३।६६

२३ डॉ० रामकुमारी मिश्र —मंझन कृत मधुमालती के अप्रस्तुतों का रूप विधान सम्मेलन पत्रिका, ५२।१ २।

२४ डॉ० रामखेलावन पांडेय —मध्यकालीन संत साहित्य, १९६५।

२५ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल —रस मीमांसा प्र० स०

२६ डॉ० रामजी उपाध्याय —प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका १९६६।

२७ रामनिवास शर्मा —राजस्थानी माडणा द्वि० स० १९६१

राजस्थानी ललित कला अकादमी।

२८ डा० रायगोविन्द चन्द्र —वदिक युग के भारतीय आभूषण १९६५ ई०, चौखम्भा।

२९ डा० ललन राय —रीतिकालीन हिन्दी साहित्य म उल्लिखित वस्त्राभरणो का अध्ययन १९६४ ई० अप्र० शोध प्रबन्ध।

३० डा० वनमाला भवालकर —महाभारत मे नारी, स० २०२१, अभिनव साहित्य प्रकाशन, सागर।

३१ वल्लभदेव —सुभाषितावली पीटर पीटरसन द्वारा सपादित १९६१ ई०।

३२ डा० वासुदेव शरण अग्रवाल—कला और सस्कृति १९५८ ई० साहित्य भवन लि० इलाहा०।
भारतीय कला, १९६६ ई० पृथिवी प्रकाशन, वाराणसी।
शृगार हाट, १९६० हिन्दी ग्रथरत्नाकर, बम्बई।
हर्षचरित—एक सास्कृतिक अध्ययन १९५३ ई०।

३३ डा० विजयपाल सिह —केशव और उनका साहित्य, राजपाल एड सन्स दिल्ली।

३४ विद्यावती मानविका —प्राचीन भारतीय महिलाओ का कराभरण, त्रिपथगा।

३५ शातिकुमार नानूराम व्यास —रामायणकालीन समाज, १९५८ ई० सस्ता साहित्य मडल।

३६ डा० शिवनन्दन कपूर —हरी हरी चूडिया गुलाबी रग बढ़िया सा० हिन्दुस्तान, ३१।८।१९६६।

३७ डा० श्रीकृष्ण वार्ष्णेय —माधवानल कामकदला की परम्परा का अध्ययन १९६६ ई०। अप्र० शोध प्रबन्ध।

३८ डा० सत्यप्रकाश —मोहेन जो दडो की नारी, हिन्दुस्तान अक, १९।२।१९६४।

३९ डा० सत्येन्द्र —व्रजलोक सस्कृति स० २००५।

४० डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल —अकबरी दरबार के हिन्दी कवि लखनऊ वि० वि०।

४१ डा० सरला शुक्ल —जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और

काव्य स० २०१३, लखनऊ वि० वि०।
४२ सुखमय भट्टाचार्य —महाभारतकालीन समाज, सन १९६६, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
४३ सीताराम सहगल —कालिदास, प्र० स०, मुशीलाल मनोहरलाल दिल्ली।
४४ डा० सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त —सौन्दर्य तत्त्व अनु० आनन्द प्रकाश दीक्षित, स० २०१७।
४५ डा० हरगूलाल —मध्ययुगीन कृष्णकाव्य मे सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति १९६७ भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली।
४६ डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा —सौन्दर्य शास्त्र, १९५३ ई० साहित्य भवन लि०, इलाहा०।
—सौन्दर्य का सवस्व-रूप, सम्मेलन पत्रिका भाग ४६।२।
४७ डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव —भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य, १९५५, हिन्दी प्रचारक पु०, बनारस।
४८ डॉ० हजारी प्रसाद द्विवदी —प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद।

LIST OF ENGLISH BOOKS

Agrawal V S	Ornaments in Ancient Indian Art & Literature Uttar Bharati Vol 5/2/7 – 10
Altekar A S	The Position of Women in Hindu Civilization 1956 Motilal Banarsidas, Delhi
Ashraf K M	Life and Conditions of the people of Hindustan 1959 Jiwani Prakashan Delhi
Askari S H	Life and Conditions as depicted in Risail I - Ijaz Khusravi – Journal of Historical Research Ranchi University Vol X No 1 Sisail Ul Ijaz of Amir Khusro Zakir Husain Vol 1
Billington M F	Women in India 1895 Chapman & Hall Ltd London
Chopra P N	SomeAspects of Society and Culture 1963 Shivlal Agrawal & Co Agra
Datt Bhupendranath	Indian Art in Relation to Culture Nababharati Publishers Calcutta
Dongerkery Kamala S	Indian sari All India Handicrafts board New Delhi
Ellis Aytoun	The Essence of Beauty 1960 London Secker and Warburg
Ellis Havelock	Psychology of Sex 1954 Emerson Books New York
Fabri Charles L	History of Indian Dress 1960, Orient Longmans Calcutta
Ganguli K K	The Harappa Hoard of Jewellery Indian Culture Vol 6 No 4 1940

Thomas P — Hindu Religion Customs and Manners 1956 D B Taraporewala, Bombay

Upadhyaya Vasudeo — The Socio-Religious Conditions of North India (700 1200 A D) 1964 Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi